रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन

(साहित्यिक कहानी आन्दोलन के विशिष्ट सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से हिन्दी में
पी-एच. डी. उपाधि हेतु

2009

निर्देशक :
डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

शोधकर्त्री :
श्रीमती अर्चना यादव
एम. ए., एम. फिल.
शोध छात्रा, हिन्दी

शोध केन्द्र
हिन्दी विभाग, अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी
रीडर/अध्यक्ष हिन्दी विभाग

हिन्दी विभाग
अतर्रा पो. ग्रे. कालेज, अतर्रा
बाँदा

दिनांक : 05-04-09

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि *श्रीमती अर्चना यादव पत्नी डॉ. किशन यादव* जो बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में (हिन्दी) विषय में विद्यावाचस्पति (Ph.D.) की उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में शोध कार्य हेतु पंजीकृत थीं, ने अपना शोध कार्य पूर्ण कर लिया है। इनका शोध विषय निम्नांकित है – *''रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के कथा–साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन''* साहित्यिक कहानी आन्दोलन के विशिष्ट सन्दर्भ में।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि –

1. मेरी पूर्ण जानकारी में यह शोध प्रबन्ध मौलिक है और अनुसंधानकर्त्री के अथक प्रयासों का स्वयं का कार्य है।

2. अनुसंधानकर्त्री (श्रीमती अर्चना यादव पत्नी डॉ. किशन यादव) ने मेरे निर्देशन में 200 दिन से अधिक उपस्थित होकर अपना शोध कार्य पूर्ण किया है।

3. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय की शोध–उपाधि से सम्बन्धित अध यादेश की आवश्यकता पूर्ण करता है।

4. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विषय वस्तु तथा भाषा दोनों दृष्टियों से परीक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत करने के स्तर का है।

(डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी)
निर्देशक

शोधकर्त्री का घोषणा-पत्र

मैं घोषणा करती हूँ कि *रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (साहित्यिक कहानी आन्दोलन के विशिष्ट सन्दर्भ में)* शीर्षक के अन्तर्गत किया गया शोध कार्य डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी के निरीक्षण तथा मार्गदर्शन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से किया गया है एवं शोध–उपाधि समिति द्वारा स्वीकृत मेरा स्वयं का मौलिक शोध कार्य है। मैंने शोध केन्द्र हिन्दी विभाग, अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा) उ. प्र. में अपने शोध निर्देशक ***डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी*** के पास 200 दिन से अधिक दिन की उपस्थिति दर्ज कराई है। मैं यह भी घोषित करती हूँ कि मेरी पूर्व जानकारी के अनुसार इस शोध–प्रबन्ध में कोई ऐसा भाग नहीं है जो विश्वविद्यालय या सह विश्वविद्यालय में बिना दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है।

05-04-09

शोधकर्त्री

अर्चना यादव

(श्रीमती अर्चना यादव)

प्रस्तावना

कहानीकार मानव पक्ष के किसी भी अंग को यथार्थ ढंग और रुप से संतुष्ट, संतुलित होकर चुनने का प्रयास करता है। इसमें कथानक भी हो सकता है, चरित्र का एक पक्ष भी और अनुभव का चित्रण भी। अब कथानक चुनने का क्षेत्र नवीन है जो जीवन और समाज से सम्बन्धित है। काफी हाउस हो या घर, सामाजिक यथार्थ को असत्य कहने वाले पलायनवादी की अपेक्षा आज का सजग कहानीकार मानवीय पात्रों को भी यथार्थ से ही चुना जा रहा है और जीवन से लेकर उनमें मानवीय संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति प्रदान की जा रही है। पात्रों के माध्यम से ही जीवन, समाज युग के मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा की जा रही है।

साधारण रूप से हिन्दी कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ कहानियों में कथा होती है, कुछ में चरित्र होते हैं और कुछ में कार्य होता है। अन्य कुछ कहानियों में कथा, चरित्र और कार्य सभी होते हैं, परन्तु वे केवल निमित्त–मात्र होते हैं, कहानीकार का मुख्य–उद्देश्य किसी भावना अथवा अनुभूति से ओत–प्रोत वातावरण की सृष्टि करना होता है। कुछ अन्य कहानियों में कहानीकार का उद्देश्य किसी प्रभाव की सृष्टि करना होता है, जिसमें घटनाओं और प्रसंगों, चरित्रों तथा कार्यों की सहायता से किसी प्रभाव की सृष्टि की जाती है। इन तीनों प्रकार की कहानियों को हम क्रम से कथा–प्रधान, वातावरण–प्रधान और प्रभाव–प्रधान कहानियाँ कह सकते हैं।

कथा–प्रधान कहानियों में चरित्र अथवा पात्र, कार्य और कार्यों तथा चरित्रों के बीच सम्बन्ध, ये तीन मुख्य पक्ष होते हैं। जिस कहानी में पात्र अथवा चरित्र शेष दोनों पक्षों की अपेक्षा अधिक प्रधान होते हैं, उसे चरित्र–प्रधान कहानी कहते हैं; जैसे 'आत्माराम', 'पुरस्कार', 'बूढ़ी काकी' इत्यादि। जिस कहानी में कार्य शेष दोनों पक्षों की अपेक्षा अधिक प्रधान होते है, वह कार्य–प्रधान और जिसमें कार्यों और चरित्रों के बीच का सम्बन्ध अथवा घटनाएँ और प्रसंग चरित्रों से अधिक प्रधान होते हैं, उसे घटना–प्रधान कहानी कहते हैं।

चरित्र–प्रधान कहानियों में लेखक का मुख्य उद्देश्य किसी चरित्र का सुन्दर चित्रण करना होता है। वह जिस चरित्र का चित्रण करना चाहता है, उसे विविध परिस्थितियों और प्रसंगों में डालकर उसके गुण–विशेष की सुन्दर व्यंजना करता है। घटनाओं, प्रसंगों और परिस्थितियों की सृष्टि केवल इसलिये होती है कि जिससे चरित्र का सुन्दर और प्रभावशाली चित्रण हो सके। उदाहरण के लिये प्रेमचन्द्र की 'दफ्तरी' कहानी में दफ्तरी को गृहस्थी की अनेक जटिल परिस्थितियों में डालकर उसके चरित्र की सुन्दर व्यंजना की है कि किस प्रकार वह सभी कठिनाइयाँ, दुःख और बाधाएँ समभाव से सहन करता है। यह एक योगी है, महावीर है।

कहानियों में स्थानाभाव के कारण चरित्रों के सभी अंगों और पक्षों का विशद् चित्रण सम्भव नहीं है, इसीलिये केवल एक विशेष पक्ष ही बड़ी सावधानी से चित्रित किया जाता है और अन्य सभी पक्ष अछूते रह जाते है। जिस एक पक्ष का चित्रण कहानी में होता है, वह चरित्र में मुख्यतम् गुण–विशेष का द्योतक रहता है और लेखक संक्षेप में ही उसका सुन्दरतम् चित्र खींचता है। अस्तु, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' मैं लहनासिंह जमादार के अपूर्व स्वार्थ–त्याग और बलिदान का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। लहना एक बालिका को ताँगे के नीचे आने से बचाता है, तभी दोनों का परिचय होता है और वे प्रायः मिल जाया करते हैं। बालिका बड़ी भोली–भाली है और लहना उससे प्रेम करने लगता है। कुछ समय पश्चात् बालिका का विवाह हो जाता है। लहना उसे भूल–सा जाता है। कई वर्षों के पश्चात् लड़ाई पर जाने के पहले लहना अपने सूबेदार के घर जाता है और जब उसे मालूम होता है कि सूबेदारिनी और कोई नहीं उसकी वह भोली बालिका है जिसे वह प्यार करता था, तब उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। सूबेदारिनी लहना को अपने पुत्र और पति की रक्षा का भार देती है। इस पवित्र उत्तरदायित्व को लहनासिंह अपने प्राण देकर ही पूरा करता है। सूबेदार हजारासिंह और रोगग्रस्त बोधासिंह के प्राणों की वह रक्षा करता है और स्वयं घायल होकर वजीरासिंह की गोद में प्राण दे देता है, परन्तु उसे इतना सन्तोष है कि उसने अपना वचन पूरा किया है। कहानी की साधारण सफलता का एकमात्र कारण लहनासिंह की अपूर्व आत्मकथा और बलिदान है। इसी प्रकार प्रेमचन्द्र की 'बूढ़ी काकी' कहानी में

बूढ़ी काकी की लोभी और लालची प्रकृति का विशद् चित्रण है। बुद्धिराम और उसकी स्त्री सारे गाँव को अच्छी वस्तुयें खिलाते हैं, परन्तु बूढ़ी काकी को कोई पूछता ही नहीं। इतना ही नहीं, उसके माँगने पर उसका कई बार अपमान भी हुआ और दण्ड–स्वरूप उसे एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। बूढ़ी काकी रात को अपनी भूख मिटाने और अपनी हविस पूरी करने के लिये जूठी पत्तलों पर ही टूट पड़ती है। बुद्धिराम की पत्नी रूपा इस दृश्य को देखकर चकित रह जाती हैं और बूढ़ी काकी को भर पेट पूरियाँ और मिठाइयाँ खिलाती है। इस लोभ–प्रतिमूर्ति बूढ़ी काकी का इस कहानी में अपूर्व सौंदर्य का चित्रण संयुक्त है। इस प्रकार की चरित्र–प्रधान कहानियों के चरित्र प्रायः सभी प्रकार (Type) के आत्म–त्याग, वीरता, प्रेम, कायरता इत्यादि विशिष्ट गुणों अथवा अवगुणों के प्रतीक–स्वरूप होते हैं।

'दफ्तरी' कहानी में नायक कोई व्यक्ति–विशेष नहीं है, वरन् गृहदाह में जलने वाले वीरों का प्रतिनिधि और प्रतीक है। सच बात तो यह है कि कहानी के सीमित स्थान में व्यक्तिगत चरित्रों का चित्रण सम्भव नहीं है; क्योंकि किसी चरित्र का व्यक्तीकरण करने केलिये लेखक को उस चरित्र के उन विशेष गुणों को दिखाना पड़ता है, जिससे वह अपने समुदाय के व्यक्तियों से पृथक् किया जा सके और उस विशेष गुणों को दिखाने के लिये उस चरित्र को कुछ विशेष परिस्थितियों और प्रसंगों में चित्रित करना आवश्यक है, जिसके लिये कहानी में पर्याप्त स्थान नहीं होता। इसलिये चरित्रों के व्यक्तीकरण के लिये अधिक–से–अधिक इतना ही कर सकता है कि कहीं–कहीं दो–चार अर्थ–गम्भीर वाक्य द्वारा चरित्र की कुछ विशेषताओं का दिग्दर्शन मात्र करा दे। उदाहरण के लिये 'प्रसाद' रचित 'भिखारिन' को लीजिये : निर्मला ने देखा, 'एक चौदह वर्ष की भिखारिन भीख माँग रही है' केवल तीन लाइन का वर्णन है, परन्तु इन्हीं तीन लाइनों ने 'प्रसाद' की भिखारिन को अन्य भिखारिनों से पृथक् कर दिया। 'धवल दाँतों की श्रेणी' और 'भोलापन के बिखेरने' से ही हम व्यक्ति–विशेष को पहचान लेते हैं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से पता चलेगा कि यह 'धवल दाँतों की श्रेणी' और 'भोलापन बिखेरने' वाली भिखारिन का प्रतीक–स्वरूप ही है, उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है।

चरित्र प्रधान कहानियों में एक प्रकार की कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनसे मुख्य चरित्र में अचानक परिवर्तन हो जाता है। अस्तु 'कौशिक' की सर्वोत्तम कहानी 'ताई' रामेश्वरी (ताई) के चरित्र में अचानक परिवर्तन होता है। वह अपने देवर के पुत्र मनोहर से घृणा करती है, क्योंकि उसी के स्नेह के पीछे उसके पति पुत्र, प्राप्ति के लिये कई यत्न–तीर्थयात्रा, पूजा–पाठ, व्रत–उपवास इत्यादि कुछ भी नहीं करते। बच्चों से उसे स्वाभाविक स्नेह है, पर मनोहर की सूरत से उसे घृणा है। एक दिन मनोहर पतंग पकड़ने के लिये मुँडेर पर दौड़ता है और अचानक पैर फिसल जाने के कारण गिरने लगता है। वह सहायता के लिये ताई को पुकारता है और ताई, यदि चाहती तो उसे बचा सकती थी, परन्तु उसने सहायता न की और बच्चा चीखता हुआ नीचे गिर पड़ा। मनोहर के नीचे गिरते ही ताई के हृदय को एक धक्का लगता है और वह बीमार हो जाती है। मनोहर जब अच्छा हो गया और रामेश्वरी के पास लाया गया तभी वह अच्छी हुई और उसके बाद वह उसे बहुत प्यार करने लगी। चरित्र प्रधान कहानियों में कहानी को प्रभावशील बनाने के लिये इस प्रकार का अचानक परिवर्तन लेखकों का अत्यन्त उपयोगी कौशल है। कहानी के सीमित स्थल में चरित्र–चित्रण के लिये अनेक प्रसंगों और परिस्थितियों की आयोजना नहीं हो सकतीं, वरन् कुछ विशेष प्रभावशाली और महत्वपूर्ण प्रसंग ही इनमें वर्णित हो सकते हैं और सबसे प्रभावशाली तथा महत्वपूर्ण प्रसंग वहुआ करते हैं, जिनसे नायक के चरित्र पर सबसे अधिक प्रभाव पड़े, यहाँ तक कि चरित्र में परिवर्तन भी हो जाये।

प्रधान–चरित्र के अचानक चरित्र–परिवर्तन को लेकर हिन्दी में अनेक उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी गई। विशेषतः प्रेमचन्द्र तो इस कार्य में अत्यन्त प्रवीण थे। उनकी 'आत्माराम' कहानी में महादेव सुनार का तीन सौ मोहरें मिलने के पश्चात् अचानक हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह एक ही रात में उदार–हृदय और दानी मनुष्य बन जाता है। 'दीक्षा' कहानी में वकील साहब अपनी प्रतिज्ञा भूलकर शराब पीना आरम्भ कर देते हैं। और इसके इतने आदी हो जाते हैं कि एक रात शराब न मिलने पर साहब के चपरासी को घूस देकर साहब की थोड़ी शराब चुरवा मँगाते हैं, परन्तु सुबह साहब को चपरासी की चोरी और वकील साहब के घूस देने का पता चलता है, तब वह वकील साहब का बहुत

अपमान करता है। इस अपमान से वकील साहब ने केवल शराब पीना ही नहीं छोड़ा, वरन् शराब खोरी बन्द करने के लिये वे एक सुधारक भी बन गये। चरित्र–परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'शंखनाद' नामक कहानी में मिलता है। गुमान कुश्ती लड़ने, कसरत करने, रामायण और भजन गाने तथा सिल्क का कुर्ता, साफा बाँधकर इधर–उधर घूमने में ही सारा समय बिताता है, कोई उपयोगी कार्य नहीं करता है। उसके पिता, भाई, स्त्री सभी उसे समझा–बुझाकर, डरा–धमकाकर हार गये, लेकिन उसने किसी की न मानी परन्तु एक घटना में उसमें एकदम परिवर्तन हो गया। एक दिन फेरी वाला बच्चों के लिये अच्छी–अच्छी वस्तुयें बेचने आया। गुमान की भाभियों ने अपने–अपने बच्चों के लिये अच्छी–अच्छी चीजें खरीद दीं, परन्तु गुमान के पुत्र के लिये खरीदने को उसकी स्त्री के पास पैसा ही न था। बच्चा निराश होकर रोने लगा। उसका यह रोना गुमान के कानों में शंखनाद के समान जान पड़ा और वह उसी दिन से परिवर्तित हो गया और घर का काम–काज करने लगा।

चरित्र–प्रधान कहानियों का एक सुन्दर और प्रभावशाली रूप उन मनोवैज्ञानिक कहानियों में मिलता है जहाँ किसी असाधारण परिस्थिति विशेष में, किसी चरित्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होता है। प्रस्तुत पुस्तक में 'जाह्नवी', 'मिठाईवाला' और 'अपराध' कहानियाँ इसी श्रेणी की हैं। इन कहानियों में कथा का भाग बहुत होता है क्योंकि इनमें उन घटनाओं और प्रसंगों का केवल संकेत मात्र रहता है जिनके द्वारा प्रधान चरित्र के आदर्श औरप्रतिनिधि गुण और अवगुण प्रकाश में लाये जाते हैं अथवा जिनके द्वारा चरित्र में अचानक परिवर्तन हो जाता है। कहानी–लेखक का मुख्य उद्देश्य उन आदर्श गुणों अथवा अवगुणों का मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करना होता है अथवा परिवर्तित चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना होता है। 'मिठाईवाला' कहानी में लेखक ने यह नहीं बतलाया कि मिठाईवाला कौन था ? अपने लड़कों की मृत्यु के पहले वह क्या करता था। उसके लड़कों की मृत्यु कैसे हुई ? इत्यादि, इन बातों का संकेत मात्र कहानी से मिलता है परन्तु उसके पुत्रों की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवर्तित चित्र का सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ी सुन्दरता से कहानी में मिलता है। लेखक कार्यों और प्रसंगों की कम से कम सहायता लेता है। उसका एकमात्र उद्देश्य चरित्र–चित्रण है परन्तु इनमें एक

कठिनाई यह पड़ती है कि कार्य और प्रसंग के अभाव में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दुरूहता में कहानी नीरस हो जाती है और कभी–कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि लेखक कहानी लिखने नहीं, किसी मनोवैज्ञानिक समस्या को सुलझाने बैठा है। परन्तु जहाँ नीरसता नहीं है, जहाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ रस, कार्य, घटनानिर्देश का मणिकांचन योग हुआ है, वहाँ मनोवैज्ञानिक चरित्र प्रधान कहानियाँ उच्चतम् कोटि की कहानियाँ बन पड़ी हैं।

घटना–प्रधान कहानी, कहानियों की सबसे साधारण श्रेणी में आती हैं। इनमें चरित्र–चित्रण पर विशेष रूप से जोर नहीं दिया जाता, वरन् उन उलझनों पर विशेष जोर दिया जाता है, जो विविध–चरित्रों के विविध परिस्थितियों में पड़ने के कारण पैदा हो जाती हैं। संक्षेप में चरित्रों और परिस्थितियों के सम्बन्ध पर जोर दिया जाता है। उदाहरण के लिये 'कौशिक' की कहानी 'पावन–पतित' लीजिये। राजीवलोचन की, जो वास्तव में एक वेश्या का पुत्र था और रास्ते में पड़ा मिला था, एक पुत्रहीन धनवान, मनुष्य ने बड़े ही स्नेह और आदर से पुत्र की भाँति पाला था। मरते समय उस मनुष्य ने राजीवलोचन को बता दिया कि वह उसका पुत्र नहीं है, वरन् सड़क पर पड़ा मिला था। राजीवलोचन के हृदय में बड़ी ठेस लगती है और वह एक ताबीज के सहारे अपनी माँ को खोजने निकल पड़ता है। अन्त में संयोग से उसे अपनी माँ के दर्शन होते हैं जो एक वेश्या है। वह जीवन से निराश होकर अन्तर्ध्यान हो जाता है। शायद आत्महत्या करने या सन्यास लेने के लिये। यहाँ कहानीकार ने एक विशिष्टचरित्र लेकर उसे विविध परिस्थितियों में डालकर एक मजेदार कहानी की सृष्टि की। 'कौशिक' की अधिकांश कहानियाँ इस श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। ज्वालादत्त शर्मा और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी भी घटना–प्रधान कहानी लिखने में सिद्धहस्त हैं।

कला की दृष्टि से घटना–प्रधान कहानी चरित्र–प्रधान, वातावरण–प्रधान और प्रभाव–प्रधान कहानियों से निम्नतम श्रेणी की कहानी होती है। इसमें दैव–घटना और संयोग का विशेष हाथ रहता है। इससे पाठकों के हृदय में वर्तमान कथा–कहानी–सम्बन्धी

कौतूहल की शान्ति तो अवश्य हो जाती है, परन्तु कला और चरित्र का सौंदर्य उसमें बहुत कम मिलता है।

कार्य–प्रधान कहानियों में सबसे अधिक जोर कार्य पर दिया जाता है। गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानी, बनारस के 'उपन्यास बहार' आफिस से प्रकाशित साहसिक (Adventure), रहस्यपूर्ण (Mystery), अद्भुत (Fantastic) तथा वैज्ञानिक कहानियाँ इस श्रेणी की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। जी. पी. श्रीवास्तव की अतिनाटकीय प्रसंग–पूर्ण हास्यमय कहानियाँ भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। इन कहानियों में चरित्र को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। उसके कार्य ही अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिये जासूसी कहानियों को ले लीजिये। जासूसों के चरित्र से हमें कोई मतलब नहीं, हम तो उनके विस्मयकारी चतुराइयों पर ही मुग्ध होते हैं।

वातावरण–प्रधान कहानी केवल वातावरण से युक्त कहानी नहीं है। कुछ कहानियों में परिपार्श्व (Setting) पर बहुत जोर दिया जाता है, परन्तु वातावरण–प्रधान कहानी के लिये इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसमें कहानी की परिस्थितियों में से किसी एक विशेष अंग अथवा पक्ष पर अधिक जोर दिया जाता है, किसी एक मुख्य भावना का प्राधान्य रखा जाता है, बाह्य–वातावरण अथवा परिपार्श्व का नहीं। इसका अभिप्राय परिपार्श्व से वातावरण का संयोग कराकर कहानी का अनुरंजन करना नहीं है, वरन् किसी मुख्य भावना को कथानक के विकास का प्रधान कारण बना कर उसी भावना से कहानी को अनुप्राणित करना है। उदाहरण के लिये प्रेमचन्द्र का 'शतरंज के खिलाड़ी' ले लीजिये। लेखक ने पहले वाजिदअलीशाह के समय लखनऊ के विलासमय जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। इस वातावरण ने कहानी को अनुरंजित अवश्य कर दिया, परन्तु इससे कथानक के विकास में सहायता नहीं मिलती। कथानक का विकास तो शतरंज खेलने के अपूर्व आनन्द की भावना से होता है। कहानी के पात्र तो केवल निमित्त मात्र हैं। लखनऊ के दो रईस मीर साहब और मिर्जा साहब सुबह से आधी रात तक शतरंज खेलते हैं। यह एक आदर्श वातावरण–प्रधान कहानी है। मीर और मिर्जा तो इसमें केवल निमित्त मात्र हैं, कहानी का प्रधान उद्देश्य तो शतरंज की लत का कलापूर्ण चित्रण है।

कला की दृष्टि से वातावरण–प्रधान कहानियों का महत्व सबसे अधिक है। इसमें लेखक को कला की काट–छाँट और तराश दिखाने के लिये उपयुक्त अवसर मिलता है। वह वातावरण के चित्रण और परिपार्श्व की अवतारणा में मनमाना रंग भर सकता है, नाद–ध्वनि की व्यंजना कर सकता है, काट–छाँट कर सकता है। वह चाहे तो 'प्रसाद' की भाँति कवित्तपूर्ण वातावरण की सृष्टि कर सकता है, अथवा प्रेमचन्द्र और सुदर्शन की भाँति लाक्षणिक सौंदर्य से परिपूर्ण यथार्थवादी वातावरण का चित्रण कर सकता है। कहानी को अनुप्राणित करने वाली भावना भी कवित्तपूर्ण हो सकती है और उसकी व्यंजना में कला की तराश अच्छी तरह दिखाई जा सकती है। इस प्रकार की कहानियों में सभी जगह कला का बोलबाला होता है, सभी जगह कलाकार की महत्ता दिखाई पड़ती है। कवित्तपूर्ण वातावरण, कवित्त–पूर्ण भावना और नाटकीय तथा आदर्शवादी परिस्थितियों की सृष्टि करने में जयशंकर 'प्रसाद' अद्वितीय हैं। उनकी कला कवित्तपूर्ण और स्वच्छन्दतावादी है। दूसरी ओर सुदर्शन और प्रेमचन्द्र की कला में यथार्थवाद का चित्रण मिलता है।

प्रभाव–प्रधान कहानियों में लेखक का मुख्य उद्देश्य किसी प्रभाव–विशेष की सृष्टि करना होता है और उनमें चरित्र, वातावरण, घटना इत्यादि से अधिक प्रधानता प्रभाव को दी जाती है। प्रभाव–प्रधान कहानियों की कला बहुत कुछ संगीत कला से मिलती–जुलती है। संगीत में गाने के शब्द का कोई विशेष महत्व नहीं है और न उस गाने का भाव ही कोई विशेष महत्व रखता है, मूलतत्व तो उसका प्रभाव है, जो सुनने वालों पर पड़ता है। इस प्रभाव की सृष्टि के लिये गायक जो आलाप लेता है; गंधार और निषाद ध्वनियों का जो सामंजस्य उपस्थित करता है, वास्तव में उसी में संगीत की सफलता निहित है। चाहे वह 'चना जोर गरम प्यारे मैं लाया मजेदार' गाये अथवा 'ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे' वास्तविक वस्तु उसका प्रभाव है। ठीक इसी प्रकार प्रभाव–प्रधान कहानी में उसका प्रभाव ही सब कुछ है। चरित्र, कथानक इत्यादि का कोई महत्व नहीं। उदाहरण के लिये चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानी 'क ख ग' लीजिये। इसमें लेखक ने तीन स्वतन्त्र कहानियाँ 'हत्या', 'शहादत' और 'त्याग' दी हैं। इसमें कहानियों के चरित्र और घटना का विशेष महत्व नहीं है। वास्तविक महत्वपूर्ण अंश

उसका प्रभाव–विशेष है, जो पढ़ने वालों के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप लगाता है कि संसार स्वार्थ और सहानुभूति, हत्या और त्याग का रंगस्थल है। जहाँ एक ओर थोड़े से रूपये के लिये भाई भाई की हत्या करता है तो दूसरी ओर स्वामिभक्त कुत्ता अपने स्वामी के विछोह में अपने प्राण तक दे देता है। इसी प्रकार मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में न तो तुलसी, सूर और केशव का भारती के द्वार पर धरना देना और न भारती का वरदान देना ही मुख्य अंश है, वरन् कहानी का यह प्रभाव कि आधुनिक युग कविता के लिये उपयुक्त नहीं है। इस कहानी में यही प्रधान वस्तु है।

प्रभाव–प्रधान कहानियों की कला का सबसे महत्वपूर्ण अंश उन कहानियों का कला–रूप है। हिन्दी प्रभाव–प्रधान कहानियाँ मुख्य तीन रूपों में लिखी गई हैं, जिनका वर्णन कहानियों के विकास में हो चुका है। प्रभाव–प्रधान कहानी हिन्दी में अभी कुछ ही वर्षों से लिखी जाने लगी है, इसीलिये इस प्रकार की कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम है।

इन तीन प्रकार की मुख्य कहानियों के अतिरिक्त हास्यपूर्ण, ऐतिहासिक, प्राकृतवादी और प्रतीकवादी कहानियों का उल्लेख में विशेष रूप से करना चाहूंगी।

हास्यपूर्ण कहानियाँ हिन्दी में केवल जी. पी. श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द और बद्रीनाथ भट्ट ने लिखी। जी. पी. श्रीवास्तव की हास्यपूर्ण कहानियों का एक संग्रह 'लम्बी दाढ़ी' के नाम से प्रकाशित हुआ, परन्तु इन कहानियों में उच्चकोटि का हास्य नहीं है। बद्रीनाथ भट्ट, अन्नपूर्णानन्द और 'बेढब' इत्यादि कुछ थोड़े से लेखकों ने भी हास्यपूर्ण कहानियाँ लिखीं, परन्तु उनके हास्य में कोई विशेषता नहीं मिलती। प्रेमचन्द्र ने मोटेराम शास्त्री को नायक बनाकर मजेदार कहानियाँ लिखीं जिनमें उच्चकोटि का हास्य मिलता है। मोटेराम शास्त्री औरउनके मित्र चिन्तामणि प्राचीनकाल के विदूषकों की भाँति बड़े ही पेटू और हँसमुख बाह्मण हैं। मोटेराम शास्त्री का सत्याग्रह तो अपूर्व है और हास्यमयी कहानियों में उसका स्थान बहुत ऊँचा है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने 1910 ई. के आस–पास कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ 'सरस्वती' में लिखीं, परन्तु बाद में उन्होंने उपन्यासों की ओर विशेष ध्यान दिया और

ऐतिहासिक कहानियाँ लिखना बन्द कर दिया। 'प्रसाद' ने भी कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी जिनमें 'ममता' कहानी अत्यन्त सुन्दर और सराहनीय रचना है। प्रेमचन्द्र ने 'वज्रपात' और 'सारंधा', चतुरसेन शास्त्री ने 'भिक्षुराज', जिसमें अशोक महान् के पुत्र और पुत्री राजकुमार महेन्द्र और आर्या संघमित्रा का बोध–गया से वटवृक्ष लेकर लंका–यात्रा और लंका में बौद्ध धर्म के प्रचार का वर्णन है। सुदर्शन ने 'न्यायमन्त्री' जिसमें अशोक के न्यायमन्त्री शिशुपाल के न्याय का वर्णन है, आदि ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं। परन्तु सब कुछ लिखने के पश्चात् यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति ऐतिहासिक कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम हैं। बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री आदि कतिपय कहानी–लेखकों ने कुछ कहानियाँ प्राकृतवादी (Naturalistic) ढंग की लिखीं। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य समाज का सुधार करना विशेष था, परन्तु उनमें मानवता की लज्जाप्रद और घृणास्पद बातें कलात्मक सौंदर्य के साथ चित्रित की गई हैं। उनके सुन्दर और सत्य होने में कोई सन्देह नहीं–चरित्र–चित्रण और शैली की दृष्टि से वे बड़ी शक्तिशाली और सुन्दर रचनाएँ हैं, परन्तु साथ ही वे अमंगलकारी और कुरूचिपूर्ण हैं। उनके कथानक साधारणतः वेश्याओं, खानगियों, विधवाश्रमों, सड़क पर भीख माँगने वालों और गुण्डों के समाज से लिये गये हैं। उसका चरित्र–चित्रण यथार्थ और सजीव है, कला उनकी निर्दोष है, परन्तु जनता की रूचि और मंगल–भावना के लिये यह अच्छा होता है कि ये समाज–सुधारक अपनी अपूर्व प्रतिभा का उपयोग किसी भिन्न रीति से करते।

प्रतीकवादी नाटकों और उपन्यासों की भाँति प्रतीकवादी कहानियाँ भी लिखी गयीं, परन्तु उनकी संख्या हिन्दी में बहुत ही कम है। राय कृष्णदास की कहानी 'कला और कृत्रिमता' जिसमें वास्तविक और कृत्रिम कला का अन्तर बड़े ही कलापूर्ण ढंग से चित्रित है, इसी प्रकार की एक सफल रचना है। 'प्रसाद' की कहानी 'कला' भी बड़ी सुन्दर रचना है। स्कूल में यों तो सभी कला से प्रेम करते हैं, परन्तु रूपनाथ (सौंदर्य के प्रतीक) और रसदेव(रस के प्रतीक) कला की ओर सबसे अधिक आकर्षित हुये और कला भी उनसे कभी–कभी बातें कर लेती है। रूपनाथ सुन्दर, परन्तु बहुत कठोर हृदय वाला था। वह कला के बाह्य सौंदर्य पर मुग्ध था और अपनी चित्रकला में उसी का चित्रण किया करता था। दूसरी ओर रसदेव को लोग पागल समझते थे। वह कला के अन्तः

सौंदर्य का उपासक था और उसके गीतों में अन्तः सौंदर्य की व्यंजना मिलती थी। रूपनाथ को अपनी चित्रकला से द्रव्य और यश दोनों की प्राप्ति होती थी। परन्तु बेचारे रसदेव को कुछ भी नहीं मिलता, मिलता है कला का आदर और सम्मान। लेखक ने अन्तः सौंदर्य और कवित्व का महत्व बड़े ही सुन्दर और कलापूर्ण ढंग से व्यंजित किया है।

वास्तव में कोई कहानी इसीलिए नयी अथवा उत्कृष्ट नहीं बन जाती कि उसमें केवल वस्तु नयी है अथवा केवल उसका शिल्प नया है, उसकी उत्कृष्टता का मापदण्ड यह है कि लेखक ने उन लोगों का समावेश किस खूबी से कहानी में किया है, न कोरा शिल्प अपने में कुछ है, न कोरी वस्तु। दोनों के कुशल समावेश से ही कोई कहानी मन पर असर करने वाली बनती है। एक तीसरी चीज भी है, जो कहानी को उत्कृष्ट बना देती है और यह है लेखक की दृष्टि। दृष्टि के अभाव में कहानी (यदि अच्छी लिखी गई तो) महज मनोरंजक बनकर रह जाती है। कला का एक अजीब सुन्दर, पर बेकार टुकड़ा। आज की कहानी ने अपनी स्थिति स्वयं बना ली है। कहानी अपने विकास क्रम में आज जहाँ पहुँची है वहाँ उसका एक ही मुखौटा नहीं है वरन् वह अपने अनेक रुपों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को उजागर करती हुई आगे बढ़ती जा रही है।

रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आधुनिक युग की नयी कविता के शीर्षस्थ होने के साथ–साथ सप्तकीय क्षेत्र, में राहों के अन्वेषी रहे हैं। लोकतांत्रिक समाजवादी विचारधारा को केन्द्र बिन्दु मानकर अपनी काव्यधारा में राजनीति और जन के मध्य की संवादहीनता की स्थिति को कैसे परिवर्तित किया जाये, इसके साथ ही समकालीन यथार्थवाद को रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की रचनाओं में पर्याप्त महत्ता प्राप्त हुई है। उस समय जब संसार में विचारधाराओं के अन्त की घोषणाएं की जा रही थीं। ऐसे समय में दोनों लेखकों द्वारा पूरी प्रतिबद्धता से अपने–अपने काव्य लेखन में आधुनिक राजसत्ता के चरित्र, समाज में न्याय एवं समता, व्यक्ति और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर गम्भीरता से चिंतन कर समाजवादी विचारधारा को समृद्ध किया जा रहा था।

साहित्य समाज का दर्पण होता है क्योंकि साहित्य में समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कारिक स्थितियों की व्याख्या तो नहीं परन्तु उस समय की तत्कालीन परिस्थितियों का पता अवश्य लग जाता है इसका प्रमुख कारण यह होता है कि साहित्यकार इन परिस्थितियों से प्रभावित होता है और दृष्टिकोण तथा मानसिकता का निर्माण करने में सहायता लेता है। साहित्यकार युग दृष्टा एवं युग चेतना का संवाहक होने के कारण वह अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि की सीमा में मानव–चेतना को व्याख्यायित करते हुये अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता भी है और जीता भी है।

परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है। प्रत्येक युग में परिवर्तन निश्चित रूप से होते है। संसार में हो रहे परिवर्तन से व्यक्ति एवं मानव भी निश्चित रूप से प्रभावित होता है। जो परिवर्तन व्यक्ति एवं मानव में होते हैं वे ही मानव के समाज के जीवन–मूल्यों के विकास का आधार बनते हैं। साहित्यकार समाज का अभिन्न अंग हैं। साहित्यकार बुद्धिजीवी मनुष्य होते हैं। साहित्यकार के कन्धों पर दोहरा दायित्व होता है – प्रथम तो परिवेश से निर्मित मूल्यों का उद्घाटन करना, द्वितीय समाज के मानवीय चेतना को एवम् मानवीय भावनाओं का परिष्कार कर उन्हें संस्कारित करने की जब कोई विचारधारा समाज तथा परिवेश में परिव्याप्त हो जाती है तब जन–मानस में हलचल उत्पन्न कर विचलित कर देती है तो इसका सर्वाधिक प्रभाव एक लेखक के रूप में कथाकार पर होता है।

कथाकार चिन्ता नहीं चिन्तन करता है, वह जब भी कुछ सोचता है तो चिन्तन को अधिक महत्व देते हुए चिन्तन ही करता है। कथाकार की चेतना साधारण मानव की चेतना से अधिक स्पष्ट एवं तीव्र होती है यही कारण है कि समाज में हो रहे परिवर्तन का प्रभाव साहित्यकार पर शीघ्र होने लगता है। कथाकार रचनाओं में अपनी अनुभूतियों एवं मानवीय चेतना को बिम्बित करता है। किसी भी कथाकार की कृतियों में से किसी भी चेतना, कथ्य, भाषा प्रवृत्तियों अर्थात् कला एवं भाव पक्ष का अनुसंधान करने से पूर्व

रचनाकार के युग की सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों एवं परिवेश का अध्ययन आवश्यक होता है।

रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों ने तत्कालीन समय में कथा साहित्य में आई रिक्तता की पूर्ति हेतु नया शिल्पगत प्रयोग किया है। अकहानी, नयी कहानी के द्वन्द्व में घिरे कथा क्षेत्र को इन दोनों विद्वत मनीषियों ने वस्तुगत दिशा देने का प्रयास किया था। यह प्रयास साहित्यिक कहानी के रूप में था। इन दोनों विद्वत कथाकारों की कहानियों के वस्तु एवं शिल्पगत अध्ययन से आगे चलने वाले आन्दोलनों को एक नयी दिशा मिली। जहाँ एक ओर रघुवीर सहाय की कहानियों में न्याय और समता के आदर्शों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और उनके गैर रूमानी यथार्थ की धारणा को उजागर करने के साथ उनकी आत्मसजग जनतांत्रिक सम्वेदना अपने वैयक्तिक आचरण और रचना में उस करूणा या सहानुभूति के प्रति आंशकित है जो दूसरों को नीचा बना देती है। अपनी इसी सम्वेदना से समाज और व्यवस्था में व्याप्त गैर बराबरी के रघुवीर सहाय जी ने बहुत बारीकी से देखा है वहीं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में व्यवस्था के प्रति विद्रोही व्यक्तित्व, नारी की स्थिति, प्रेम रूप और ईश्वर का पारस्परिक संघर्ष, जमींदारी व्यवस्था, विघटित पतनशील मूल्यों, प्रवृत्तियों से मुक्ति और मानवीय गुणों से मुक्ति में संघर्षरत मनुष्य की गाथा आदि अनेक प्रश्न उठाये गये हैं। टूटती हुई मर्यादाओं तथा निखरती निष्ठाओं के बीच मानवीय मूल्यों के प्रति जो नयी आस्था पनप रही थी, इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियों और राजनीतिक भ्रांतियों को चीरकर मनुष्य की आंतरिकता पर आधारित जिस नई मर्यादा का उदय हो रहा था उसी को सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कहानियों का केन्द्र बिन्दु बनाया है। इसमें कोई दो राय नहीं कि रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य महत्ता के समक्ष उनकी कहानियाँ नगण्य ही हैं। पर तत्कालीन समय में कहानी आन्दोलन की तीव्रगति को देखते हुये आपकी कहानियाँ वस्तु शिल्प की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

एम. फिल. में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियाँ पर शोध करने के पश्चात मुझे ऐसा लगा कि मैं उनको उतना नहीं पढ़ और समझ सकी जितना मुझे शोध एवं

विश्लेषण करना चाहिए था। मन में एक जिज्ञासा और बहुत कुछ करने की तमन्ना थी। पर मैं क्या करूँ समझ में नहीं आ रहा था अर्थात् एम. फिल. करने के पश्चात में दिशाहीन सी हो गयी थी। यह ध्रुव सत्य है कि मार्गदर्शन एवं सहयोग के अभाव में किसी भी कार्य को पूर्ण करना कठिन होता है किन्तु इस मामले में मैं सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे ऐसी परिस्थितियों से नहीं गुजरना पड़ा। जिन्दगी के पर्याय एवं हमसफर पति डॉ. किशन यादव, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, अतर्रा पी. जी. कॉलेज, अतर्रा के सुझाव से कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. वेदप्रकाश द्विवेदी जी के प्रोत्साहन के फलस्वरूप कि आपका कार्य सर्वेश्वर जी पर है तो क्यों न आप रघुवीर सहाय को भी पढ़ डालें और तुलनात्मक अध्ययन करें। अर्थात् शोध प्रबन्ध के मार्गदर्शक की खोज एवं विषय के लिये मुझे भटकना नहीं पड़ा। चूँकि मेरा कार्य सर्वेश्वर दयाल की कहानियों पर तो था ही अतः मैंने अपना सम्पूर्ण अध्ययन रघुवीर सहाय की कहानियों पर केन्द्रित किया और धीरे–धीरे मैंने सम्पूर्ण गद्य साहित्य रघुवीर सहाय का पढ़ ड़ाला। इसलिये पूर्णतः मौलिक दृष्टि और स्वनिर्मित अध्ययन के द्वारा मैंने इस कार्य को नवीन, मुश्किल और कहीं–कहीं दुष्कर कार्य को करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को मैंने छः अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी कहानी–स्वरूप एवं आन्दोलन के अन्तर्गत मैंने कहानी के स्वरूप एवं संवेदना पर व्यापक प्रकाश डालते हुये कहानी की विकास यात्रा को प्रेमचन्द्रोत्तर कहानी से जोड़कर कहानियों के विविध रूप अकहानी, नयी कहानी, समान्तर एवं समानान्तर कहानी, साहित्यिक कहानी, सचेतन कहानी, समकालीन कहानी एवं आंचलिक कहानियों का मूल्यांकनपरक एवं तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों की कथावस्तु की प्रमुख घटनाएं गौण घटनाओं को रेखांकित करते हुये उनके कथा क्षेत्र के आरम्भ विकास को विश्लेषित करते हुये कहानियों के साम्य–वैषम्य का आंकलन किया है।

तृतीय अध्याय में आलोच्य कहानीकारों की कहानियों में पात्र योजना के अन्तर्गत पात्र, चरित्र एवं व्यक्तित्व की अवधारणाओं को विश्लेषित करते हुये पात्रों का वर्गीकरण करते हुये प्रमुख पुरुष एवं नारी पात्रों के आन्तरिक, बाह्य सौन्दर्य के वैशिष्ट्य को रेखांकितकरते हुये चरित्र चित्रण में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न शैलियों का आंकलन कर इनमें समानता एवं अन्तर को समग्र रूप में मूल्यांकन किया है।

चतुर्थ अध्याय के द्वारा रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में मैंने अभिव्यंजना–शिल्प के विभिन्न पहलुओं भाविक प्रतिमान, शब्द भण्डार, मुहावरे, संवाद योजना, वाक्य विन्यास तथा इसमें प्रयुक्त विभिन्न शैलियाँ, वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक, अलंकृत का शोधपरक चित्रण कर दोनों कथाकारों की रचनाओं में अन्तर व्यक्त किया है।

पंचम अध्याय में आलोच्य कहानियों में चित्रित राजनीतिक यथार्थ एवं परिवेश के तहत राजनीतिक अधिकारियों के कार्यों एवं विभिन्न राजनीतिक क्रियाकलापों की विडम्बनापरक व्याख्या प्रस्तुत कर परिवेश चित्रण को तत्कालीन परिवेश में व्यंग्यपरक मूल्यांकन प्रस्तुत कर इसके साम्य–वैषम्य को रेखांकित करने का शोधपरक प्रयास किया है।

षष्ठम अध्याय के अन्तर्गत मैंने रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक मूल्य तथा परिवेश चित्रण को पारिवारिक जीवन सम्बन्धों के स्वरूप एवं विघटन (विकृति) को स्पष्ट करते हुये नैतिक मूल्य, काम, प्रेम, विवेक, मानवीय भावना को सामाजिक परिवेश से जोड़कर इनकी समस्याओं एवं स्वरूप का चित्रण करते हुये व्यापक रूप से शोधपरक मूल्यांकन कर दोनों कहानीकारों के सामाजिक मूल्य तथा परिवेश चित्रण की समानता एवं अन्तर का मूल्यांकनपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

उपसंहार के अन्तर्गत रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के कथा साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन के निष्कर्ष को विवेचित विश्लेषित किया गया है। आलोच्य कथाकारों की कहानियाँ यथार्थ की नई दुनिया का उद्घाटन करने के साथ ही

तत्कालीन समय के अनुभव को व्यंजित करती हैं। इसके साथ ही तत्कालीन समय की गहरी जनतांत्रिक संवेदना तथा स्वतन्त्रयोत्तर भारत में पूँजीवादी ढ़ाँचे और पश्चिमी, आधुनिकता की नकल के कारण पनपती असमानताओं को भी विभिन्न रूपों और परतों में सूक्ष्मता से देखा, परखा और व्याख्यायित करने की मैंने पूरी कोशिश की है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट दिया गया है। परिशिष्ट के अन्तर्गत आलोच्य कथाकारों की समग्र रचनाओं की सूची दी गई है, इसमें प्रत्येक पुस्तक का प्रकाशन एवं संस्करण भी दिया गया है। इसी परिशिष्ट में सहायक सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची दे दी गई है। वे ग्रन्थ कोश एवं समाचार–पत्र, पत्रिकाएं जो अन्वेषिका के विषय विश्लेषण की आधारशिला बन सके है। इसी परिशिष्ट के अन्तर्गत रखे गये हैं। साथ में प्रत्येक ग्रन्थ का प्रकाशन एवं संस्करण भी दिया गया है।

आभार

शोध–प्रबन्ध के पूरा हो जाने के बाद जब मैं आभार लिखने के लिये तत्पर होती हूँ तो ऐसा लगता है कि मेरे पास शब्द ही शेष नहीं बचे हैं हालाँकि ऐसा शब्दों की कमी के कारण नहीं बल्कि भावनाओं की अधिकता के कारण हो रहा है। भावनाओं, कृतज्ञता एवं श्रद्धा को व्यक्त करते हुये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्ति में मेरी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तौर पर सहायता एवं प्रोत्साहित करने वाले हित चिंतकों गुरूजन, मित्रों, परिचितों, अपरिचितों के प्रति कृतज्ञता–भाव प्रकट करके मैं उस मदद भार से उऋण नहीं हो रही हूँ, बल्कि इस समय उन सबको याद करना स्वर्गिक लग रहा है।

जीवन में कुछ ऐसे क्षण होते हैं, जिनसे उऋण होना सम्भव नहीं होता और न होने की इच्छा ही होती है और इसी तरह का ऋण मुझ पर है मेरे शोध निर्देशक परम आदरणीय डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी जी की कृपा का। जिन्होंने बड़ी आत्मीयता और स्नेह से पूरित आशीर्वाद, कृपापूर्ण सुदक्ष एवं सक्षम निर्देशन द्वारा मेरे अन्दर यह अनुभव प्रक्षिप्त किया कि मैं महज उनके निर्देशन में कार्य करने वाली शोध छात्रा नहीं बल्कि आपके परिवार की ही एक सदस्य हूँ। इसे मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ। सातत्यपूर्ण व्यस्तता के बावजूद आपने निरन्तर प्रोत्साहन एवं प्रेरणा देकर मेरी अगणित शंकाओं एवं कठिनाइयों को सुलझाया साथ ही कितने ही उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये। ऐसे सूक्ष्म एवं मर्मग्रहिणी मेधा जिन्होंने मुझे वह दृष्टि प्रदान की जिससे प्रस्तुत विषय को मैं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुई। समय–समय पर उचित सुझावों एवं निर्देशों आदि से सक्रिय एवं आत्मीय विलक्षण मार्गदर्शन किया उसके लिये मैं हार्दिक कृतज्ञता एवं श्रद्धा निवेदित करती हूँ।

मैं आभारी हूँ अपने जीवनसाथी एवं राजनीति विज्ञान के विद्वान डॉ. किशन यादव की जिनका पारिवारिक जीवन में सहयोग के साथ–साथ मेरे साहित्यिक क्षेत्र में पग–पग पर उत्साहवर्धन एवं उचित मार्गदर्शन यदि न होता तो इस शोध प्रबन्ध की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी। आपकी इस सहृदयता को आभार के चन्द लब्जों में

बाँधकर मैं सीमित नहीं करना चाहती। जीवनपथ में जीवनसाथी से जो स्नेह, प्रेरणा और आत्मीयता मिली वह आजीवन नहीं भुलाई जा सकती है। आपके इसी स्नेह, प्रेरणा और आशीर्वाद की मैं सदैव अभिलाषी रहूँगी।

अन्य पारिवारिक सम्मानित सदस्यों के प्रति मैं केवल अपनी भावना व्यक्त करना चाहती हूँ। धन्यवाद देकर मैं इन्हें या इनके कद को छोटा नहीं करना चाहती इसलिये मैं आभारी हूँ अपने पूज्य ससुर प्रोफेसर जी. एस. यादव जी, अपनी दीदी डॉ. प्रतिमा यादव (प्राध्यापक हिन्दी),श्री अवधेश प्रताप सिंह यादव व अपने पिता श्री एच. आर. यादव एवं माँ श्रीमती रामवती, डॉ0 हरिहर यादव, डॉ. अनुपमा जी,डॉ. उमारतन यादव (रीडर, अर्थशास्त्र विभाग), श्रीमती सुधा यादव, डॉ0 राधिका व गोपाल ,भाई संजू व विद्या, डॉ. ललिता त्रिपाठी जी, का जिन्होंने समय–समय पर मेरा उत्साहवर्धन कर उत्साह बढ़ाया और इस कार्य को अपने सहयोग से सरल कर मेरे शोध प्रबन्ध की पूर्णता हेतु मुझे प्रेरणा दी। इसके साथ ही अपने बाल–गोपाल–पार्थ, प्रकृति और गौरी की जिन्होंने अपनी बाल–सुलभ उच्छृंखलाओं से दूर रखकर अपनी माँ को परेशान नहीं किया और इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मेरा ख्याल रखा।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रणयन में मुझे विभिन्न पुस्तकालयों से सामग्री संकलित करने में मदद मिली। मैं सर्वप्रथम भोपाल विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, मध्य प्रदेश हिन्दी भवन, भोपाल, जीवाजी पुस्तकालय ग्वालियर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय का केन्द्रीय पुस्तकालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का केन्द्रीय पुस्तकालय, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय एवं महाविद्यालय के पुस्तकालय की विशेष आभारी हूँ। मैं इन पुस्तकालयों की उत्तम व्यवस्था तथा व्यवस्थापकों के सहयोग के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ। इसके साथ ही मैं प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से आभार प्रकट करती हूँ उन प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों, पुस्तकों, के लेखकों का जिनसे मुझे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सामग्री चयन के रूप में विशेष मदद मिली। जिसके कारण इस विषय का शोध तल स्पर्शी हो सका।

अन्त में मैं आभारी हूँ इस कार्य को कम्प्यूटर के द्वारा सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने के लिये महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स के संचालक मु. जियाउर्रहमान अंसारी (गुड्डू) की। जिन्होंने हिन्दी साहित्य में मेरे इस कार्य को त्रुटि रहित ढंग से प्रस्तुत करवाने में मुझे सहयोग दिया। कहीं–कहीं टाइपिंग की त्रुटि भी हो सकती है। अतः शोध–प्रबन्ध में कोई सशक्त पक्ष यदि है तो वह गुरूजनों का ही है एवं जो असमर्थता एवं त्रुटियाँ है वह मेरी अपनी अल्प बुद्धि की ही है।

8 मार्च, 2009 अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस

शोधकर्त्री

अर्चना यादव

(श्रीमती अर्चना यादव)

एम. फिल., शोध छात्रा हिन्दी

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

अनुक्रमणिका

✦✦✦

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

हिन्दी कहानी – स्वरूप एवं आन्दोलन

कहानी गद्य साहित्य की सबसे सशक्त एवं लोकप्रिय विधा है। मानव परिवेश के प्रति जिज्ञासा और अपने अनुभवों, विचारों तथा आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति की कामना मानव की सहज प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार कहानी के विकास की कथा उतनी ही पुरानी है जितनी संसार के विकास की कथा। मानव एक ओर जहाँ जीवन के अनुभवों, अपने विचार और अपनी अभिलाषाओं को अभिव्यक्त करता है वहीं दूसरी ओर सामाजिक प्राणी होने के कारण दूसरों के अनुभवों एवं विचारों के प्रति उसकी सहज रूचि होती है। अतः अपनी कथा कहने और दूसरों को सुनने की प्रवृत्ति के साथ ही कहानी के विकास की धारा आरम्भ हो जाती है। जिज्ञासा और आत्माभिव्यंजना की नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ ही कहानी–कला की मूल सृजन–शक्तियाँ हैं। प्रारम्भ में मनोरंजन और आत्म–परितोष के लिये कहानी कही सुनी जाती थी। कालान्तर में कहानी मनोरंजकता के साथ व्यक्ति और समाज के महत्वपूर्ण अनुभवों के प्रकटीकरण का उत्तरदायित्व निर्वहन करते हुये नीति और उपदेश तथा सामाजिक सुधार आदि की संवाहिका बनी, तो आज कहानी मानव की बाह्य ही नहीं, अपितु गहरी से गहरी आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर जीवन–मर्म के अनछुए पहलुओं को उद्घाटित कर रही है।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कहना है कि – "हिन्दी कहानियों के उद्भव और विकास में भारत के प्राचीन कथा साहित्य, पाश्चात्य कथा साहित्य एवं लोक कथा साहित्य का सम्मिलित प्रभाव देखा जा सकता है।"

भारतवर्ष में कथा–कहानियों का इतिहास सहस्त्रों वर्ष पुराना है। इसका प्रारम्भ उपनिषदों की रूपक–कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा बौद्ध साहित्य की जातक–कथाओं से प्राप्त होता है। भारतवर्ष में कथा साहित्य के विकास के मुख्य तीन युग हैं। प्राचीनकाल में उपनिषदों की रूपक–कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा जातक–कथाओं का उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन कथाओं का महत्व बहुत अधिक है, परन्तु साधारण जनता कहानी को जिस अर्थ में ग्रहण करती है, उस अर्थ में इन कहानियों का महत्व उतना

अधिक नहीं है, क्योंकि उनका उद्देश्य मनोरंजन नहीं था, वरन् कहानी के रूप में किसी गम्भीर तत्व की आलोचना अथवा नीति और धर्म की शिक्षा ही इनका एकमात्र ध्येय था। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने लेख 'कादम्बरी के चित्र' में सत्य ही लिखा है कि :

पृथ्वी पर सब जातियाँ कथा–कहानियों को सुनना पसन्द करती हैं। सभी सभ्य देश अपने साहित्य में इतिहास, जीवन–चरित्र और उपन्यासों का संचय करते हैं परन्तु भारतवर्ष के साहित्य में यह बात नहीं दीख पड़ती।

वास्तव में संस्कृत–साहित्य में मनोरंजन के लिये लिखी गई कथा–कहानियों का बहुत अभाव है। 'वासवदत्ता', 'कादम्बरी', 'दशकुमार चरित' इत्यादि कुछ इनी–गिनी कथाएँ ही संस्कृत साहित्य की निधि हैं। परन्तु साहित्य में इसका अभाव होने पर भी सम्भव है साधारण जनता में कथा–कहानियों का प्रसार पर्याप्त मात्रा में ही रहा हो। अवंती–नगरी की बैठकों में बैठकर लोग राजा उदयन की कथा कहते थे, इसका प्रमाण 'मेघदूत' में प्राप्त है। कवि–कुल–गुरु कालिदास ने उन कथाओं का उल्लेख नहीं किया जिससे हम उस काल की कहानियों का आस्वादन पा सकते, परन्तु इतना तो निश्चित है कि देश के अन्य भागों में और भी कितने 'उदयनों' की कथा वृद्ध लोग अपने उत्सुक श्रोताओं को सुनाते रहे होंगे। बहुत दिन बाद विक्रमादित्य, भरथरी (भर्तृहरि), मुंज और राजा भोज की कथाएँ भी वृद्ध लोग उसी चाव से अपने श्रोताओं को सुनाते रहे होंगे और मध्यकाल में आल्हा–ऊदल, पृथ्वीराज तथा अन्य शूर–वीरों की कहानियाँ भी उसी प्रकार कथाओं की श्रेणी में सम्मिलित कर ली गई होंगी। ये कथाएँ मौखिक प्रथा से निरन्तर चलती थीं। इनमें प्रसिद्ध और लोक–प्रचलित राजाओं तथा शूर–वीरों की वीरता, उनके प्रेम, न्याय, विद्या और वैराग्य इत्यादि गुणों का अतिरंजित वर्णन हुआ करता था। 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी' तथा 'भोज–प्रबन्ध' इत्यादि कथा–संग्रह उन्हीं असंख्य कहानियों के कुछ अवशेष–मात्र बच गये हैं।

महाभारत के उपाख्यानों, उपनिषदों की रूपक–कथाओं तथा जातक–कथाओं की परम्परा भी लोप नहीं हुई, वरन् पुराणों में उस परम्परा का एक विकसित रूप मिलता है। इन पुराणों में आर्यों की अद्भुत कल्पना–शक्ति ने असंख्य नये देवी–देवताओं की सृष्टि की और उनके सम्बन्ध में कितनी ही तरह की कहानियों की सृष्टि हुई। आजकल की बुद्धिवादी जनता उन पौराणिक कथाओं को कपोल–कल्पना कह कर उनकी उपेक्षा और अवहेलना कर सकती

है, परन्तु भारतवर्ष की सरल जनता का इन कहानियों पर अटल विश्वास था और इनमें उसे कोई अस्वाभाविकता अथवा अतिशयोक्ति नहीं दिखाई पड़ती थी।

'कादम्बरी' तथा 'दशकुमार–चरित्र' आदि साहित्यिक रचनाओं में भाषा का आडम्बर और अद्‌भुत शब्द–जाल, विविध प्रकार के लम्बे–लम्बे वर्णन तथा अवांतर प्रसंग ही अधिक मिलते हैं; कला सौन्दर्य की ओर लेखकों की रुचि कम पाई जाती है। इस प्रकार की रचनाएँ हैं भी बहुत कम। इससे जान पड़ता है कि प्राचीनकाल में जनता मुख्य दो वर्गों में विभाजित थी – एक शिक्षित द्विजों का वर्ग जो महाभारत के उपाख्यानों, जातक–कथाओं तथा पुराणों की अद्‌भुत कल्पनापूर्ण कथाओं से अपना मनोरंजन करती थी और दूसरा अशिक्षित शूद्रों, वर्णसंकरों तथा स्त्रियों का वर्ग जो उदयन की प्रेम–कथाओं, विक्रमादित्य के पराक्रम और न्याय की अतिरंजित कहानियों तथा भरथरी, मुंज, पृथ्वीराज, आल्हा–ऊदल इत्यादि की प्रेम–वीरता तथा विद्या–वैराग्य की कथाओं से अपना मनोरंजन करती थी। एक बहुत ही छोटा वर्ग उन साहित्यिकों का था, जिन्हें कथा–कहानियों से विशेष रुचि न थी, वरन् कथा–आख्यानों की ओट में अपना पांडित्य–प्रदर्शन करना ही उनका उद्‌देश्य हुआ करता था।

कथा–साहित्य के विकास का दूसरा युग तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में होता है, जब उत्तर भारत में मुसलमानों का आधिपत्य फैल गया। पंजाब तो महमूद गजनवी के समय–ग्यारहवीं शताब्दी–से ही मुसलमानी राज्य का प्रांत रहा था, परन्तु तेरहवीं शताब्दी में समस्त उत्तरी भारत में मुसलमानों का आधिपत्य हो गया। इतना ही नहीं, भारत में मुसलमानों की संख्या बढ़ती ही गई और वे गाँवों तक में अधिक संख्या में बस गये। वे अपने साथ अपनी एक संस्कृति ले आने के साथ ले आये थे कथा–कहानियों की एक समृद्ध परम्परा। अरब–निवासी अपने साथ 'सहस्त्र रजनी–चरित्र' – (Arabian Nights) तक फारस देश के प्रेमाख्यात लेने आये थे। यहाँ भारत में पुराणों की कथा–परम्परा सजीव थी। इन परम्पराओं के परस्पर–सम्पर्क से, आदान–प्रदान से, एक नयी कथा–परम्परा का प्रारम्भ हुआ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। जिस प्रकार धर्म, कला, समाज और संस्कृति के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान दो महान् जातियों के परस्पर सम्पर्क और आदान–प्रदान से एक नये धर्म और समाज, कला और संगीत, साहित्य और संस्कृति का विकास हुआ, उसी प्रकार अथवा उससे कहीं अधिक विकास कथा–कहानियों की परम्परा में हुआ होगा, क्योंकि कथा–कहानियों का

सम्पर्क साधारण जनता का सम्पर्क था, किसी वर्ग–विशेष का नहीं। धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा अन्य क्रांतियों का प्रभाव तो तत्कालीन साहित्य और इतिहास में मिल जाता है, परन्तु कथा–कहानियों की परम्परा में जो अद्भुत क्रांति हुई होगी वह बहुत कुछ मूक–मौखिक क्रांति थी। साहित्य में उसका उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी प्रेममार्गी सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों तथा लोक–प्रचलित अकबर और बीरबल के नाम से प्रसिद्ध विनोदपूर्ण कथाओं में इस परम्परा का कुछ आभास मिल जाता हैं, जो आगे बढ़कर अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में मुंशी इंशाअल्ला खाँ की 'उदयभानचरित' या 'रानी केतकी की कहानी' के रूप में प्रकट होता है। 1950–60 ई. के आसपास जब मुद्रण यन्त्र के प्रचार से कुछ कथा–कहानियों के संग्रह प्रकाशित हुये तब 'तोता मैना', 'सारंगा–सदाबृज', 'छबीली–भटियारिन', 'गुल–बकावली', 'किस्सये चार यार' इत्यादि कहानियाँ जिन्हें जनता बड़े चाव से पढ़ती थी, उसी परम्परा की प्रतिनिधि कहानियाँ थीं।

मुसलमान–युग की कहानियों की प्रमुखतम विशेषता उनमें प्रेम का चित्रण है। प्रेम का चित्रण प्राचीन भारतीय साहित्य में भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कालिदास के नाटक 'शकुन्तला', 'विक्रमोर्वशी' और 'मालविकाग्निमित्र', भवभूति की 'मालतीमाधव', हर्ष की 'रत्नावली', शूद्रक की 'मृच्छकटिक' तथा वाण की 'कादम्बरी' में प्रेम का ही चित्रण मिलता है। पुराणों में भी गोपियों और श्रीकृष्ण की रासलीला, उषा–अनिरूद्ध, और नल–दमयन्ती की प्रेम कथाएँ विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। लोक–प्रचलित कहानियों में भी राजा उदयन की प्रेम कथाएं बड़े चाव से सुनी जाती थी। सच बात तो यह है कि गुप्तकाल से ही उत्तर भारत में एक ऐसी संस्कृति का विकास हो रहा था, जिसमें प्रेम और विलासिता की ही प्रधानता थी। फिर इधर मुसलमान अपने साथ लैला–मजनू और शीरीं–फरहाद की प्रेम–कथाएँ ले आये थे। दोनों के सम्पर्क से कहानी की नयी परम्परा चल निकली। उसमें प्रेम की प्रधानता स्वाभाविक ही थी। प्रेममार्गी सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों का विशद् विवेचन भी देखने को मिलता है। इन कहानियों का कथानक फारस देश के प्रेमाख्यानों के आधार पर भारतीय वातावरण के अनुरूप कल्पित हुआ। नल–दमयन्ती, उषा–अनिरूद्ध और शकुन्तला–दुष्यन्त इत्यादि की भारतीय प्रेम–कथाओं के साथ फारसी प्रेमाख्यानों का सम्मिश्रण कर भारतीय वातावरण के अनुरूप आदर्शों की रक्षा करते हुये इसी प्रकार की कितनी प्रेम–कहानियाँ जनता में प्रचलित रही होंगी। इन कहानियों में पारलौकिक और विशुद्ध प्रेम से प्रारम्भ करके विषय–भोग जन्य अश्लील प्रेम तक का

चित्रण मिलता है। प्रेममार्गी सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों में प्रेम आदर्श विशुद्ध रूप में मिलता है और उसमें स्थान–स्थान पर अलौकिक और पारलौकिक प्रेम की ओर भीं संकेत होता है। जायसी के 'पद्मावत' को ही लीजिये – उसमें रतनसेन और पद्मावती का प्रेम कितना विशुद्ध और आदर्श है। मुंशी इंशाअल्ला खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' में भी प्रेम का वही रूप मिलता है। धीरे–धीरे समय बीतने पर राजकुमारों और राजकुमारियों के आदर्श और विशुद्ध प्रेम के स्थान पर साधारण प्रेमियों और नायक–नायिकाओं के लौकिक प्रेम का भी प्रदर्शन होने लगा और क्रमशः वासना–जनित भोग और विलास की भी अभिव्यक्ति होने लगी। 'छबीली भटियारिन', 'तोता–मैना' और 'गुलबकावली' इत्यादि कहानियों में इसी लौकिक प्रेम तथा भोग–विलास का चित्रण मिलता है।

इस युग की कहानियों की दूसरी विशेषता हास्य और विनोद की परम्परा का प्रचलन में रहना। गम्भीर प्रकृति वाले आर्य हास्य–विनोद से दूर ही रहते थे, परन्तु मुसलमान प्रायः विनोद–प्रिय होते थे। इसीलिये उनके संसर्ग से विनोद–प्रिय कहानियों की सृष्टि आरम्भ हो गयी। अकबर और बीरबल के नाम से प्रसिद्ध विनोदपूर्ण कहानियों की सृष्टि इसी काल में हुई थी। इस युग की तीसरी प्रमुख विशेषता अस्वाभाविक, अतिप्राकृतिक और अतिमानुषिक प्रसंगों की अवतारणा थी। यों तो पौराणिक कथाओं में भी इसी प्रकार के प्रसंग पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, परन्तु पुराणों में जहाँ आर्यों की सृजनात्मक कल्पना प्रतीकवादी ढंग के अधिकांश देवी–देवताओं तथा अन्य शक्तियों की सृष्टि करती थी, वहाँ इन कहानियों में प्रतीक की भावना है ही नहीं, वरन् कथा को मनोरंजक बनाने के लिये और कभी–कभी कथा को आगे बढ़ाने के लिये भी अभौतिक अथवा अतिभौतिक सत्ताओं तथा अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंगों का उपयोग किया जाता था। उड़नखटोला, उड़नेवाला घोड़ा, बातचीत करने वाले मनुष्यों की भाँति चतुर पशु और पक्षी, प्रेत, राक्षस, देव, परी और अप्सरा इत्यादि की कल्पना केवल कल्पना–मात्र थी। इनसे किसी आध्यात्मिक सत्य अथवा गम्भीर तत्व की गवेषणा नहीं होती थी, केवल कथा में एक आकर्षण और सौन्दर्य आ जाता था। उदाहरण के लिये कुतुबन की 'मृगावती' में राजकुमारी मृगावती उड़ने की विद्या जानती थी। मंझन–कृत 'मधुमालती' में अप्सराएँ मनोहर नामक एक सोते हुये राजकुमार को रातों–रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आती हैं। मनोहर से अचल प्रेम होने के कारण जब मधुमालती की माता क्रोध में आकर उसे पक्षी हो जाने का शाप देती है, तो राजकुमारी

पक्षी बनकर उड़ने लगती है, फिर भी उसे मनुष्यों की भाँति वाणी, भाषा और पहचान की शक्ति है। 'पद्मावत' में हीरामन तोता तो पूरा पण्डित है और प्रेमदूत बनने में नल में हंस का भी कान काटता है। 'रानी केतकी की कहानी' में तो इस प्रकार के अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंग आवश्यकता से अधिक मिलते हैं।

भारतीय कहानियों के विकास का तीसरा युग बीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। 1750 ई. से ही अंग्रेजों ने भारत में अपनी जड़ जमाना प्रारम्भ कर दिया था और 1857 ई. तक सारे भारतवर्ष में उनका साम्राज्य स्थापित हो गया था। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के लिये स्कूल और कालेज खोले, न्यायालयों की सृष्टि की, मुद्रण–तंत्र का प्रचार किया और रेल, तार, डाक, अस्पताल इत्यादि खोले। साथ ही ईसाई मिशनरियों ने घूम–घूम कर अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। इसके फलस्वरूप हमारे साहित्य, संस्कृति, धर्म, समाज और राजनीति इत्यादि सभी क्षेत्रों में एक अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई पड़ा। कहानी–साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा और उसमें भी अद्भुत परिवर्तन हुआ। परन्तु तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों के आगमन से कहानी–साहित्य में जो परिवर्तन हुआ था, उससे यह नितांत भिन्न था। आधुनिक काल में पाश्चात्य कथा–साहित्य और परम्परा से सम्पर्क हुआ ही नहीं और यदि हुआ भी तो बहुत कम, क्योंकि अंग्रेजों ने अपना साम्राज्य तो स्थापित अवश्य किया, परन्तु मुसलमानों की भाँति वे भारत में बसे नहीं और अपने को भारतीय जनता से दूर ही रखते रहे। फिर भी पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और भौतिक विचारधारा का भारतवासियों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि आधुनिक काल में जनता की रुचि, विचार, भावना, आदर्श और दृष्टिकोण प्राचीनकाल से एकदम भिन्न हो गया और इतना अधिक भिन्न हो गया कि कहानी को अब हम कहानी मानने के लिये भी प्रस्तुत नहीं होते। राजकुमारों और राजकुमारियों की प्रेम–कथाएँ, राजा–रानी की आश्चर्यजनक बातें, विक्रमादित्य की न्याय–कहानियाँ, राजा भोज का विद्याव्यसन और उसके दान की कथाएँ, कर्ण और दधीचि का दान, अर्जुन और भीम की वीरता हमें कपोलकल्पना जान पड़ने लगीं। फल यह हुआ कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से कहानी की एक बिल्कुल नयी परम्परा चल निकली जिसे 'आधुनिक कहानी' कहते हैं।

प्राचीन और आधुनिक कहानियों में मूलभूत अन्तर है और इस अन्दर का कारण उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य संस्कृति और विचारों के सम्पर्क से उत्पन्न एंक नवीन जागृति और चेतना है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से हमारे दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया। आधुनिक शिक्षा की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं – यह आलोचनात्मक और वैज्ञानिक है; यह सन्देह का पोषण करती है और गुरुडम की विरोधी है; प्रकृति की भौतिक सत्ताओं पर विश्वास करती है और अभौतिक अथवा अतिभौतिक सत्ताओं की अविश्वासी है; व्यक्तिगत स्वाधीनता की घोषणा करती है और रुढ़ियों, परम्पराओं तथा अंधविश्वासों का विरोध करती है। इस बुद्धिवाद के प्रभाव से हमें भूत, प्रेत, जिन्न, देव, राक्षस, उड़न–खटोला, उड़ने वाला घोड़ा इत्यादि अभौतिक अथवा अतिभौतिक, अप्राकृत अथवा अतिप्राकृत अमानुषिक सत्ताओं में अविश्वास होने लगा। फलतः कहानियों में इनका उपयोग असह्य जान पड़ने लगा। इस प्रकार आधुनिक काल में कहानी की सृष्टि करने में केवल आकस्मिक घटनाओं (Chances) और संयोगों (Coincidences) का ही सहारा लिया जा सकता है। 'प्रसाद', ज्वालादत्त शर्मा और विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रारम्भिक कहानियों में यही हुआ भी। कहानी–लेखक को कथानक चुनने और उसका क्रम सजाने में अधिक सतर्क रहना पड़ता था, क्योंकि अभौतिक तथा अतिभौतिक सत्ताओं के लोप से कथा की मनोरंजकता का सारा भार आकस्मिक घटनाओं और संयोगों के कौशलपूर्ण प्रयोग पर आ पड़ा। ठीक इसी बीच भारतवर्ष में मनोविज्ञान के अध्ययन की ओर विद्वानों की अभिरुचि बढ़ने लगी। लोगों को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि देखने और सुनने जैसे साधारण कार्यों में भी आँखों और कानों की अपेक्षा मस्तिष्क का ही अधिक महत्वपूर्ण कार्य होता है। इस प्रकार हमें मानव–मस्तिष्क की व्यापक महत्ता का बोध हुआ और यह अनुभव होने लगा कि आकस्मिक घटनाओं तथा संयोग की अपेक्षा जीवन में मनुष्य के मस्तिष्क और मन का कहीं अधिक प्रभाव और महत्व है। संसार का वास्तविक नाटक मानव–मस्तिष्क और मन का नाटक है; आँख, कान तथा अन्य इन्द्रियों का नहीं। फलतः कहानियों में इसी मानव–मस्तिष्क और मन के नाटक का चित्रण होने लग गया। अभौतिक और अतिभौतिक सत्ताओं के निराकरण से कहानियों की मनोरंजकता में जो कमी आ गयी थी, उसे इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने पूरा ही नहीं किया, वरन् और आगे भी बढ़ाया। जैसे मुंशी प्रेमचन्द्र ने लिखा है – 'आधुनिक कहानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ चित्रण को अपना ध्येय समझती है'।

यों तो साहित्य के प्रत्येक अंग और रूप की परिभाषा प्रस्तुत करना सरल बात नहीं है, परन्तु आधुनिक कहानी की परिभाषा प्रस्तुत करना शायद सबसे कठिन है। फिर भी साहित्य के अन्य रूपों के साथ इसकी समता और विषमता प्रदर्शित कर, इसकी विशेषताओं का सूक्ष्म विश्लेषण और इसकी व्याख्या सन्तोषजनक रूप से की जा सकती है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर आधुनिक कहानी क्या है ?

कुछ कथाकारों का मानना है कि कहानी और उपन्यास में विशेष अन्तर नहीं है कथानक और शैली की दृष्टि से कहानी उपन्यास के बहुत निकट है। केवल कहानी का विस्तार उपन्यास से बहुत कम होता है। इस मत के अनुसार हम इस सारांश पर पहुँचते हैं कि कहानी उपन्यास का ही लघु रूप है और एक ही कथानक इच्छानुसार बढ़ाकर उपन्यास और छोटा करके कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु यह मत सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। कहानी, उपन्यास का छोटा रूप नहीं, वरन् वह उससे एक सर्वथा भिन्न और स्वतंत्र साहित्य रूप है। बाह्य दृष्टि से कहानी और उपन्यास में समानता अवश्य है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों में स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

उपन्यास में सबसे प्रधान वस्तु उसका कथानक हुआ करता है और बिना कथानक के उपन्यास की सृष्टि हो ही नहीं सकती। भाव–प्रधान उपन्यासों में भी एक कथानक का होना अनिवार्य होता है। परन्तु आधुनिक कहानी में कथानक का होना आवश्यक होते हुये भी अनिवार्य नहीं है, कितनी ही कहानियों में कथानक होता ही नहीं। कभी–कभी केवल कुछ मनोरंजक बातों, चुटकुलों और चित्त को आकर्षित करने वाली सूझों के आधार पर ही कहानी की सृष्टि हो जाया करती है। उदाहरण के लिये प्रस्तुत पुस्तक में संकलित भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' देखिये। इसमें कथानक कुछ भी नहीं है, केवल एक मनोरंजक बात जिसे लेखक ने अपनी अद्‌भुत कल्पना–शक्ति से, केवल अपनी शैली के बल पर एक सुन्दर कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार प्रेमचन्द्र की कहानी 'पूस की रात' में कुछ चरित्रों के द्वारा एक वातावरण की सृष्टि की गई है, परन्तु उसमें कथा–भाग नगण्य है। इसी प्रकार 'अज्ञेय' की कहानी 'रोज' में कथानक का अंश बहुत ही गौण है। लेखक ने कुछ चरित्रों के द्वारा एक अद्‌भुत प्रभाव (Effect) की सृष्टि की है, जिससे नायक की ओर पाठकों का ध्यान भी नहीं जाता।

आधुनिक कहानी में जहाँ कथानक होता भी है, वहाँ कहानी का कथानक उपन्यास के कथानक से बहुत भिन्न हुआ करता है। उपन्यास में प्रायः एक मुख्य कथानक के साथ–ही–साथ दो–तीन गौण कथाएँ भी चलती रहती हैं और जहाँ गौण कथानक नहीं होते, वहाँ मुख्य कथानक ही इतना विस्तृत हुआ करता है कि उससे जीवन का पूरा चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु कहानी में अधिकांश गौण कथाएँ होती ही नहीं; केवल एक मुख्य कथा होती है और उससे भी जीवन का पूरा चित्र प्रकाश में नहीं आता, केवल किसी अंग–विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है। कुछ कहानियों में जहाँ मुख्य कथानक के अतिरिक्त कुछ गौण कथाएँ भी होती हैं वहाँ भी जीवन के किसी अंग–विशेष पर ही प्रकाश पड़ता है, पूरे जीवन का चित्र उपस्थित नहीं होता। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि कहानी का कथानक अपूर्ण–सा होता है और उसे इच्छानुसार पूर्ण किया जा सकता है – आगे बढ़ाया जा सकता है। कहानी का कथानक अपने में ही पूर्ण होता है और उसे कठिनाई से आगे बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार कहानी और उपन्यास में महान् अन्तर होता है।

चरित्र की दृष्टि से भी कहानी और उपन्यास में उतना ही अन्तर है जितना कथानक की दृष्टि से। उपन्यास में चरित्र भी एक आवश्यक अंग है। घटना–प्रधान तथा भाव–प्रधान उपन्यासों में भी चरित्र होते हैं और उनका यथार्थ चित्रण किया जाता है, परन्तु कहानियों में चरित्र का होना अनिवार्य नहीं है। कितनी ही कहानियों में चरित्र होते ही नहीं, या होते भी हैं तो गौण होते हैं। उदाहरण के लिये भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' में चरित्र है ही नहीं और 'पूस की रात' तथा 'रोज' कहानियों में चरित्र–चित्रण का प्रयास नहीं मिलता, वरन् उनमें चरित्र केवल निमित्त मात्र हैं, लेखक का मुख्य उद्देश्य वातावरण और प्रभाव की सृष्टि करना है। चरित्र–प्रधान और कथा–प्रधान कहानियों में चरित्र होते अवश्य हैं, परन्तु उपन्यासों की भाँति उनका सम्पूर्ण चरित्र–चित्रण कहानी में नहीं मिलता, वरन् किसी पक्ष–विशेष का ही चित्रण मिलता है। सच तो यह है कि पूर्ण रूप से चरित्र–चित्रण के लिये कहानी में स्थान नहीं होता।

शैली की दृष्टि से कहानी और उपन्यास में विशेष अन्तर नहीं है। केवल स्थानाभाव के कारण कहानी में विस्तृत प्रकृति–वर्णन अथवा अन्य प्रकार के वर्णनों के लिये क्षेत्र बहुत ही कम है। इसलिये कहानी की शैली अत्यन्त सुगठित और संक्षिप्त होती है।

प्रभाव–क्षेत्र (Scope) और विस्तार की दृष्टि से आधुनिक कहानी एकांकी नाटक और निबन्ध के बहुत निकट है। कहानी में एकांकी नाटक और निबन्ध कीं ही भाँति जीवन का पूरा चित्र नहीं मिलता, वरन् उसके किसी विशेष मनोरंजक, चित्ताकर्षक एवं प्रभावशाली दृश्य अथवा पक्ष का ही चित्र मिलता है और इसका विस्तार भी उन दोनों साहित्य–रूपों (एकांकी नाटक और निबन्ध) की ही भाँति छोटा होता है, जिससे पूरी कहानी एक बैठक में ही अर्थात् डेढ़ घण्टे के भीतर ही भली प्रकार पढ़ी जा सके। परन्तु इतनी समानता होने पर भी कहानी उन दोनों से सर्वथा भिन्न रहती है। एकांकी नाटक अभिनय की वस्तु है, इसलिये उसमें प्रकृति–वर्णन तथा अन्य प्रकार के वर्णनों का सर्वथा अभाव रहता है और शैली की दृष्टि से तो कहानी एकांकी नाटकों से बिल्कुल भिन्न साहित्य रूप है। निबन्ध में स्वाभाविक वर्णन तो मिलता है और वह कहानी की भाँति सुगठित एवं संक्षिप्त शैली में होता है परन्तु इसमें उसकी कल्पना–शक्ति का अभाव रहता है जिसके सहारे आधुनिक कहानी में किसी मनोरंजक कथा, किसी प्रभावशाली और सुन्दर चरित्र, किसी मनोवैज्ञानिक चित्र, कवित्वपूर्ण अथवा यथार्थ वातावरण तथा किसी शक्तिशाली और सुन्दर प्रभाव की सृष्टि होती है।

आधुनिक कहानी की दो विशेषताएँ हैं। प्रथम विशेषता इसमें कल्पना–शक्ति का आरोप है। यों तो साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र और विभाग में कल्पना का उपयोग आवश्यक एवं अनिवार्य हुआ करता है, परन्तु कहानी में ही शायद इसका सबसे अधिक उपयोग होता है। वास्तव में देखा जाए तो कल्पना कहानी का प्राण है। चाहे प्रेमचन्द्र और 'प्रसाद' के गम्भीर मानव–चरित्र का चित्रण हो, चाहे जैनेन्द्र कुमार और भगवती प्रसाद बाजपेयी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण; चाहे हृदयेश, राधिकारमण प्रसाद सिंह और गोविन्दवल्लभ पंत की कवित्तपूर्ण वातावरण–प्रधान कहानियाँ हों, चाहे 'अज्ञेय' और चंद्रगुप्त विद्यालंकार की प्रभाववादी (Impressionistic) कहानियाँ; चाहे भगवतीचरण वर्मा की व्यंग्यात्मक कहानियाँ, चाहे जी. पी. श्रीवास्तव की अतिनाटकीय (Melodramatic) प्रसंगों से युक्त हास्यमय गल्प, चाहे गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ हों, चाहे दुर्गा प्रसाद खत्री की रहस्यमयी और साहसिक कहानियाँ – इन सभी स्थानों में कल्पना की ही प्रमुखता देखने को मिलती है। सच तो यह है बिना कल्पना के कहानी की सृष्टि हो ही नहीं सकती। किसी भावना को कहानी का रूप देने के लिये, किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रदर्शित करने के लिये, किसी प्रभाव की सृष्टि करने के लिये, किसी मनोरंजक बात को साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिये अथवा

किसी चरित्र–विशेष के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिये घटनाओं का क्रम एवं घात–प्रतिघात–संयुक्त कथानक की सृष्टि करना कल्पना–शक्ति का ही काम है। कोई भी कहानी हो – सब की तह में कल्पना का ही प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। आधुनिक कहानी में कल्पना की सबसे अधिक जादूगरी पुराण–कथा (Myth Making) शैली में देखनें को मिलती है। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में कल्पना के अतिरिक्त और है ही क्या ? कमलाकान्त वर्मा की 'पगडंडी' में – लेखक ने अमराइयों को चीर कर जाती हुई एक छोटी–सी 'पगडंडी' देखी थी और उसी पर एक दार्शनिक भावनापूर्ण सुन्दर कहानी की सृष्टि कर दी – केवल अपनी कल्पना–शक्ति से! वास्तव में आधुनिक कहानी की प्रमुख विशेषता कल्पना के अद्भुत आरोपण में है।

आधुनिक कहानी की दूसरी विशेषता कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से कथानक, चरित्र, वातावरण और प्रभाव इत्यादि की सृष्टि करना है। किसी व्यर्थ चरित्र अथवा निरर्थक घटना और प्रसंग के लिये कहानी में स्थान ही नहीं है। यों तो व्यर्थ चरित्र और निरर्थक घटना और प्रसंग नाटक, उपन्यास और एकांकी नाटक में भी अनावश्यक है, परन्तु स्थानाभाव के कारण कहानी में उनका निराकरण अत्यन्त आवश्यक होता है। आधुनिक कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें व्यर्थ चरित्र और निरर्थक प्रसंग उसके सौन्दर्य के लिये घातक प्रमाणित हो सकते हैं।

स्पष्ट है कि आधुनिक कहानी साहित्य का विकसित कलात्मक रूप है जिसमें लेखक अपनी कल्पना–शक्ति के सहारे, कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा, कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवांछित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के प्रकाशन से 1900 ई. में होता है। इससे भी पहले 1899 ई. में वृहत्कथा के आधार पर 'कात्यायन और वररुचि की कथा' और 'उपकोशा की कथा' कहानी रूप में 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुई थी। 'सरस्वती' में शेक्सपियर के अनेक नाटकों के अनुवाद कहानी–रूप में प्रकाशित हुये। 1900 ई. की जनवरी में 'सिम्बलीन' (Symbeline) फरवरी में, 'ऐथेन्सवादी टाइमन' (Timon of Athens), मार्च तथा अप्रैल में 'पेरिक्लीज' (Pericles) और सितम्बर तथा अक्टूबर में 'कौतुकमय मिलन'

(Comedy of Errors) प्रकाशित हुये। साथ–ही–साथ इसमें बहुत से संस्कृत नाटक भी कहानी–रूप में प्रकाशित हुये जिनमें 'रत्नावली' और 'मालविकाग्निमित्र' की कहानियाँ अंत्यन्त मनोरंजक प्रमाणित हुईं। 'सरस्वती' के प्रकाशन के पूर्व ही गजाधरसिंह ने बाण की 'कादम्बरी' का एक सुन्दर अनुवाद कहानी के रूप में प्रस्तुत किया। इसी समय 'सुदर्शन' में भी पौराणिक आख्यान कहानी के रूप में प्रकाशित हो रहे थे। इस अनुवादित तथा एक बड़ी रूपांतरित रचनाओं में ही आधुनिक कहानियों का प्रारम्भिक रूप मिलता है।

जून 1900 ई. में 'सरस्वती' में हिन्दी की सर्वप्रथम आधुनिक कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई। यह पूर्णतया मौलिक कृति नहीं कही जा सकती, क्योंकि इस पर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' (The Tempest) की छाप बहुत स्पष्ट है। परन्तु लेखक किशोरीलाल गोस्वामी ने इसे पूर्णरूप से भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका इन्दुमती मिरांडा की भाँति अपने पिता के साथ विन्ध्याचल के सघन बन में निवास करती है। उसने भी अपने छोटे–से जीवन में केवल अपने पिता को ही देखा और प्यार किया था, और दूसरा मनुष्य उसकी दृष्टि–पथ में नहीं आया था। सहसा एक दिन पेड़ के नीचे उसने देखा एक सुन्दर नवयुवक–अजयगढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर जो पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी का काम तमाम कर भाग निकला था और लोदी का एक सेनापति उसका पीछा कर रहा था। उसका घोड़ा मर चुका था और वह भी भूखा–प्यासा पेड़ के नीचे पड़ा था। प्रथम दर्शन में ही दोनों के हृदयों में प्रेम का संचार हो उठता है। इन्दुमती का वृद्ध पिता, जो वास्तव में देवगढ़ का शासक था और इब्राहिम लोदी द्वारा राज्य छिन जाने पर अनी एक मात्र कन्या को लेकर जंगल में निवास करता था, अंग्रेजी नाटक 'प्रास्पेरो' की ही भाँति युगल प्रेम की परीक्षा लेने के लिये चन्द्रशेखर से कठिन परिश्रम लेता है और स्वयं पहाड़ी के पीछे खड़े होकर नव–युवक हृदयों का प्रेम–सम्भाषण सुनता है। वृद्ध पिता ने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई इब्राहिम लोदी को मारकर उसके बैर का बदला लेगा, उसी से वह अपनी कन्या का विवाह करेगा। चन्द्रशेखर ने अनजाने ही यह प्रतिज्ञा पूरी कर दी थी और उसका प्रेम इन्दुमती के प्रति विशुद्ध और आदर्श था, इसलिये वृद्ध पिता ने युगल–प्रेमियों का विवाह करा दिया और वे सुखपूर्वक अपनी राजधानी में राज्य करने लगे। इस प्रकार 'टेम्पेस्ट' की छाया लेकर एक राजपूत–कहानी के आधार पर हिन्दी में सर्वप्रथम मौलिक कहानी की सृष्टि हुई।

इसके पश्चात् अन्य अनेक कहानियाँ अनुवादित, रूपांतरित और मौलिक भी 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' में निकलती रहीं। 1900 ई. से 1910 ई. तक आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक युग था, जबकि कहानी की कोई निश्चित परम्परा न थी और उनके साहित्यिक रूप तथा शैली के सम्बन्ध में कोई निश्चित आदर्श सामने न था। कितने ही लेखक अवश्य कुछ फुटकर कहानियाँ गद्य में और छन्दबद्ध भी लिखा करते थे जो समय–समय पर मासिक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं, परन्तु वे केवल कुछ अनिश्चित प्रयोग के रूप में थी। उनमें न कोई कम था न आदर्श, न कोई निश्चित रूप था, न शैली। एक ओर टूटी–फूटी भाषा में छन्दबद्ध कहानियाँ प्रकाशित हो रही थीं – 'जम्बुकी न्याय' ('सरस्वती', मार्च 1906) में पंचतन्त्र और हितोपदेश की भाँति उल्लू, स्यार, गिरगिट, कौआ इत्यादि की उपदेशपूर्ण कथा है; जो ईसप की कहानियाँ (Aesop's Fable) की याद दिलाती हैं। विद्यानाथ शर्मा की कहानी 'विद्या–बहार' ('सरस्वती', मार्च 1909) में काशी का एक विद्वान् गेडवाने का राजा होता है और उसे चौपट कर देता है। कहानी के अन्त में लेखक यह उपदेश देता है –

अनुभव बिना है सूना पुस्तक ज्ञान
होते नहीं विवेकी सब विद्वान्।

इसी प्रकार 'कुलीनाथ पांडे' ('सरस्वती', मई 1909 ई.) में सरकारी चपरासी और साहबों की अन्धाधुन्धी का सहारा लेकर एक कहानी खड़ी कर दी गई है, जिसमें कुलीनाथ पांडे साहब की खुशामद करके कुली से राजा हो जाता है और 'निन्नानबे का फेर' ('सरस्वती, अगस्त 1910 ई.) में मैथिलीशरण गुप्त ने एक सुन्दर कहानी का रूप प्रस्तुत किया है। इन छन्दबद्ध कहानियों में उपदेश की भावना भरी है और इनमें हितोपदेश तथा ईसप की कहानियों की परम्परा मिलती है। दूसरी ओर 'सुदर्शन' में माधव मिश्र पौराणिक आख्यायिकाएँ लिख रहे थे, जिनमें प्राचीनकाल की झलक मिलती है। सत्य और संतोष का फल प्रदर्शित करने वाली 'नाभाग की कथा' ('सुदर्शन', आषाढ़ सं. 1960) इस प्रकार की एक अपूर्व रचना है। 'सरस्वती' में भी श्री सूर्य नारायण दीक्षित ने मार्च 1906 में जैमिनी पुराण के आधार पर 'चन्द्रहास का अद्‌भुत उपाख्यान' लिखा। यह तो प्राचीन परम्परा के आधार पर नये प्रयोग थे। इनके अतिरिक्त एक ओर बंग महिला, पार्वतीनन्दन, उदयनारायण बाजपेयी इत्यादि लेखक बंगला, फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी भाषा से कहानियों का अनुवाद और रुपांतर उपस्थित कर रहे

थे, दूसरी ओर कर्नल जेम्स टाड के 'राजस्थान टेलर' (Tovlor), मैकमिलन (Mac Millan) आदि अंग्रेज़ी लेखकों द्वारा भारतीय वीरों की वीरता और प्रेम–सम्बन्धी उपन्यासों के आधार पर मध्यकालीन राजपूतों, मराठों और पठानों की वीरता और प्रेम कहानियाँ लिखी जा रही थीं। वृन्दावनलाल वर्मा ने सितम्बर 1909 ई. में 'राखीबन्द भाई', अक्टूबर 1910 ई. में 'तातार' और 'एक वीर राजपूत' नामक कहानियाँ 'सरस्वती' में लिखी और मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'नकली किला' नामक एक कहानी दिसम्बर 1909 ई. में गीतिका छन्दों में लिखी जिनमें बूँदी के हाड़ा कुम्भा की अद्‌भुत वीरता और त्याग का वर्णन है।

परन्तु 1900 से 1910 ई. के बीच के इस प्रयोगात्मक युग की सबसे महत्वपूर्ण और सुन्दरतम् रचना बंग महिला की 'दुलाईवाली' ('सरस्वती', मई 1907) कहानी थी, जिसमें प्रतिदिन के जीवन से एक साधारण घटना लेकर स्थान–चलन (Local Colour) और यथार्थवादी चित्रण की सहायता से एक प्रभावशाली कहानी की सृष्टि की गई है। वंशीधर अपने हँसमुख और विनोदप्रिय मित्र नवलकिशोर और उनकी पत्नी से मिलने की आशा में जल्दी–जल्दी अपनी पत्नी को साथ ले बनारस से इलाहाबाद को प्रस्थान करते हैं, परन्तु मुगलसराय स्टेशन पर उन्हें अपने मित्र के दर्शन नहीं हुये। मिर्जापुर स्टेशन पर उन्हें अपने ही डिब्बे में 'दुलाईवाली' और एक अन्य स्त्री मिली। स्त्री का पति शायद स्टेशन पर छूट गया था और वह विलाप कर रही थी। वंशीधर ने उसे सांत्वना दी कि इलाहाबाद में वे उसके पति की खोज करेंगे। इलाहाबाद में जब वंशीधर स्त्री के पति की खोज में इधर–उधर पूछताछ करते हैं तभी उस स्त्री के पति नवलकिशोर, जो 'दुलाईवाली' के रूप में उसी डिब्बे में बैठे सब तमाशा देख रहे थे, रूप–परिवर्तन कर प्रकट हो जाते हैं और इस प्रकार दोनों मित्रों का मिलन होता है। इस मनोरंजक कथानक में लेखिका की सुन्दर और व्यंजनापूर्ण लेखन शैली तथा स्थान–चलन–संयुक्त यथार्थ से वार्तालाप ने तो जान ही डाल दी है। बिपत में न पड़ल बाटिनी। हे हम पच हइ, राजघाट टिकस कटऊली, मोगल के सरायें उतरलीह, हों द फुन चढ़लीह।''

(कुसुम संग्रह, पृष्ठ 87)

सन् 1911 ई. काशी में 'इन्दु' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और तब से कहानियों की एक अविच्छिन्न धारा और परम्परा चल निकली। 1911 ई. में जयशंकर 'प्रसाद' की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' 'इन्दु' में प्रकाशित हुई और हास्यरस के लेखक जी. पी. श्रीवास्तव की प्रथम

कहानी भी 1911 ई. में ही 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। उसी साल 'भारतमित्र' में 'उसने कहा था' कहानी के अमर लेखक चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' भी प्रकाशित हुई थी। अस्तु, 1911 ई. ने हिन्दी को तीन उच्चकोटि के कहानी–लेखक दिये, इसीलिये, आधुनिक हिन्दी का वास्तविक प्रारम्भ 1911 ई. से ही समझना चाहिये।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतवर्ष में नगरों की संख्या बढ़ती जा रही थी और इन नगरों के उदय के साथ–ही–साथ नागरिक जीवन और नागरिक सभ्यता का विकास भी हो रहा था। पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था और नगरों का जीवन प्रतिदिन पहले की अपेक्षा अधिक जटिल और आडम्बरपूर्ण होता जा रहा था। क्रमशः व्यक्तिवाद का भी विकास बड़ी शीघ्रता से हो रहा था और लोग अपने दिन–प्रति–दिन के जीवन की साधारण घटनाओं को भी महत्व देने लग गये थे। धीरे–धीरे समय की प्रगति के साथ–साथ प्रतिदिन के साधारण प्रसंगों के द्वारा भी जनता के गम्भीर और अंतर्निहित भावों तथा विचारों को प्रभावित कर सकने की सम्भावना बढ़ती जा रही थी। लेखकगण साधारण घटनाओं और प्रसंगों को स्थान–चलन और यथार्थ चित्रण के बल पर प्रभावशाली बनाने लग गये थे। बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी इस ढंग की एक सुन्दर रचना थी और शायद इसी के प्रभाव से अथवा स्वतन्त्र रूप से 'प्रसाद' ने 'ग्राम' और गुलेरी ने 'सुखमय जीवन' में इसी प्रकार की साधारण परिस्थिति लेकर मनोरंजक और उच्चकोटि की कहानी लिखी।

1912 ई. में जयशंकर 'प्रसाद' ने एक दूसरे ढंग की कहानी का प्रारम्भ किया, जिसमें उनको नाटकीय प्रतिभा और कवि–हृदय का अपना कौशल दिखलाने का उपयुक्त क्षेत्र मिला। 'रसिया बालम' नामक कहानी जो 'इन्दु' में अप्रैल 1912 ई. में प्रकाशित हुई थी, गद्य में एक खण्डकाव्य के समान है और फारसी के प्रेमाख्यानों के बहुत ही निकट है। इस प्रकार की कहानियों का कथानक प्रतिदिन के जीवन की मनोरंजक घटनाओं और प्रसंगों के आधार पर नहीं; वरन् लेखक की कल्पना–शक्ति से प्रसूत होता है। कहानियाँ प्राचीन आख्यानक–गीतों, प्रेमाख्यानक काव्यों, नाटकों और खण्डकाव्यों की गद्यात्मक वंशज जान पड़ती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहीत 'प्रसाद' की कहानी 'आकाशदीप' एवं ऐतिहासिक कहानियाँ अधिकांश इसी ढंग की रचनाएँ हैं।

वास्तव में देखा जाए तो आधुनिक कहानियों का प्रारम्भ दो उद्‌गमों से होता है। एक ओर तो सामयिक और तत्कालीन जीवन की प्रतिदिन की आकस्मिक घटनाओं और करुणामय, हास्यमय, विस्मययुक्त तथा अद्‌भुत परिस्थितियों के आधार पर यथार्थवादी वातावरण के आवरण में सुसज्जित नयी कहानियों की सृष्टि होने लगी; दूसरी ओर प्राचीन खण्ड–काव्यों, नाटकों और आख्यानक–गीतों तथा प्रबन्ध–काव्यों के आधार पर कल्पना–प्रसूत कथानक गद्य में नाटकीय कहानियों के साँचे में ढाले जाने लगे। प्रथम उद्‌गम से यथार्थवादी कहानियों का आरम्भ हुआ और द्वितीय उद्‌गम से आदर्शवादी और कवित्वपूर्ण कहानियों का विकास हुआ।

आधुनिक कहानियों के विकास के मुख्य तीन पक्ष आत्मा, रूप, शैली हैं। इन तीनों के पूर्ण विकास से ही आधुनिक कहानी का पूर्ण विकास सम्भव हुआ। ये तीनों पथ क्रमशः आत्मा, रूप और शैली हैं। कहानियों की आत्मा और रूप में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, इस कारण दोनों का विकास एक साथ ही दिखाना आवश्यक है।

(क) आत्मा और रूप

प्रारम्भिक कहानियों में कथानक का क्रमिक विकास दैव–घटनाओं (Chances) और संयोगों (Coincidences) द्वारा हुआ करता था। ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी तथा विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रारम्भिक कहानियों में केवल आकस्मिक घटनाओं और संयोगों से ही मनोरंजक कथा–प्रधान कहानियों की सृष्टि हुआ करती थी। उदाहरण के लिये 'कौशिक' की प्रथम रचना 'रक्षा–बन्धन' कहानी लीजिये। लड़की का भाई को रक्षाबन्धन बाँधने के लिये मचलना और अकस्मात् एक राही का भाई बनकर राखी बँधाना; घनश्याम का अपने मित्र के अनुरोध से अपनी भावी पत्नी को देखने के लिये अपने मित्र के साथ उसी लड़की के घर जाना और वहाँ उसका पहचाना जाना तथा भाई–बहन और पुत्र–माता का मिलन इत्यादि सभी बातें आकस्मिक घटनाओं तथा संयोगों के सहारे ही घटित हुई और इन सबके सामंजस्य से एक मनोरंजक कहानी की सृष्टि हुई। इसी प्रकार ज्वालादत्त शर्मा की 'तस्कर' कहानी में इन्हीं आकस्मिक घटनाओं और संयोगों द्वारा पाकेटमार मिट्‌ठू एक भला आदमी बन जाता है। वह दिन में विराजमोहन की जेब कतरता है और रात में जिस मकान में सेंध लगाता है, संयोग से घर भी विराजमोहन का निकलता है, जहाँ उनकी स्त्री और बच्चे

दाने–दाने को मुहताज हैं। विराजमोहन के बच्चे को देखकर मिट्ठू को अपने बच्चे की याद आ जाती है और करुणा से पिघल कर वह दिन का चुराया हुआ माल भी उसी घर में छोड़कर बाहर निकल आता है और भविष्य में एक भद्र मनुष्य का सा जीवन व्यतीत करता है।

आधुनिक कहानियों में विकास का प्रथम और प्रमुखतम सूत्र प्रेमचन्द्र की देन है। उन्होंने पहले–पहल कहानियों को बाह्य घटनाओं के जाल से छुड़ाकर उन्हें मानव–जीवन के अन्तः रहस्यों के उद्घाटन का साधन बनाया। यह बात नहीं है कि उनकी कहानियों में आकस्मिक घटनाओं और संयोगों का उपयोग है ही नहीं; इसके विपरीत उनकी कहानियों में भी उनका उपयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। परन्तु जहाँ पहले कहानियों में भीतर–बाहर सभी जगह इन्हीं आकस्मिक घटनाओं और संयोगों की प्रधानता थी, वहाँ प्रेमचन्द्र ने कथानक की बाह्य–रूप–रेखा के लिये आकस्मिक घटनाओं और संयोगों का तो पूरा–पूरा उपयोग किया, परन्तु उसके अन्तः रूप–रेखा का विकास मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण द्वारा ही किया।

मानव–जीवन के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में प्रेमचन्द्र अद्वितीय हैं। उनकी कहानियों में चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का चरम विकास पाया जाता है। 'बूढ़ी–काकी' में देखिये, लेखक वृद्धा की लोलुप–प्रवृत्ति की एक–एक छोटी–से–छोटी प्रतिक्रिया देना भी नहीं भूला है। 'पंचपरमेश्वर', 'दफ्तरी', 'इस्तीफा', 'बड़े घर की बेटी', 'शंखनाद', 'दीक्षा' इत्यादि कोई भी कहानी ले लीजिये, प्रेमचन्द्र के चरित्र–चित्रण का अद्भुत कौशल स्पष्ट हो जायेगा।

प्रेमचन्द्र ने अपनी कहानियों में मानव–चरित्र का साधारण पहलू ही लिया है। उन्होंने अपने चारों ओर अपनी सूक्ष्म दृष्टि डाली और जो भी सामने दिखाई पड़ा, उसी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर डाला, मानव और मानव–चरित्र ही उनके मुख्य विषय थे। सर पर लादकर घास बेचने वाली चमारिनें, हल जोतने वाले किसान, कचहरी के मुंशी, भट्ट ब्राह्मण, वकील–बैरिस्टर सभी का सूक्ष्म चित्रण उन्होंने किया। 'प्रसाद' और 'सुदर्शन' की कहानियों में भी लेखकों की दृष्टि मानव–जीवन के साधारण पहलू की ओर विशेष रूप से गई है।

आगे बढ़कर जैनेन्द्र कुमार, भगवती प्रसाद बाजपेयी, विनोद शंकर व्यास इत्यादि कहानी–लेखकों ने मानव–जीवन के साधारण पहलू को छोड़कर असाधारण परिस्थितियों में

चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रारम्भ कर दिया। उदाहरण के लिये जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'चलितचित्त' लीजिये। कहानी का नायक स्वयं एक बहुत ही धनी और बड़ा आदमी है, जो रेलवे के फर्स्ट क्लास का यात्री है और वेटिंग रूम में बैठा गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है। अचानक उसके सामने ही एक हीरे से जड़ी अंगूठी छोड़कर एक दूसरा यात्री कहीं बाहर चला जाता है। उस अंगूठी ने उस जैसे भलेमानुस का चित्त डाँवाडोल कर दिया। उसके पास उससे भी बहुमूल्य कई अंगूठियाँ हैं, फिर भी उस असाधारण परिस्थिति में उसका विचार बदल जाता है। उस असाधारण परिस्थिति में उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सचमुच ही अद्भुत और अद्वितीय है। एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत संग्रह से 'मिठाईवाला' कहानी का लीजिये। मिठाईवाले को बच्चों से बड़ा स्नेह था। उसके बच्चे अकाल के दौरान ही काल के ग्रास हो चुके थे। इस दुःख से दुःखी होकर उसने निश्चय किया था कि नगर के अन्य बच्चों को प्रसन्न देखकर वह अपना शेष समय समाप्त कर देगा। इसलिये वह कभी मिठाईवाला बनकर आता है, कभी बाँसुरियावाला और कभी खिलौनेवाला और बच्चों से कभी पैसा लेकर, कभी यों ही मुफ्त में मिठाई, खिलौने इत्यादि सामान देकर उन्हें प्रसन्न उछलते–कूदते देखकर स्वयं प्रसन्न होता है। संसार में कितने ही आदमियों के बच्चे मर जाते हैं, किन्तु वे मिठाईवाला बनकर इस प्रकार कार्य नहीं करते। यह तो एक असाधारण परिस्थिति है जैसी कि कहीं देखने में नहीं आती। फिर भी यह बात असम्भव नहीं जान पड़ती और यही इन कहानियों में सौंदर्य की सृष्टि करती है।

आधुनिक कहानियों के विकास का एक रूप वातावरण–प्रधान कहानियों में मिलता है। मानव–चरित्र के सूक्ष्म अन्तःरहस्यों का उद्घाटन इसका भी ध्येय है, परन्तु इसका कला–रूप चरित्र–प्रधान कहानियों से कहीं अधिक सुन्दर है। इसमें मानव–जीवन की किसी एक भावना अथवा अनुभूति से अनुरंजित और अनुप्राणित एक कहानी की सृष्टि होती है, जिसमें कथानक, चरित्र और वातावरण सभी उसी एक भावना अथवा अनुभूति से ओत–प्रोत रहते हैं; वही एक भावना अथवा अनुभूति ही आधुनिक कहानी का प्राण है; श्वास–वायु है और ऐसा जान पड़ता है कि उस एक भावना को निकाल देने पर आधुनिक कहानी में कुछ भी शेष न हीं बचेगा।

वातावरण–प्रधान कहानियों की कला की तुलना चित्र–कला से की जा सकती है। यदि किसी चित्रकार को पूस की रात के जाड़े का चित्र प्रस्तुत करना हो, तो वह अपने

चित्र में पेड़–पौधा, पशु–पक्षी, नर–नारी सब का चित्र खींचता है, और उनकी भाव–भंगिमा से पूस की रात की ठंडक की ओर संकेत करता है। पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, नर–नारी इत्यादि उस चित्र में केवल निमित्त मात्र होते हैं। चित्रकार उनकी सहायता से एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है जिसमें ठंडक की भावना भरी रहती है। उसी प्रकार वातावरण–प्रधान कहानी में भी लेखक एक वातावरण की सृष्टि करता है, जिसमें कोई भावना अथवा अनुभूति ओत–प्रोत रहती है। वह चरित्रों की व्यवस्था करता है, घटना और प्रसंगों की कल्पना करता है, परन्तु वे सभी केवल एक भावना अथवा अनुभूति की ओर संकेत हैं, जो उस कहानी का प्राण है।

वातावरण–प्रधान कहानी की आत्मा तो चरित्र–प्रधान कहानी के समान ही है, परन्तु इसका कला–रूप चरित्र–प्रधान कहानियों से भिन्न होता है और चित्रकला से बहुत कुछ मिलता–जुलता है। कला की दृष्टि से वातावरण–प्रधान कहानियों का महत्व बहुत ही अधिक है, क्योंकि ये कहानियाँ अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली होती हैं। 'प्रसाद' की कहानी 'आकाश–दीप' वातावरण–प्रधान कहानी–कला का सर्वोत्तम उदाहरण है।

मानव–चरित्र और भावना के विश्लेषण और व्यंजन के पश्चात् आधुनिक कहानी के द्वितीय उत्थान में मानव–जीवन और इतिहास के चिरंतन अथवा सामयिक सत्यों की व्यंजना होने लगी। इस विकास का प्रारम्भ सुदर्शन की 'कमल की बेटी', 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' और 'एथेंस का सत्यार्थी' इत्यादि कहानियों से हुआ, जिसमें मानव–जीवन के कुछ महान् और चिरंतन सत्यों की व्यंजना पुराण–कथा के रूप में हुई।

मानव–जीवन और इतिहास में चिरन्तन सत्य बहुत ही कम है! इसलिये पिछले लेखक कहानी के रूप में सामयिक तत्वों की व्यंजना करने लगे हैं। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'काम–काज', 'अज्ञेय' की 'रोज' इत्यादि कहानियों में सामयिक सत्य की स्पष्ट और सुन्दर व्यंजना हुई है। सामयिक तत्व की व्यंजना में कहानियों के मुख्य तीन कला–रूप मिलते हैं। पहला रूप पुराण–कथा का रूप है' सत्य की अमिट छाप लगाने और पाठकों को आकर्षित करने के लिये यह रूप बहुत उपयुक्त है। मोहनलाल महतो की कहानी 'कवि' में इस सामयिक सत्य की व्यंजना देखने को मिलती है क्योंकि आधुनिक युग कवि और कविता के लिये उपयुक्त नहीं और इस व्यंजना के लिये वह

हिन्दी के महान् कवि तुलसी, सूर, बिहारी, देव और केशव से भारती के द्वार पर सत्याग्रह करवाता है जिससे भारत में फिर से कवि पैदा हों। देवी भारती कवियों का अनुरोध मानकर रामधन तेली और एक डिप्टी साहब मि. सिंह को कवित्व–शक्ति प्रदान करती हैं, और वे दोनों ही पागल करार देकर पागलखाने में बन्द कर दिये जाते हैं। अन्त में उन कवियों को ज्ञात हो जाता है कि आधुनिक युग भारत में कवियों के लिये उपयुक्त नहीं और वे धरना देना बन्द कर देते हैं। इस रूपक में उपर्युक्त सत्य की जितनी सुन्दर व्यंजना हुई है और उसकी अमिट छाप जो पाठकों के मस्तिष्क पर पड़ती है, वह और किसी रूप में सम्भव नहीं। इसी प्रकार 'उग्र' की कहानी 'देशभक्त' में पुराण–कथा के रूप में एक सुन्दर कहानी की सृष्टि हुई है। पुराण–कथा के रूप में कहानियों की कलात्मकता और व्यंजना–शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है; इसमें कोई सन्देह नहीं।

सत्य की व्यंजना का दूसरा रूप प्रभाववादी कहानियों में मिलता है जिसमें लेखक एक प्रभाव की सृष्टि करता है और उस प्रभाव से ही पाठकों के मन पर किसी सामयिक सत्य (जिसकी लेखक व्यंजना करना चाहता है) की अमिट छाप बैठ जाती है। उदाहरण के लिये 'काम–काज' कहानी लीजिये। लेखक ने तीन पृथक् कहानियों के रूप उपस्थित किये हैं और उन तीनों में ऐसा जान पड़ता है कि मानव अपने काम–काज के पीछे मानवता की बलि चढ़ा चुका है। लेखक ने प्रतिदिन जीवन के असंख्य उदाहरणों से केवल तीन नमूने छाँटकर रख दिये हैं; जो चिल्ला–चिल्ला कर कहते हैं कि देखो काम–काज के पीछे मानवता की बलि चढ़ गई है; और उन कहानियों के पीछे कलाकार चुपचाप मानो कह रहा है; 'मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ा–घटाया है; वास्तविक चित्र पाठकों के सामने है, वे स्वयं देख सकते हैं।' प्रभाववादी ढंग का एक दूसरा और अधिक सुन्दर रूप 'अज्ञेय' की कहानी 'रोज' में मिलता है। इसमें भी लेखक ने प्रतिदिन के असंख्य उदाहरणों से एक सुन्दर, प्रभावशाली और महत्वपूर्ण नमूना छाँटकर सामने रख दिया है कि साधारण मनुष्यों का जीवन कितना भाररूप और कितना ऊब पैदा करने वाला होता है; परन्तु इस कहानी में लेखक ने इस भारग्रस्त जीवन के प्रति कठोर उपेक्षा का भाव न दिखाकर सहानुभूति ही प्रकट की है। कहानी में रूप और शैली दोनों ही भावपूर्ण और उत्कृष्ट हैं। सत्य की व्यंजना का तीसरा रूप भगवतीचरण वर्मा की व्यंग्यात्मक कहानियों में मिलता है। उदाहरण के लिये उनकी कहानी 'प्रेजेन्ट्स' ले लीजिये; जिसमें आधुनिक सभ्य नारी के प्रेम और स्नेह के प्रति एक गम्भीर व्यंजना की गई

है। उस सभ्य नारी की सम्पत्ति है उसके सैकड़ों प्रेमियों का एक–एक 'प्रेजेन्ट'। उन उपहारों के अतिरिक्त उसके नारीत्व का कुछ मूल्य नहीं। एक–एक प्रेमी पतिंगे की भाँति आते–जाते हैं और एक प्रेजेन्ट के रूप में अपने प्रेम का एक चिह्न छोड़कर चले जाते हैं और वह सभ्य नारी किसी दूसरे प्रेमी का स्वागत करने को तैयार हो जाती है। आजकल की नारी सभ्यता पर कितना करारा व्यंग्य है! इसी प्रकार उनकी 'प्राश्चित' कहानी में पुराने पोंगा–पंथी पंडितों पर बड़ा सुन्दर व्यंग्य किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहीत वर्मा की कहानी 'मुगलों ने सल्तनत बख़्श दी' में लेखक ने एक ऐतिहासिक सत्य की व्यंजना बड़े ही सुन्दर व्यंग्य के रूप में की है। अंग्रेजों ने भारत को तलवार के बल से नहीं जीता वरन् व्यापारी के रूप में आकर अपनी नीति–कुशलता से एक साम्राज्य की स्थापना कर ली–इसी सत्य की व्यंजना कितने सुन्दर व्यंग्य में हुई है।

आधुनिक कहानियों का अन्तिम विकास कमलाकान्त वर्मा की 'खंडहर', 'तकली', 'पगडंडी' इत्यादि कहानियों में मिलता है, जिसमें लेखक ने आभ्यंतरिक (Subjective) दृष्टिकोण उपस्थित किया है। कवि–हृदय लेखक ने एक खंडहर देखा और उसकी कल्पना के सामने वह चित्र उपस्थित हो गया जबकि उस खंडहर के स्थान पर एक सुन्दर अट्टालिका थी–ईंट, पत्थर, चूना और गारों से बनी हुई दृढ़ और विशाल। उसके सामने थी एक सड़क जिस पर म्युनिसिपैल्टी का लैम्प रात को प्रकाश फैलाता था। लेखक ने इस आकर्षक चित्र को एक कहानी के रूप में प्रकट किया जिसमें महल, प्रकाश, सड़क इत्यादि मानव के रूप में उपस्थित हो अपना स्नेह–प्यार, मान–अभिमान, कलह–विरोध इत्यादि कहानी में सुनाते हैं। इस कल्पनापूर्ण कहानी का कलारूप आधुनिक कविता के सम्बोध गीत (Odes) के कलारूप से बहुत कुछ मिलता–जुलता है। जिस प्रकार सुमित्रानन्दन पन्त की कविता 'बादल' में बादल स्वयं अपनी प्रशंसा तथा गुण–दोष इत्यादि सुना डालता है, उसी प्रकार 'पगडंडी' भी एक कहानी के रूप में अपना प्रेम और कलह, अपना मान और अभिमान, अपना बचपन और यौवन सबका एक सुसंगत इतिहास कह सुनाती है। 'निराला' की 'यमुना के प्रति' कविता में जिस प्रकार कवि को यमुना की लहरों के संगीत में उस अतीत स्वर्ण–युग का संगीत सुनाई पड़ता है, जब नट–नागर श्याम गोपियों के साथ रासलीला किया करते थे; उसी प्रकार 'खंडहर' कहानी से कमलाकान्त वर्मा को खंडहर देखकर उस अतीत–युग के चित्र की याद

आ जाती है, जब वहाँ एक महल रहा होगा, अपने वैभव से परिपूर्ण। लेखक कहानी के रूप में उसी चित्र की व्यंजना करता है।

इस प्रकार कहानियों में कवित्वपूर्ण कल्पना का अत्यधिक उपयोग होता है। लेखक खंड़हर, तकली और पगडंडी इत्यादि को मानव बुद्धि और चेतना से संयुक्त कर देता है और वे अपना अतीत इतिहास सुनाते हैं। अपने जीवन में साथियों के साथ मान–अभिमान, रूठना–मनाना और प्रेम–कलह इत्यादि सभी का वर्णन करते हैं। 'तकली' कहानी में तकली और पूनी के वार्तालाप से मानव सभ्यता का पूरा इतिहास सामने आ जाता है।

आधुनिक कहानी की आत्मा का विकास साधारण दैवी–घटनाओं और संयोगों से प्रारम्भ कर मानव–चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, असाधारण परिस्थितियों में मनोविश्लेषण, जीवन के सामयिक और चिरन्तन सत्यों की व्यंजना और कल्पना के रंगीन पंखों पर जीवन के उतार–चढ़ाव के चित्रों के चित्रण तक हुआ। परन्तु आधुनिक कहानी के विकास का प्रधान अंग उसके कला–रूप का विकास है। आज का कहानी–लेखक कहानी की आत्मा से कहीं अधिक उसके कला–रूप के सौन्दर्य और चित्ताकर्षक प्रभाव की ओर ध्यान देता है। आज की कहानी में कथानक और चरित्र का उतना महत्व नहीं रह गया है जितना भावनाओं की सूक्ष्म व्यंजना और प्रभाव का।

(ख) शैली

कहानी लिखने की सबसे प्रथम और प्रचलित शैली ऐतिहासिक शैली थी, जिसमें कहानी–लेखक इतिहासकार की तरह तटस्थ–सा होकर एक अन्य पुरुष की भाँति कहानी का वर्णन करता था। इस शैली में कोई विशेषता न थी। हाँ, कहीं–कहीं चमत्कारपूर्ण उक्तियों और अलंकृत भाषा के कारण साहित्यिकता की झलक अवश्य मिल जाया करती थी। सम्भाषण–कला और नाटकीय सौंदर्य के सम्मिश्रण से ऐतिहासिक शैली का अपूर्व विकास हुआ, फिर मनोविज्ञान के सूत्रपात से यह शैली और भी परिष्कृत और पूर्ण हो गयी। कहानी के विविध चरित्रों के कार्यों और विचारों की पूर्ण अभिव्यंजना और यथार्थ चित्रण के लिये परिस्थिति, वातावरण इत्यादि का चित्रण भी आवश्यक हो गया। इस शैली का प्रथम विकास राधिकारमण सिंह की प्रथम कहानी 'कानों में कँगना' में मिलती है, जहाँ लेखक ने बँगला कहानियों के प्रभाव से अपनी शैली में नाटक तत्व का सम्मिश्रण किया है। जिस प्रकार एक

सफल नाटककार नाटक के संघर्ष को प्रारम्भ में ही कुछ चरित्र के वार्तालाप में प्रकट कर देता है, उसी प्रकार 'कानों में कँगना' कहानी के लेखक ने प्रारम्भ में ही कहानी का मूलतत्व दे दिया है। यथार्थ चित्र के उदाहरण के लिये प्रेमचन्द्र की कहानी 'ईदगाह' में ईद का यथार्थ, सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन देखने को मिलता है।

'रमजान के पूरे तीस रोजों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभाव है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है, ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर में सुई–तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिये तेली के घर भागा जाता है। जल्दी–जल्दी बैलों को सानी–पानी दे दें। ईदगाह से लौटते–लौटते दोपहर हो जायेगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना–भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न है। किसी ने एक रोजा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोजे बड़े–बूढ़ों के लिये होंगे। उनके लिये तो ईद है।' इत्यादि। इस प्रकार स्वाभाविक वर्णनों और यथार्थवादी चित्रों से ऐतिहासिक शैली का पूर्ण विकास हुआ।

कहानियों की दूसरी प्रधान शैली चरित्र–शैली (Biographical Style) है, जिनमें कहानी का कोई पात्र सारी कहानी 'उत्तम पुरुष' (मैं) में कहता है। अस्तु, सुदर्शन–रचित 'अंधेरी दुनियाँ' में रजनी उत्तम पुरुष (मैं) में सारी कहानी कहती है। यथा :

'मैं पंजाबिन हूँ, परन्तु मेरा नाम बंगालियों का सा है। मैंने अपने सिवा किसी दूसरी पंजाबिन लड़की का नाम रजनी नहीं सुना।' इत्यादि और इसी प्रकार वह अपने विवाह, अपनी आँखों की चिकित्सा इत्यादि का विस्तृत वर्णन करके पूरी कहानी सुनाती है। इस प्रकार की शैली में अन्य शैलियों की अपेक्षा सत्य का आभास अधिक मिलता है; इस शैली में भी एक दोष है कि कहने वाले के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक रूप से नहीं हो पाता। कहने वाला अपने भाव–विचार अपने अन्तस्तल की छोटी–से–छोटी बातों की व्यंजना कर सकता है, परन्तु अन्य चरित्रों के सम्बन्ध में उसे यह सुविधा नहीं है। जिन

कहानियों में एक ही प्रधान–चरित्र होता है और अन्य सभी चरित्र गौण होते हैं, उन कहानियों के लिये यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है।

इस दोष के परिहार के लिये उपन्यासों की भाँति कहानियों में भी सभी चरित्रों को अपनी–अपनी कहानी अपने–अपने शब्द में सुनानी पड़ती है। अस्तु, प्रेमचन्द्र की कहानी 'ब्रह्म का स्वाँग' में पहले स्त्री अपनी कहानी सुनाती है, उसके पश्चात् पति महाशय अपने मन की बात कहते हैं; फिर स्त्री अपनी गाथा सुनाती है, फिर पति महाशय का नम्बर आता है, अन्त में स्त्री की बातों से कहानी का अन्त होता है। यहाँ सभी बातें चरित्रों के ही स्पष्ट शब्दों द्वारा कही गई है, और सभी चरित्रों के अनुभव उन्हीं के मुख से कहलाये गये हैं। इस प्रकार इस कहानी में यथार्थता का पूर्ण आरोप है और चरित्र–चित्रण सुन्दरतम् रूप में हुआ है। यह शैली उस कहानी में उपयुक्त हो सकती है, जिसमें दो या तीन चरित्र हों, अधिक नहीं। यहाँ दो ही चरित्र हैं, इस कारण यह कहानी इस शैली में सफलता–पूर्वक कही जा सकी है, परन्तु जहाँ अनेक चरित्र होते हैं वहाँ मुख्य–चरित्र के द्वारा ही सारी कहानी कहलाना अधिक अच्छा होता है। चरित्र–शैली चरित्र–प्रधान कहानियों के लिये बहुत ही उपयुक्त है।

कहानी कहने की एक और शैली पत्र–शैली (Epistolatary) है, जिसमें सारी कहानी पात्रों द्वारा कही जाती है। सुदर्शन–रचित 'बलिदान' कहानी इस शैली में है, इसमें कुल ग्यारह पत्र हैं और इन पत्रों द्वारा कहानी के कथानक और चरित्रों का विकास होता है। 'प्रसाद' की 'देवदासी' और राधिकारमण सिंह की 'सुरबाला' भी इसी शैली में लिखी गई है। शैली की दृष्टि से पत्र–शैली बहुत–कुछ चरित्र–शैली के दूसरे रूप में मिलती है जिसमें प्रत्येक चरित्र अपनी–अपनी कहानी लिखता है, क्योंकि इसमें भी पत्र लिखने वाला अपने हृदय को खोलकर रख देता है। परन्तु इसमें कुछ दोष भी हैं। एक तो पत्रों में बहुत–सी अनावश्यक बातें भी पदों के शिष्टाचार (Formality) के लिये लिखनी पड़ती है, जिनका कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे कहानी का कथानक समझने के लिये बहुत अधिक दिमाग लगाना पड़ता है क्योंकि किसी एक पत्र में लिखी हुई बातों का पूरा विवरण और विश्लेषण अन्य कई पत्रों के पढ़ने और समझने के पश्चात् हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ अनावश्यक चरित्रों की भी आयोजना करनी पड़ती है। इस प्रकार यह शैली बहुत ही दोषपूर्ण

है और इसका प्रचार भी इसलिये बहुत कम हुआ है। केवल प्रयोग की दृष्टि से ही कुछ इनी–गिनी कहानियाँ इस शैली में लिखी गयीं।

पत्र–शैली से ही बहुत–कुछ मिलती–जुलती डायरी–शैली है, जिसमें मुख्य चरित्र अथवा अन्य चरित्रों की डायरी के उदाहरणों से पूरी कहानी कही जाती है। इस शैली में पत्र–शैली के सभी गुण और दोष मिलते हैं। इस शैली का प्रचार हिन्दी में बिल्कुल ही नहीं हुआ, केवल दो–एक कहानियाँ प्रयोग की दृष्टि से अवश्य लिखी गईं, जिनका कोई विशेष महत्व नहीं।

(क) कहानी स्वरूप एवं संवेदना

कहानी के स्वरूप के विषय में अनेक कहानीकारों विविध प्रकार की परिभाषायें प्रस्तुत की है –

विदेशी विद्वानों के अनुसार

पाश्चात्य आलोचक हडसन के अनुसार – ''कहानी उसी को कहेंगे जो एक बैठक में सरलता से पढ़ी जा सके।''

आर. फ्रांसिस फोस्टर के अनुसार – ''कहानी जीवन की महत्वपूर्ण घटना एवं विषम परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण और मनुष्य के भीतर स्थित आधारभूत गुणों को प्रदर्शित करती है।''

एच. जी. वेल्स के अनुसार – ''कहानी को आकार में अधिक से अधिक इतना बड़ा होना चाहिये कि वह सरलता से बीस मिनट में पढ़ी जा सके।''

सर हूफ वाल्पोल के अनुसार – ''कहानी–कहानी होनी चाहिये अर्थात उसमें घटित होने वाली वस्तुओं का ऐसा लेखा जोखा होना चाहिये जो घटना और आकस्मिकता से परिपूर्ण हो उसमें प्रगति का ऐसा अप्रत्याशित विकास हो। जो कुतूहल के द्वारा सार और संतोष को पूर्ण आस्था तक ले जाये।''

भारतीय विद्वानों के मतानुसार

प्रेमचन्द्र – ''कहानी एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी

एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली उसका कथा विन्यास सब उसी भाव को पुष्ट करते है।''

जयशंकर प्रसाद – ''सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा रस की सृष्टि करना ही कहानी का उद्देश्य है।''

राय कृष्ण दास – ''कहानी मनोरंजन के साथ–साथ किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है तथा आख्यायिका में सौन्दर्य की एक झलक का रस है।

जैनेन्द्र कुमार – ''कहानी एक भूख है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश में रहती है। हमारे अपने सवाल होते हैं शंकायें होती है, चिन्ताएँ होती है और हम उनका उत्तर उनका समाधान खोजने का, पाने का सतत प्रयत्न करते रहते है। हमारे प्रयोग होते रहते है। उदाहरणों और मिशालों की खोज होती रहती है। कहानी उस खोज के प्रयत्नों का एक उदाहरण है। वह एक निश्चित उत्तर ही नहीं देती, पर यह अलबत्ता कहती है कि शायद उस रास्ते मिले। वह सूचक होती है कुछ सुझाव देती है और पाठक अपनी चिन्तन क्रिया से उस सूझ को ले लेते हैं।

इस प्रकार समाज की विषमताओं को देखते हुये कहानीकारों ने अनेक प्रकार की कहानी समाज के सामने प्रस्तुत की। कहानियों में उच्च मानववाद का प्रतिपादन किया किन्तु यह मानववाद यथार्थ के सहारे आदर्श की ओर विकसित हुआ है। समाज के निम्न वर्ग की अनेक प्रकार की समस्यायें उसके जीवन के विभिन्न प्रकार के रूपों को प्रस्तुत करते हुये आदर्शवाद का संकेत करते हैं। उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि समाज का कोई रूप उनसे छिपा नहीं है जैसे – ताँगे वाला, किसान, श्रमिक, विद्यार्थी, डाक्टर, वकील, व्यापारी, अधिकारी आदि के विविध रूपों को वे अपनी कहानी के माध्यम से चित्रित करने में पूर्णतया सफल रहे हैं।

हिन्दी साहित्य का विकास (स्वातंत्रयोत्तर)

''कथा साहित्य के आदि छोर को पकड़ने की इच्छा रखने वाले पाठकों की कसौटी में खरी उतरने वाली कहानियाँ मानवता के आदि ग्रन्थ वेदों तक में भी मिलती हैं, परन्तु इस कला का परिपूर्ण विकास आधुनिक युग की देन है।''[1] कहानी से नयी कहानी तक

की विकास यात्रा वस्तुतः नूतन भाव–भूमियों के अन्वेषण का एक साहित्यिक अनुष्ठान है। यथार्थ तो यह है कि आधुनिक व्यस्त एवं गतिशील जीवन के विविध परिवेशों के पकड़ने में अनेक सुविख्यात कहानीकार तक असफल हो रहे हैं।''[2] जिस गति से जीवन भाग रहा है उसी गति से नयी कहानी का कथ्य, शिल्प, बिम्ब, यथार्थ एवं भाव बोध भी भाग रहा है। इस स्थिति में आधुनिक कहानीकार अनुभूतियों की समसामयिकता को जितना भी पकड़ पाता है उसे वह पाठक तक संप्रेषित कर देता है। आज अपने अभावों की पूर्ति एवं इच्छाओं की तृप्ति हेतु प्रत्येक मनुष्य संघर्षरत है। नयी कहानी ने इसी संघर्षरत मनुष्य को पकड़ा है।

मानव विद्रोह की चीख पुकार परिवर्तित परिवेश की विसंगतियों ने कहानीकारों को उसका दायित्वबोध करते हुए आधुनिक व्यक्ति के हृदय, मस्तिष्क चेतना और अन्तः चेतना की सूक्ष्म विवेचना का अवसर दिया। ''स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सार्थक कहानी लेखन की दिशा में एक गम्भीर और महत्वपूर्ण प्रयास होने के कारण नयी कहानी आन्दोलन से सम्बद्ध लेखकों ने अनेक सशक्त कहानियाँ लिखीं यही नहीं उन्होंने सामाजिक यथार्थ के कुछ ऐसे आयामों को रेखांकित किया जिनकी ओर पहले के लेखकों का ध्यान पूरी तरह नहीं गया था।[3] नये कहानीकारों का अनुभव यदि एक सीमित दायरें में होता तो वह जीवन सत्य को इतनी सूक्ष्मता से कभी नहीं पकड़ पाता जितना कि पकड़े हुए हैं। जीवन सत्य की सूक्ष्म पकड़ के कारण ही नयी कहानी आज भी जीवन की मुख्य धारा से अनुस्यूत है तथा विभिन्न विकृतियों से उत्पीड़ित होने के पश्चात् भी आदमी का आत्म सम्मान उसके अचेतन में अकुण्ठित ही है। इस दृष्टि से नयी कहानी व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व का सही बोध करा सकी तो यही मोड़ किसी भाषा और उसके साहित्य के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। ''आधुनिक कहानी यथार्थबोध की जटिलतम समस्याओं से निरन्तर अनुप्राणित है।''[4] ''आधुनिक कहानीकार के लिए कहानी अभिव्यक्ति होती है मात्र घटना नहीं।''[5]

स्वतंत्रता के उपरांत सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, वैयक्तिक शैक्षणिक एवं राजनैतिक दृष्टि से आदमी के जीवन में जो अराजकता एवं अशांति आयी उसके कारण चारों ओर सताया हुआ आदमी ही दृष्टिगोचर होता है, निरन्तर बढ़ते हुए भ्रष्टाचार एवं स्वार्थ ने आदमी के अस्तित्व, सम्बन्धों एवं विश्वास पर जमकर प्रहार किये। ''नयी कहानी हिन्दी कहानी का इतिहास नहीं है यह कहानी के विकास की श्रृंखला की एक कड़ी है।''[6]

स्वातन्त्रयोत्तर भारतीय समाज में एक बड़ा परिवर्तन यथार्थ रुप में कहानी चित्रण था। "सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों में आने वाले परिवर्तन को लेकर जो कहानियाँ लिखी गयीं उनमें पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले वे पात्र हैं, जो अभी तक परम्परागत जीवन मूल्यों से चिपटे हुए हैं।(7)

वर्तमान समय में विषमताओं के तमाम तथ्यों को न निगल सकने के कारण जहाँ नई पीढ़ी अभाव, अनास्था, निराशा एवं कुंठा के क्षणों को जीने के लिए विवश हुई, वहाँ शिक्षातन्त्र की रोटी खाने वाले बुद्धिजीवी प्रजातन्त्र का खुला तमाशा देखकर भी कुछ न कर सकने की स्थिति में हैं। इस प्रकार इस असंतुष्ट आदमी की अनास्था, कुंठा विद्रोह एवं प्रतिकार की भावना ही नयी कहानी का कथ्य है। "स्वतंत्रता के बाद तरुण लेखकों की नई पीढ़ी ने एक नये समाज को देखा जिसमें भेड़िया–संघर्ष, अवसरवादिता और स्वार्थपरता का बोलबाला था – हर स्थिति में सत्ता हासिल हो, इसमें योग्यता या अयोग्यता का कोई सवाल नहीं – क्या यही हमारी स्वतंत्रता का वास्तविक रुप है ?"(8)

आजादी के उपरान्त पुरुषों के समान ही स्त्रियों को भी समानाधिकार मिला तो उनके जीवन में एक परिवर्तन आना स्वाभाविक है। जब उनके पैरों से बन्धन की बेड़ियाँ खुल गयीं तो उनका कार्यक्षेत्र मात्र गृहस्थी तक ही सीमित नहीं रहा। नये कहानीकारों ने प्रायः अपने–अपने दृष्टिकोणों से इन स्त्रियों के जीवन को आधार बनाकर अनेक कहानियाँ लिखीं ऐसी कहानियाँ जो नौकरीपेशा स्त्री के जीवन की सच्चाई से भरी हुई हैं। उसमें मोहन राकेश कृत – "एक और जिन्दगी, सुहागनें, मिसपास", कमलेश्वर कृत – "तलाश", राजेन्द्र यादव कृत – "खेल, प्रतीक्षा, छोटे–छोटे ताजमहल टूटना", ऊषा प्रियम्बदा कृत – "नींद, झूठा दर्पण, पूर्ति, एक और विदाई, नागफनी के फूल," मन्नू भण्डारी कृत – "क्षय, जीती बाजी की हार", शांति मेहरोत्रा कृत – "महल एक औरत, मार्कण्डेय कृत – "एक दिन की डायरी", निर्मल वर्मा कृत – "परिन्दे, एक पुष्प एक नारी", शिवप्रसाद कृत – "धरातल", आदि उल्लेखनीय हैं।

आज विद्रोह का यह बिन्दु प्रत्येक मनुष्य के भीतर है विगत वर्षों की अधिकांश कहानियों में विद्रोह का यह बिन्दु पूर्णतः उभर कर आया है। "आज की सामाजिक एवं मानवीय संवेदनाएँ और परिस्थितियाँ अपनी आस्थाओं मूल्यों तथा विश्वासों के सहारे जीने वाले लोगों को उखाड़ फेंकने की चेष्टा करती है।"(9)

आधुनिक कहानीकार प्राचीन लेखकों की तरह रस उत्पत्ति के लिए ही कहानियों की सृष्टि नहीं करता न ही मध्ययुगीन कहानीकारों की तरह अस्वाभाविक कौतूहलता की अस्वाभाविक घटनाओं को लेकर वर्णन करता है। वर्तमान कहानीकार आज का संघर्षशील व्यस्त और दुखी मानव जिसके सामने समस्याओं, चिन्ताओं और समाधानों का ढेर है। आज कहानी मनोरंजन के साथ किसी न किसी सत्य का भी उद्‌घाटन करती है। वैज्ञानिक युग का मानव पूर्णरुपेण स्वतंत्र है, आधुनिक कहानी साहित्य इसी वैयक्तिकता को महत्व देता है। आज का प्रत्येक कहानीकार अपनी कहानियों में व्यक्तिगत मान्यताओं धारणाओं और चिन्ताओं को मूर्तरुप देने की चेष्टा करता है। वह वर्तमान को भूलकर केवल भविष्य की काल्पनिक शांति में ही मन नहीं रमाता। वह अपने युग और उसमें उभरती नयी मान्यताओं के प्रति सचेत है। कहानी व्यक्ति व समाज की होती है, उसके कार्य, कारण और सम्बन्ध की होती है। "आज की कहानी के रुप एवं स्वरुप में तीव्र गति से परिवर्तन दिखाई देता है, परन्तु कहानी कला के मूल तत्वों में परिवर्तन नहीं है।"(10)

आज विशिष्ठ पात्रों को न चुनकर सामान्य मानव को ही संघर्षों एवं युग की चेतना का प्रतीक माना जाता है। कहानियों का सम्बन्ध यदि जीवन से है तो पात्र भी यथार्थ जीवन के होने चाहिये। कहानी के चरम उद्देश्य तक में आज मानवता और मानव मूल्य है, उनकी व्याख्या है। उद्देश्य इतना सपाट सीमित या यांत्रिक नहीं होता कि कहानी के विषय में समाहित हो सके।

आजकल तो बिना किसी उद्देश्य और विचार के भी कहानीकार एक विशेष स्थिति को चित्रित कर देता है। इनमें कोई जीवन दर्शन नहीं तब भी आनन्द है। कथानक की सत्य रुपरेखा ही यहाँ उद्देश्य है जैसे मन्नू भंडारी की 'आकाश के आइने में', जगदीश चतुर्वेदी की 'मुर्दा औरतों की झील', रेणु की 'टेबल', ज्ञानरंजन की 'फैंस' के इधर उधर' आदि। आज की कहानी में फूड़ता शोर–शराबा भी बिना उद्देश्य के नहीं, वह यदि निराशा दिखाती है तो आशा और जीवन पाने की छटपटाहट भी उसमें व्याप्त है।

आज कहानियों में युग–बोध, जीवन की समस्याएं, ज्ञान, सत्य का परिचित रुप भी उपलब्ध है। वह तर्क, विचार, मनन के बाद सूक्ष्म से सूक्ष्म अंतर्दृष्टियों को हास्य व्यंग्य ओर नई सशक्त अभिव्यक्ति को भी स्पष्ट कर रही है। एक स्वतंत्र नदी की तरह अविरल मधुर

धारा प्रवाहित हो रही है, होती जाएगी। नयी कहानी के विकास के मुख्य तीन पक्ष हैं, न तीनों पक्षों का विकास एक साथ ही हुआ। इन तीनों के पूर्ण विकास से ही आधुनिक कहानी का पूर्ण विकास सम्भव हुआ। ये तीनों पक्ष क्रमशः आत्मा, रुप और शैली है।

नन्द दुलारे बाजपेयी आधुनिक कहानी के विवाद पर अपना मत स्पष्ट करते हुए बताते हैं – "नये युग की हिन्दी कहानियों के सम्बन्ध में दो बातें बड़े विश्वास के साथ और बहुत ही निर्विवाद भाव से कही जाती हैं। एक यह है कि ये कहानियाँ आधुनिक पश्चिमी कहानियों से प्रभावित हैं और उन्हीं के आधार पर लिखी जा रही हैं। दूसरी यह कि इन कहानियों का प्राचीन भारतीय कथा–साहित्य से कोई क्रमागत सम्बन्ध नहीं है किन्तु मुझे ये दोनों ही बातें सुविचारित नहीं जान पड़ती और सहसा यह मान लेने का कोई कारण नहीं दिखता।"[11] नई हिन्दी कहानियों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है अथवा प्राचीन कथा–साहित्य से उनका कोई तात्विक साम्य नहीं है।

आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मेरा यह विचार देशप्रेम की किसी संकीर्ण भावना से प्रेरित होकर नहीं बनाया गया, न इसके मूल में प्राचीन–प्रियता की कोई धारणा ही है। साहित्यिक इतिहास के समस्त विद्यार्थी यह जानते हैं कि प्राचीन भारतीय कहानियाँ अपने समय के सभ्य संसार में कितना प्रभाव रखती थीं, उनका कितना ऋण संसार के कथा साहित्य पर है। यदि आज हिन्दी कहानियाँ पश्चिम से प्रेरणा ले रही हैं तो यह पूर्ववर्ती ऋण का शोध ही माना जाएगा।

उक्त स्थितियों में हम बिना किसी हिचक के वास्तविक स्थिति का उल्लेख कर सकते हैं। इन नई कहानियों का प्राचीन कहानियों से असम्बद्ध होना भी सिद्ध नहीं होता। यद्यपि विषय, शैली और उद्देश्य आदि में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है।

संक्षेप में मैं कह सकती हूँ कि आधुनिक कहानी की यही रूपरेखा है जो क्रमशः विकसित होकर पश्चिमी साहित्य में प्रतिष्ठित हुयी है। हमे यह माननें में संकोच नहीं होना चाहिए कि छोटी–छोटी कहानियाँ लिखने की यह कला हमने यूरोप से ली है। कम से कम उसका आज का विकसित रूप तो पश्चिम का ही है। ना कि हमारे यहाँ प्राचीन संस्कृत–साहित्य में भी कहानी थी, पर अनेक कारणों से जीवन की अन्य धाराओं की भांति साहित्य में भी हमारी प्रगति रुक गयी। साहित्य के लिए प्राचीनकाल ने जो मर्यादायें बाँध दी थीं उनका उल्लघंन

करना वर्जित था। अतएव काव्य और नाटक की भाँति कथा में भी हम आगे न बढ़ सके। कोई वस्तु बहुत सुन्दर होने पर भी अरुचिकर हो जाती है, जब तक उसमें कुछ नवीनता न लायी जायें। एक ही तरह का काव्य, एक ही भांति के नाटक पढ़ते–पढ़ते आदमी थक जाता है और वह नयी चीज चाहता है, चाहे वह उतनी सुन्दर और उत्कृष्ट न हो। हमारे यहाँ या तो यह इच्छा हुयी नहीं, या हमने उसे इतना कुचला की जड़भूत हो गई। पश्चिम प्रगति करता रहा। उसे नवीनता की भूख थी और मर्यादाओं की बेड़ियों से चिढ़। जीवन के प्रत्येक भाग में इसकी इस अस्थिरता की, असंतोष की, बेड़ियों से मुक्त हो जाने की छाप लगी हुई है। साहित्य में भी उसने क्रान्ति मचा दी। कथा–साहित्य में विकास हुआ और उसके विषय में चाहे उतना बड़ा परिवर्तन न हुआ हो, पर शैली तो बिल्कुल ही बदल गयी। "अलिफ लैला" उस समय का आदर्श था, रोमांस था, पर उसमें जीवन की समस्यायें न थीं, मनोविज्ञान के रहस्य न थे अनुभूतियों की इतनी प्रचुरता न थी, जीवन अपने सत्य रुप में इतना स्पष्ट न था।"[12]

ऊपर का यह लम्बा उद्धरण प्रेमचंद के एक प्रख्यात लेख से है। हिन्दी साहित्य के महारथियों में वे ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस सत्य को जाना और हिन्दी की आज की आवश्यकताओं के अनुसार कहानियाँ दीं। वर्तमान युग की जरूरतों को समझते हुए साहित्य के इस नये पाठक के मन की ही चीज उन्होंने उसे देने का प्रयास किया।

आज का कहानीकार कल्पना मात्र पर अपनी कहानी की भित्ति खड़ी न करके किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर उसकी नींव रखकर और कला के दूसरे उपकरणों की सहायता से उसमें प्राण–प्रतिष्ठा करके, सजीवता प्रदान करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नये कहानी लेखकों की एक सशक्त पीढ़ी अपनी रंगारंग अनुभूतियों को लेकर हिन्दी–साहित्य के क्षेत्र में आगे आयी, लेकिन नयी कविता की तरह 'नई कहानी' भी कोई पृथक चीज है, ऐसा भ्रम शायद कुछ इसी प्रकार के लोगों ने ही फैलाया है, जिनका न तो अपना कोई स्थिर मत है, न स्पष्ट दृष्टि। कहानी पुराने ढांचे में किसी मनोरंजक कथानक को लेकर भी लिखी जा रही है।

"आधुनिक कहानी की विकास प्रक्रिया के अध्ययन से स्पष्ट है कि आधुनिक कहानी मनुष्य की समस्याओं और उसकी चेतना के विभिन्न स्तरों की कहानी है।"[13]

आधुनिक कहानियाँ कथा साहित्य में एक नये मोड़ के आने की सूचना तो देती ही है किन्तु नये रचनात्मक परिवेश की ओर संकेत भी करती है। जो अब जीवन में आ रहा है।

नये जीवन मूल्य

अब समीक्षा के क्षेत्र में यह बात कम–बेश रुप में मान्य हो चुकी है कि जीवन–मूल्यों से कटकर तैयार हुए कलागत मूल्य न केवल अनावश्यक हैं बल्कि अविश्सनीय भी हैं। जीवन–मूल्यों द्वारा नियोजित मर्यादाओं के प्रति रचनाकार की स्वीकृति–अस्वीकृति अथवा तटस्थता उसकी रचना के मूल्यांकन का निष्कर्ष बनती है।

"मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में यदि हम साहित्य को नहीं समझते तो अक्सर हम ऐसी प्रतिभान योजना को प्रश्रय देने लगते हैं कि समस्त साहित्यिक अभियान गलत दिशाओं में मुड़ जाता है।"[14]

"पहले जो कथाकार आदर्शों में विश्वास करता था, वही पाँचवे दशक से ही मूल्यों में विश्वास करने लगा।"[15]

कालान्तर में इस विश्वास की परिणति नये मूल्यों की तलाश और विघटनशील मूल्यों के अस्वीकार में होती गई।

जिस समय देश के भाग्य विधाता संविधान के निर्माण में जुटे हुये थे, उस समय भारतीय जन–मानस गम्भीर चुनौतियों के दौर से गुजर रहा था। देश का भयावह विभाजन, बढ़ता हुआ औद्योगीकरण पाश्चात्य विचारकों – डार्विन, मार्क्स, फ्रायड और सार्त्र आदि के आदर्शवाद विरोधी विचार–सूत्रों का दबाव आदि औसतन भारतीय चेतना को झकझोरने के लिये पर्याप्त थे। फलस्वरूप मानवीय सम्बन्धों का सतत् एवं स्वाभाविक रुप विकृत हो चला, रिश्तों में दरारें पड़ गयीं और पुरातन "जीवन–मूल्य" आधुनिकता से टकराकर या तो नष्ट हो गए या, "नया चोला" धारण करने के लिये बाध्य हो गए।"

जिस आदर्शपरक आस्था और अभिजात्य गौरव के प्रति मोह स्वाधीनता – संघर्ष की प्रेरक शक्ति बने थे, कलांतर में वे सब "कुन्ठा" और "घुटन" में बदल गये। "बीमार संवेदनाओं और आत्मकारी विश्वासों से जैसे समूचा वातावरण साहित्यिक हो गया।"[16] तीव्र गति से फैलता हुआ औद्योगीकरण, बढ़ती हुयी जनसंख्या का दबाव तथा जीवन के हर क्षेत्र

में प्रवेश करती हुयी राजनीति, ये सब उन आदर्शों और विश्वासों की टूटने के लिए समान रूप से उत्तरदायी हैं। जिनकी स्वतंत्रता संघर्ष में एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। तब से आज तक बहुत बड़ा उलटफेर हो चुका है। हिन्दी कहानीकारों ने इस बदलते हुए माहौल पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं जिनमें समकालीन मूल्य–बोध के सही रुप को देखा जा सकता है।

''नयी कहानी'' के संबंधों के परिवर्तित रुप, प्रेम और घृणा की सापेक्षता, अर्थहीन जीवन की समझ में भी रोमांचित सा स्पर्श, और अजनबी होते अपने ही संसार को सही अभिव्यक्ति दी है। अजनबी होते अपने ही संसार को चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति मन्नू भंडारी की कहानी की मूल–चेतना है।''

स्वतंत्रता के उपरान्त लिखी गयी कहानियाँ दरअसल परम्परागत मूल्यों के प्रति विक्षोभ प्रदर्शित करती हुई नवीन जीवन मूल्यों को उभारती हैं। अधिकांश कहानियों में जीवन–मूल्य भरे हुए हैं जो पूर्णतया टूटे नहीं हैं। नवीन मूल्यों की स्थापना की ओर भी कहानीकारों ने संकेत ही किया है केवल ''तलाश'' (कमलेश्वर)'', (दाम्पत्य)'' (राजकमल चौधरी) और ''निश्चय'' (कुल भूषण) आदि कुछ कहानियों में नवीन मूल्यों की स्थापना का प्रयास मिलता है।'' इस पीढ़ी के कहानीकारों में ''मानवीय मूल्यों के संरक्षण, जीवनी शक्ति के परिप्रेषण एवं सामाजिक नव निर्माण की उत्कंट प्यास है इतना ही नहीं, बल्कि आज की कहानी नयी भाव भूमियों का सृजन कर रही है।''(17)

समय–समय पर टूटते–बनते मूल्यों के अनुसार रचनाकार की दृष्टि में भी परिवर्तन होना अनिवार्य है। लेकिन जैसा कि रामचन्द्र ''भ्रमर'' ने लिखा है ''किसी भी रचनाकार की कृति उस चिंतन सत्य से अडिग नहीं होनी चाहिये, जो निरन्तर प्रगति का एकमात्र आधार है – मनुष्य के सनातन संघर्ष के प्रति आस्थावान होकर भविष्य के प्रति पूर्ण आशावादी होना।''(18)

''कतिपय आधुनिकतावादी राजकुमार ''भ्रमर'' के कथन को परम्परावादी ठहराते हुये उसकी सार्थकता को संदेहास्पद सिद्ध करने की कोशिश कर सकते ऐसे लोगों को जानना चाहिए कि भारतीय परम्परा न केवल कुछ सामाजिक आदर्शों और मूल्यों के प्रति दुहराया गया विश्वास है अपितु उन मूल्यों की अस्वीकृति भी है जो अनुपयोगी सिद्ध हो जाते हैं।(19)

अतः परम्परा से कटे हुए मानवीय मूल्य न केवल अयथार्थ होते हैं बल्कि नाकाफी भी हमें आश्वत होना चाहिए कि सातवें – आठवें दशक के कहानीकार समकालीन जीवन–मूल्यों की यथार्थ एवं ईमानदार अभिव्यक्ति के नियामक सिद्ध हुए हैं।

इस प्रकार नए तथ्य नए प्रयोग और नव–जीवन मूल्यों द्वारा नयी कहानी ने कथा साहित्य को नयी अर्थवत्ता तथा कला–संचेतना प्रदान की है जो नितांत नयी उपलब्धि है। उक्त रचना धर्म को देखते हुए जैनेन्द्र जी का यह आपेक्ष कि नयी कहानी एक संघीय संज्ञा सटीक बैठता है।

(ख) प्रेम चन्द्रोत्तर कहानी

प्रेमचन्द्र युग के पश्चात हिन्दी कहानी ने फिर से नया रूप रंग प्राप्त किया। उसका बहुविध विकास हुआ। यह विकास क्षेत्र थे – विषय–चयन, कथा–संगठन, चरित्र–चित्रण, वातावरण निर्माण, भाषा शैली, उद्देश्य।

इस चतुर्दिक विकास का कारण एक था – पश्चिमी दर्शन, पश्चिमी मनोविज्ञान तथा पश्चिमी जगत से सम्पर्क। पाश्चात्य जगत में साम्यवाद प्रमुखता ग्रहण कर चुका था – उसकी अनुगूँज हमें प्रेमचन्द्र की तृतीय काल की कहानियों में स्पष्टतः सुनाई पड़ती है यह प्रभाव अधिकाधिक बढ़ा और प्रेम चन्दोत्तर काल की कहानी को उसने पूरी तरह से पश्चिमी जगत में फ्रॉयड के आविर्भाव ने मनोविज्ञान सम्बन्धी मान्यताओं में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी मन में अर्द्धचेतना भाग को प्रमुखता मिलने लगी थी। मानव स्वभाव के रहस्यमय सूत्रों को खोज निकालने के लिये उस पर कलाकारों का ध्यान केन्द्रित होने लगा था। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी कहानी को भी प्रभावित किया। इस पश्चिमी प्रभाव के चार वर्ग थे – रूसी प्रभाव, फ्रांसीसी प्रभाव, अमरीकी प्रभाव और अंग्रेजी शासन। रूसी प्रभाव जैनेन्द्र तथा अज्ञेय आदि पर पड़ा। रूसी कहानीकार ने इन्हें प्रभावित किया उपेन्द्र नाथ 'अश्क' ने फ्रांसीसी प्रभाव ग्रहण किया।

जैनेन्द्र

प्रेमचन्द्रोत्तर काल में मनोवैज्ञानिक कहानीकार के रूप में जैनेन्द्र शीर्षस्थ है। जैनेन्द्र ने ही कहानी के क्षेत्र में मनोविज्ञान की, सूक्ष्म अवधारणा से हटकर चलने वाले

मनोविज्ञान की प्रतिष्ठा की। मनोविज्ञान की सूक्ष्मता का समावेश प्रेमचन्द्र की बाद की कहानियों (जैसे कफन) में मिलता है, किन्तु उसके जिस रूप की प्रतिष्ठा इंस काल में (प्रेम चन्द्रोत्तर काल में) हुई वह सर्वथा भिन्न प्रकार का था।

यशपाल

कहानी कला का वह रूप जो साम्यवाद तथा मनोविश्लेषण के सम्बन्ध में पनपा, उसके प्रति निधि कलाकार यशपाल हैं। उनकी कहानियों में एक ओर समाज की आलोचना तो दूसरी ओर व्यक्ति के मनोविज्ञान की व्याख्या प्रस्तुत की गयी हैं। यशपाल प्रेमचन्द्र की कहानी कला के विकास–सोपान पर हैं परन्तु एक विशेषता यशपाल को स्वतंत्र स्थान देती है और वह है साम्यवाद पर बल। यशपाल लगभग 200 कहानियाँ हिन्दी जगत को प्रदान कर चुके हैं और इनके 15 संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। यशपाल की ही परम्परा के अन्य कहानीकार है, उपेन्द्र नाथ 'अश्क', भगवती चरण वर्मा, रांगेय राघव आदि।

प्रेमचन्द्रोत्तर कथा प्रवृत्तियाँ

सन् 1936 ई. में प्रेमचन्द की मृत्यु हुई तथा इसी के आसपास जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा इत्यादि लेखकों की रचनाओं के माध्यम से एक नये प्रकार के रचना बोध के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में फ्रॉयड के मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन से सम्बद्ध कहानीकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है ये सभी फ्रॉयड के मनोविज्ञान से प्रभावित थे। भाषा और शिल्पगत प्रयोगों के संदर्भ में अज्ञेय का नाम सर्वाधिक चर्चित रहा है। जबकि जैनेन्द्र की भाषा में विविधता है। शिल्प और भाषा में स्वतंत्रता पूर्व कहानी साहित्य के प्रेरणा के स्रोत मुख्यतया समाज और जीवन की विषमताएँ एवं जटिलताएँ न होकर वे मान्यताएँ तथा आदर्श थे जिनका सामयिक रूप से प्रचलन था।

नई कहानी–नाम की सार्थकता

सन् 1950–55 के आसपास हिन्दी कहानी के क्षेत्र में कुछ लेखकों समीक्षकों ने नई कहानी के आन्दोलन का सूत्रपात किया, नई कहानी चूंकि स्वातंतत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के पर्याय के रूप में ही प्रयुक्त की जाती रही है। अतः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी की प्रवृत्तियों को नई कहानी की ही प्रवृत्तियां समझी जानी चाहिए।

प्रेमचन्दोत्तर युग के पश्चात आधुनिक युग जैनेन्द्र से आरंभ होता है, दार्शनिकता बौद्धिकता तथा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचन जैनेन्द्र की कहानीकला की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। ज्वालदत्त शर्मा, जर्नादन प्रसाद झा, श्री चण्डीप्रसाद हृदयेश, गोविन्द वल्लभ पंत, सियाराम शरण गुप्त आदि ने भी वर्तमान युग में विशेष ख्याति प्राप्त की है। वृन्दावनलाल वर्मा ने भी हिन्दी कहानी में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी कहानियां 'कलाकार का दंड' नाम से संग्रहीत है।

जैनेन्द्र के कुछ समय पश्चात हिन्दी में मनोविश्लेषण की परम्परा का आरंभ हुआ जिसे इलाचन्द्र जोशी ने आगे बढ़ाया। अज्ञेय तथा भगवतीचरण वाजपेयी ने भी अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों का अच्छा उद्‌घाटन किया है। अज्ञेय जी पर फ्रॉयड के मनोविज्ञान का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपनी कहानियों की रचना सामाजिक विषयों को लेकर की है। आधुनिक समाज की विशेषताओं पर तीखा व्यंग्य करने वाले श्री यशपाल कहानी जगत के लब्ध प्रतिष्ठित कलाकार हैं। जी. पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्ण देव प्रसाद गौड़, अन्नपूर्णानन्द, मिर्जा अजीम बेगम चुगताई, जयनाथ नलिन आदि ने हास्य रस की कहानियां लिखीं। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि इस युग के महत्वपूर्ण कहानीकार हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी, विष्णु प्रभाकर, रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे अंचल, गजानन माधव मुक्ति बोध, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, रघुवीर सहाय आदि इस युग के अन्य महत्वपूर्ण कथाकार हैं।

महिला लेखिकाओं में सुभद्रा कुमारी चौहान, उमा नेहरू, शिवरानी देवी, तेजरानी पाठक, उषा देवी मित्रा, सत्यवती मलिक, कमला देवी चौधरानी, महादेवी वर्मा, चन्द्रप्रभा, तारा पाण्डेय, चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, रामेश्वरी शर्मा, पुष्पा महाजन, विद्यावती शर्मा आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक काल (1936 से 60 ई) हिन्दी का स्वर्ण काल है। इस युग में कहानी में अनेक प्रवृत्तियाँ उभरीं और विविध शिल्प विधान किए गए हैं। संभवतया इसी कारण उस युग को संक्रान्तिं युग की संज्ञा दी गयी है। इस युग की कहानी यथार्थ की सुदृढ़ आदेश भूमि पर खड़ीं हैं। आधुनिक मानव परिवेश एवं उसकी समस्याओं का सजीव चित्रण प्रस्तुत करना कहानी की महत्वपूर्ण विशेषता है। युग परिवर्तन के साथ ही हमारी प्राचीन मान्यताएँ भी

परिवर्तित हो गयी हैं। तथा हमारे ऊपर बाह्य प्रभाव भी पड़े हैं, सोचने की नई दृष्टियाँ मिली हैं।

आधुनिक कहानी पर मनोविश्लेषण और मार्क्सवाद का प्रभाव प्रमुख रूप से है। फ्रायड, एडलर, युंग आदि मनोविश्लेषणवादियों के सिद्धान्तों और मार्क्स के भौतिकवाद ने आलोच्यकालीन कहानी को एक नया आधार दिया है। इस युग पर गांधी जैसे मानवतावादी व्यक्ति का भी प्रभाव पड़ा। कहानी के शिल्प में भी परिवर्तन हुआ। कथानक से अपनी परम्परागत रूढ़ियों का त्याग हुआ एवं चरित्रों के बाह्य चित्रण को छोड़कर आन्तरिक चित्रण को महत्व मिला। वातावरण का चित्रण भी कलात्मक ढंग से हुआ। अनुभूति के धरातल से निर्मित होने के कारण यह कहानी वस्तु से अधिक संकेत को महत्व देती है।

स्वातंत्रयोत्तर काल (1947–60 ई.) में कहानी गद्य साहित्य की सभी विधाओं से अधिक लोकप्रिय हुई है। इस काल की हिन्दी कहानी सभी दृष्टि से सम्पन्न हैं। नए लेखकों ने प्रतीकों, बिम्बों और संकेतों से सजाकर इस काल की कहानी को कलात्मक श्रेष्ठता प्रदान की है।

स्वातन्त्रयोत्तर काल में हिन्दी की अनेक पत्र–पत्रिकाओं में नई पीढ़ी के कहानीकारों और आलोचकों ने वर्तमान कहानी को लेकर एक विवाद खड़ा कर दिया है जिससे कहानी को 'नई' की संज्ञा दी गई है। डॉ. नामवर सिंह (1926 ई.) डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, उपेन्द्र नाथ अश्क, हरिशंकर परसाई, श्रीकान्त वर्मा, ठाकुर प्रसाद सिंह (1924) आदि नाम विशेष रूप से चर्चा के उद्बोधक रहे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात देश में एक नई चेतना आई जिसमें आशा और आस्था प्रमुख है। देश की स्वाधीनता के साथ ही अनेक सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं, उसमें सांस लेता हुआ मनुष्य भी निश्चित बदला है। अब मनुष्य को नवीन समस्याओं ने घेर लिया है। उसकी अभिव्यक्त में बारीकी और कलात्मकता आई है। नई कहानियों में नया मोड़ आ चुका था। इन कहानियों में जीवन सत्य को आन्तरिक जटिलता और संश्लिष्टता में देखने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। जटिल यथार्थ का अतिशय आग्रह सूक्ष्म अनुभूतियों के प्रति नितान्त जागरूकता, बौद्धिकता, तटस्थता, रचना प्रक्रिया के प्रति जागरूकता, प्रतीकात्मकता, बिम्ब विधान तथा सांकेतिकता आदि विशेषताएँ इन कहानियों में प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है। इन नई पीढ़ी के कहानीकारों में फणीश्वरनाथ

रेणु, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय, धर्मवीर भारती, चन्द्रकिरण सोनरिक्सां, मार्कण्डेय राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, अमर कान्त, मोहन राकेश, कमलेश्वर, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा, रमेश बख्शी, भीष्म साहनी, शैलेश मटियानी, मुक्तिबोध और शानी तथा अज्ञेय के नाम प्रमुख हैं।

जिस प्रकार सन् 1950 के बाद नई कहानी का जन्म हुआ उसी प्रकार सन् 1960 के बाद हिन्दी कहानीकारों की युवा पीढ़ी ने अपनी कहानियों को पिछली पीढ़ी से अलग करते हुए शिल्प और संवेदना की दृष्टि से नितान्त नई क्रान्तिकारी कहानी का आविष्कार किया है।

नई पीढ़ी को सातवें दशक की कथा पीढ़ी कहा है। जिसके प्रमुख कथाकार प्रबोध कुमार, विजय चौहान, प्रयाग शुक्ल, दूधनाथ सिंह, गंगा प्रसाद विमल, ज्ञानरंजन, मनहर चौहान, काशीनाथ सिंह, सुदर्शन चौपड़ा, महेन्द्र भल्ला, भानु खोलिया, सुधा अरोड़ा, औलक आदि हैं। इससे संदेह नहीं कि सन् साठ के बाद हिन्दी कहानी में एक नया मोड़ लक्षित किया जा सकता है, अधिकांश कहानियां नए वस्तु शिल्प और नई संवेदना की कहानियाँ हैं। जो कि मानव नियति के जटिलतम सूत्रों को परिभाषित करने वाली, निर्मल सत्यों को व्यक्त करने वाली मानवीय सम्बन्धों के बदलाव की कहानी है।

रचना शिल्प एवं लक्ष्य की दृष्टि से कहानियों का विकास

शिल्प की दृष्टि से कहानी के छः प्रमुख तत्व हैं –

(1) कथानक (2) पात्र एवं चरित्र चित्रण (3) संवाद
(4) वातावरण (5) भाषा शैली (6) उद्देश्य

कथा की परख इन्हीं तत्वों से की जाती है। वर्तमान नवीन शिल्प में कतिपय परिवर्तन हुए हैं जिनके अनुसार –

(1) कथानक (2) चरित्र (3) वातावरण
(4) लक्ष्य और अनुभूति (सूक्ष्म संकेतों का महत्व)
(5) शैली आदि प्रमुख तत्व माने गए हैं।

कहानियों में शैलियों के कई प्रकार दिखाई देते हैं उदाहरणार्थ (1) इतिहास शैली (2) संलाप या वार्तालाप शैली (3) आत्मचरित्र शैली (4) पत्र शैली (5) डायरी शैली (6) मिश्रित शैली आदि।

आधुनिक कहानियों के शिल्प में नवीनता का आग्रह मिलता है। शिल्प की यह मौलिकता कहानी के रूप पठन अर्थात् कथानक निर्माण, चरित्र चित्रण वातावरण आदि सभी क्षेत्रों में दिखाई देती है। कथानक में परम्परागत रूढ़ियों का महत्व नहीं रहा है। उसमें कथा ही नहीं अपितु अनुभूति की प्रधानता है। अनुभूति को ही महत्व देने के कारण कहानी का अनावश्यक विस्तार कम हो गया है। अब कहानियों में आंरभ में भूमिका तथा अंत में उपसंहार नहीं होता। चरित्रों के बाह्य चित्रण को छोड़कर आंतरिक चित्रण को ही महत्व दिया जाता है। वातावरण भी अनुभूति में सहायक सिद्ध हुआ है। आज का कहानीकार पाठक को प्रबुद्ध मानकर कहानी का सृजन करता है। डायरी, स्वगत संलाप, आत्म कथात्मक शैली के अतिरिक्त अब कहानीकार प्रतीकों, बिम्बों और संकेतों का भी सहारा लेता है।

इस प्रकार हिन्दी कहानी में आंरभ से वर्तमान तक पूर्ण विकसित समृद्ध विधा दिखाई देती है।

प्राचीन कहानियों में किसी आदर्श को प्रस्तुत करना ही कहानी का लक्ष्य होता था जो कि त्याग और कर्तव्य का आदर्श प्रस्तुत करती थी। इनमें नैतिक स्वर प्रधान था। प्रेमचन्द्र की प्रारंभिक कहानियाँ इसी आदर्श के धरातल पर लिखी गईं हैं। प्रसाद की अधिकांश कहानियों का लक्ष्य भी करूणा एवं प्रेम है। उत्तर प्रेमचन्द्र युग की कहानियाँ प्रायः अनुभूति के धरातल पर निर्मित होती हैं तथा उनमें कल्पना का समावेश दिखाई देता है। रघुवीर सहाय जी की कहानियाँ भी इसी प्रकार की हैं। जैनेन्द्र की दार्शनिकता पर आधारित कहानियों में लक्ष्य ढूंढ़े जा सकते हैं। ये लक्ष्य कहानीकार के दार्शनिक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं। जैनेन्द्र की कहानियों में जहां कहीं भी आदर्श प्रस्तुत हुआ है, उसका जिम्मेदार उनका दार्शनिक व्यक्तित्व ही है जो हमारी संस्कृत से पोषित है। अज्ञेय ने अपनी कहानियों का सृजन अनुभूति के धरातल पर किया है। उनकी अधिकांश कहानियां उनके व्यक्तिगत अनुभव की हैं। कुछ सामाजिक कहानियों में ही लक्ष्य की ओर ध्यान दिया गया है। इलाचन्द जोशी ने भी लक्ष्य पर ध्यान दिया है पर उनका लक्ष्य ऐसा नहीं है जो कहानी में किसी एक सूत्र में रख दिया गया है। उनका दृष्टिकोण पूरी कहानी में व्याप्त रहता है। यशपाल की कहानियां अवश्य लक्ष्यात्मक हैं जिसके कई कारण हैं। यशपाल प्रमुख रूप से कहानियों में समाज की नैतिक मान्यताओं, आर्थिक वैषम्य और वर्ग संघर्ष को लेकर समाज और उसकी परम्परा पर प्रहार करना चाहते हैं। इसी प्रकार अश्क की कहानियों का भी कोई न कोई लक्ष्य है।

अस्तु धीरे–धीरे रचना शिल्प एवं लक्ष्य की दृष्टि से कहानियों में उल्लेखनीय प्रगति हो रही है।

प्रेमचन्द्रोत्तर कहानी

(1) अकहानी

अकहानी नयी कहानी के प्रति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण कहानी विधा के प्रति युग सापेक्षता की माँग के कारण अस्तित्व में आयी है। कहानी या नयी कहानी मानव अस्तित्व के उलझे और खंडित वृत्त की सापेक्षता में सम्पूर्ण वैविध्य और उलझाव को अभिव्यक्त करने तथा प्रभाव डालने में असमर्थ रही है। इसलिये 'अकहानी' आवश्यक है। पिछली तमाम कहानियाँ समाजवादी, सुधारवादी, प्रकृतवादी, प्रतीकवादी, सामाजिक यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक आदर्शवादी तथा कुछ व्यक्तिवादी रही हैं। इन्दुमती, दुलाईवाली, ग्यारह वर्ष का समय से लेकर वर्तमान पत्र–पत्रिकाओं की कहानियों में एक विशेष आदर्श मूलक गतिशील गतिहीनता व्याप्त है। अकहानी इस सम्पूर्ण गतिहीनता के प्रति नये मानव की एक प्रबुद्ध माँग है। अकहानी नैतिकता की मृत्यु के बाद यौन समस्याओं के नये सिरे से उठान चाहती है कहानी अपने तत्वों में कुछ नहीं है, वह परम्परा धारणाओं में कहानी नहीं है, वह कुंठाओं, विश्वासों, असंशयों आदि कविता की पारिभाषिक शब्दावली में भी कहानी नहीं है। वह कहानी इसलिये नहीं है कि वह किसी तरह के स्थूल मनोरंजन का साधन नहीं बनती है। वस्तुतः अकहानी इससे बिल्कुल अलग है, और यह किसी तरह का पूर्वाग्रह नहीं भी नहीं रखती।

इसलिये अकहानी पर यह आरोप गलत है कि नये कथाकारों ने अपने समय को भावुकता भरी दृष्टि से देखा। परिवर्तन की गहरी आकांक्षा से जुड़े इन लेखकों ने अपने समय की सच्चाइयों का जैसा वास्तविकतावादी चित्र उपस्थित किया, वह हिन्दी में प्रेमचन्द्र के बाद पहली बार हुआ था। यही कारण था कि नयी कहानियों के दौर में कहानी साहित्य की केन्द्रीय विधा बन गयी। आजादी के बाद व्यक्तिगत क्षेत्र में पूँजी का तेजी से जमाव हुआ। पूँजीपतियों ने जमींदारों के सहयोग से धीरे–धीरे सत्ता को अपने वश में कर लिया। 1962 के चीन हमले के बाद भारतीय अर्थतंत्र की रीढ़ टेढ़ी हो गयी। निराशा और अवसाद के इस वातावरण में लोगों का स्वर यहाँ तक बदल गया कि वे मुक्ति–संग्राम की बात करने लगे।

जनता के सोचने–विचारने के ढंग का नियमन करने की शक्ति पूँजीशाहों में आ गयी। संस्कृति के क्षेत्र को इस तरह गँदला कर दिया गया कि भले–बुरे की पहचान लुप्त होने लगी। संघर्षशील मनुष्य की अस्मिता से जुड़ी हुई रचनाशीलता के सामने जीवन–मरण का प्रश्न उठ खड़ा हुआ।

स्वतंत्रता के बाद आये लेखकों के सामने रचना की एक अवरूद्ध गली मात्र शेष रह गयी थी, फिर भी उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कथाकारों की भांति वास्तविकता और जीवन–संघर्ष को ही रचना का उद्देश्य बनाया। नयी क्षत–विक्षत सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से आक्रांत समाज के यथार्थ को अंकित करने में जिन लेखकों ने मुख्य भूमिका अदा की उनमें ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह और इसराइल के नाम मुख्य हैं। इसी क्रम में इनकी कहानियाँ 'घंटा', 'उत्सव', 'नौ साल छोटी पत्नी', 'माननीय होम मिनिस्टर के नाम' और 'फर्क' अवलोकनीय हैं।

कहानी–रचना का केन्द्र–बिन्दु वस्तु जगत् से एक बार फिर खिसकने लगा। जहाँ विश्वास के योग्य जो कुछ था उस पर भी संशय की संभावना बढ़ गयी। रचना संसार सिमट कर छोटा होने लगा। फलतः इस अवरूद्ध गली में आत्म–चित्रण और स्वभाव–निरूपण, यथार्थ के अधिक नजदीक दिखने लगे। ऐसे ही प्रत्याभास और परिसीमित कथा–वस्तु के बीच लेखक हस्तलाघव की ओर उन्मुख होता है लेकिन यह भी सबके बूते की बात नहीं है। अमूर्त यथार्थ की पकड़ सर्वथा नयी दृष्टि की माँग करती है। इस दृष्टि से ज्ञानरंजन अपने समकालीनों में अपवाद हैं, ठीक वैसे ही जैसे जैनेन्द्र अपने समय में लोगों को एकदम अलग दिखे थे। इस कथन से यह अर्थ न निकाला जाये कि दोनों की रचना–दृष्टि में कहीं समानता है। जैनेन्द्र अपने समकालीन संदर्भों के परिवर्तित परिवार, शहरी मध्यवर्ग की उभरती हुई मानसिकता से साक्षात् कराते हैं लेकिन ज्ञानरंजन पूँजीवादी शोषण और पतनशीलता के विकलांग समाज के एक नन्हें से कोने के प्रतीक 'पेट्रोला' ('घंटा' शीर्षक कहानी का वह चायघर जहाँ कुंदन सरकार अपने दोस्तों के साथ बैठता है।) पर से पर्दा हटाकर भयावह सामाजिक संक्रांति, निरुद्देश्यता, क्षणजीविता और वैचारिक शून्यता के संदर्भ को प्रत्यक्ष करते हैं, जिनमें मनुष्य की नियति एक सूखे तिनके से अधिक नहीं है। वह 'घंटा' बनने के लिये बाध्य है। ज्ञानरंजन भी स्वीकार करते हैं कि 'पेट्रोला' की जिन्दगी से बाहर चले जाना काफी मुश्किल हो गया है।

साठ के बाद स्थितियाँ तेजी से बदलती गयीं। आदमी में विस्थापन की प्रक्रिया गहरे उतर गयी। धनिकों ने संचार–साधनों पर पूरी तरह कब्जा कर लिया और मानव–मूल्यों को निर्धारित करने की सारी शक्ति समाज की आँखों में अँगुली डालकर छीन ली। अब तो वे जो चाहते हैं, वही होता है। यहाँ तक कि आपकी लड़की वही कपड़े पहनती है जो उनकी मिलों के विज्ञापन बताते हैं और आपका लड़का वही गीत गाने को बाध्य है जो उन्होंनें अपने रेकार्डों में भरा होता है। रंगीन पत्रिकाएँ अपना लेखक ही नहीं गढ़तीं, साहित्य के प्रतिमान भी निर्धारित करती हैं जो लोगों की पतनशीलता की गति को तेज करते हों और जीवन की वास्तविकताओं से निरन्तर दूर ढकेलने के काम में लगे हुये हैं। जनता को उन्हें ही कथाकार मानने को मजबूर कर दिया गया है। तात्पर्य यह है कि वस्तु–जगत् के यथार्थ पर उनका पूरी तरह कब्जा है। फलतः कहानी अपनी रचनाशीलता की सुरक्षा के लिये अपने घर की तलाश करने लगी है। आत्मिक सत्य को सत्य मानने के अलावा दूसरा चारा सामान्य लेखकों के सामने नहीं रहा। 'भोगे हुये यथार्थ और 'अनुभव के खरेपन' की बात ने लेखकों को आत्म–ज्ञापन के छिछोरपन और प्रकृतिवाद के पास पहुँचा दिया। रचनाशीलता का संसार सिमटकर छोटा हो गया। सामाजिक परिवर्तन के लिये हो रहे संघर्ष की चेतना और सूचना दोनों ही रचना में कम होने लगीं। संप्रति आज कहानी ही नहीं, साहित्य की अन्य सभी विधाएँ अस्तित्व के संकट से गुजर रही हैं।

इसी बीच प्रेमचन्द्र की कहानी 'कफन' के 'घीसू' और उसे कफन का पैसा देने वाले सामन्त–दोनों में भारी परिवर्तन आ गया है। आज के कथाकार के लिये 'घीसू' और उसे कफन का पैसा देने वाले जमींदार दोनों की चारित्रिक अवधारणा ठीक वैसी ही सम्भव नहीं रह गयी है। जैसी प्रेमचन्द्र की थी। आज का घीसू अपने अधिकारों के लिये संघर्ष कर रहा है। वह परिवर्तन का आकांक्षी है। निश्चय ही आगामी कहानी का मूलस्वर परिवर्तन की इसी कामना का स्वर होगा।

(2) *नयी कहानी*

स्वतंत्रता संघर्ष के पीछे एक लम्बे संघर्ष का इतिहास छिपा हुआ रहता है। यह संघर्ष उस देश की मानसिकता को, जीवन से भी बड़े मूल्य को प्राथमिकता देने के लिए सदा उकसाता रहता है। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद के कुछ वर्ष पहले मूल्यों के स्तर पर असमंजस्यता

के वर्ष रहे हैं यह असमंजस्यता ही आगे चलकर एक व्यापक धरातल पर मोहभंग में बदल गई। इस मोहभंग की प्रारंभिक दस्तक इस बीच नवलेखन के स्वरूप में उभरे ''नयी कविता'' और ''नयी कहानी'' जैसे साहित्यिक उन्मेषों में देखी जा सकती है।

''स्वतंत्रता संघर्ष के परवर्ती कहानी के तीन दौर साफ–साफ लक्षित किये जा सकते हैं सन् 1947–60 तक की कहानी 1960–70 तक की कहानी, और 70 से आज तक की कहानी। स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर नयी कहानी के प्रारंभ होने तक के 7–8 वर्ष हिन्दी कहानी के लिए गत्यविरोध के वर्ष हैं। एक बहुत बड़ी हलचल न रही हो और संघर्ष के इतिहास की इतिश्री हो गई हो।''[20]

सन् 56 में ''नयी कहानी'' के प्रारंभ होने के साथ मोहभंग परिवेशगत दृष्टिकोण के रूप में उभर कर सामने आया मोहभंग की इस प्रवृत्ति और परिवेश – दृष्टि ने जीवन – स्थितियों के यथार्थ के बोध और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को कुछ हद तक निश्चित ही बदल दिया। यह प्रवृत्ति और दृष्टि नयी कहानी को पुरानी कहानी से अलगाती है पुरानी कहानी में जहाँ विचार या धारणा अथवा सिद्धांत – विशेष की अपेक्षा अनुभूत सत्य या भोगे हुए यथार्थ को कहानी में ग्रहण किया और अनुभव की प्रामाणिकता पर बल दिया इससे ''नयी कहानी ''जैनेन्द्र'' और ''अज्ञेय'' की कहानी कला–कला से भिन्न हो गई मनुष्य का अपने परिवेश से एक नया सक्रिय अनुभवात्मक रिश्ता कायम हुआ और इस रिश्ते के भिन्न–भिन्न पहलुओं और रुपों को कहानियों में उजागर किया गया।[21]

नयी कहानी में मूल्यगत विघटन या संक्रमण को पारिवारिक या मानवीय संबंधों के स्तर पर व्यक्त किया गया है संबंधों का सरल, सपाट, प्रत्यक्ष रूप जीवनगत विसंगतियों के सामने बेमाने लगने लगा था।

''सन् 60 तक आते – आते नयी कहानी रूढ़ साँचों में बंधे बंधाये अनुभूति पैटर्नों में ढलने लगी थी। जीवन यथार्थ का एक नया बिल्कुल भिन्न रूप और नयी जीवन स्थितियाँ सामने थीं पर नये कहानीकार उसका सामना करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे थे इस चुनौती का सामना'' ''अकहानी'' और ''सचेतन कहानी'' ने अपने–अपने ढंग से किया।''[22]

समकालीन कहानीकारों में भावात्मक संबंधों के चित्रण–निरूपण की अपेक्षा संबंधों की विसंगति, विडम्बना, जटिलता, तनाव का बोध जगाने का प्रयत्न किया है।

समकालीन कहानी आज के जटिल, गहन और बहुआयामी यथार्थ से जूझ रही है। अनुभव और विचार की टकराहट से जो नई कथा प्रवृत्ति विकसित हुई है उससे आज के यथार्थ को पहचानने में और उससे साक्षात्कार करने की एक नयी दृष्टि मिल सकती है।

निस्सन्देह ''नयी कहानी'' भागते हुए क्षण का अर्थग्रहण कर रही है, वह बदलते हुए जीवन को पकड़ने और उसे व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। नयी कहानी आधुनिक संवेदना की अनुभव – धर्मा कहानी है, जिसे पूर्ववर्ती कहानी वहन करने में सक्षम नहीं है। ''रामस्वरूप चतुर्वेदी'' ''जैनेन्द्र जी'' ने इन काल गर्भित संदर्भों को यद्यपि अस्वीकार किया है।

सन् 1950 के आसपास हिन्दी कहानी के रूप रंग में फिर से परिवर्तन हुआ। उस रूप को अलगाने की, अलग करके देखने की चेष्टा जिन कलाकारों ने की, उनकी कहानियों से ही नयी कहानियों का आन्दोलन आरम्भ होता है। सन् 1960 में आकर यह आन्दोलन स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है। तब से यह आन्दोलन बढ़ता चला जा रहा है। सर्वप्रथम नयी कहानी शिवप्रसाद सिंह की 'दादी माँ' (सन् 1950) मानी जाती है। इस कहानी आन्दोलन के अन्य कलाकारों के नाम है – धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, रेणु, मार्कण्डेय, अमरकान्त, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, कमलेश्वर आदि।

इस प्रकार प्रेमचन्द्र के युग के पश्चात् 'कहानी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् 1938 में अक्टूबर मास से प्रारम्भ हुआ जन आन्दोलन एवं द्वितीय युद्ध के कारण 1942 में यह कहानी पत्रिका बन्द हो गयी और फिर एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् 1954 से इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके प्रकाशन के साथ कहानी में नयापन दिखाई देने लगा। इस समय की कहानी पत्रिकाओं 'हंस' तथा 'कहानी' के माध्यम से नये कहानीकार इस क्षेत्र में अवतरित हुये जिसमें उल्लेखनीय है – अमृतराय, हंस राजरहबर तथा रांगेय राघव।

सन् 1960 के बाद प्रेम चन्द्रोत्तर युग की 'कहानी' नयी कहानी के रूप में परिवर्तित हो गयी। इस अवधि के कहानीकारों में उल्लेख है – राजेन्द्र यादव, फणीश्वर नाथ रेणु, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, मन्नू भण्डारी, कमलेश्वर आदि।

नयी कहानी : प्रवर्त्तन और प्रकृति

कमलेश्वर ने नयी कहानी के नामकरण का श्रेय दुष्यन्त कुमार को दिया है। वैसे उनके विचार में कहानी को नया रूप देने की शुरूआत जितेन्द्र और ओमप्रकाश ने की (नयी

कहानी की भूमिका) राजेन्द्र यादव ने नयी कहानी की बात उठाने का श्रेय दुष्यन्त कुमार के साथ नामवर सिंह को भी दिया है (कहानी : स्वरूप और संवेदना)। इन्द्रनाथ मदान विश्वास के साथ नहीं कह पाते हैं कि इसकी शुरूआत नामवर सिंह द्वारा हुई। भैरव प्रसाद गुप्त यह श्रेय स्वयं ओढ़ लेते हैं। डॉ. बच्चन सिंह शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'दादी माँ' से नयी कहानी का प्रारम्भ मानते हैं। यह कहानी सन् 1950 में छपी थी। सुरेश सिन्हा, राजेन्द्र यादव को नयी कहानी की शुरूआत से जोड़ते हैं, जबकि नामवर सिंह निर्मल वर्मा कृत 'परिन्दे' को नयी कहानी की प्रथम कृति मानकर निर्मल वर्मा को भी प्रकारान्तर से पहले कहानीकारों की पंक्ति में रख देते हैं। डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित के विचार में "निस्संग भाव से देखा जाये तो कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव तीनों इस श्रेय के अधिकारी हैं।"(23)

वास्तव में एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को किसी आन्दोलन का पूरा श्रेय देना या उन्हें आरम्भ बिन्दु के रूप में स्वीकारना संकुचित दृष्टिकोण का परिचायक है। किसी भी सशक्त साहित्यिक आन्दोलन के पीछे समूह की मानसिकता होती है, जो आन्दोलन को बल देती है। हाँ यह अवश्य है कि प्रत्येक आन्दोलन के कुछ विशेष प्रवक्ता और नेता होते हैं। नयी कहानी आन्दोलन में इन भूमिकाओं को राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, शिवप्रसाद सिंह आदि कथाकारों और नामवर सिंह, भैरव प्रसाद गुप्त, श्रीपत राय आदि समीक्षकों–सम्पादकों ने निभाया है।

प्रेमचन्द्र तक आते–आते जहाँ एक ओर हिन्दी कहानी की मुख्यधारा–सामाजिक यथार्थ की ओर अभिमुख कथाधारा–निश्चित हो चुकी थी, वहीं कहानी का ढर्रा बहुत कुछ रूढ़ भी हो चला था। अपने अन्तिम दिनों में प्रेमचन्द्र ने भी अनुभव किया था कि कहानी की एकरसता को तोड़ने की आवश्यकता है। 'कफन', 'पूस की रात' आदि कहानियाँ इसी चेतना की उपज हैं। 'कफन' में बाद की नयी कहानी की प्रायः सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। इस प्रकार नयी कहानी का बीजवपन प्रेमचन्द्र के द्वारा ही होता है, लेकिन जीवन की सच्चाईयों को कहानी के जरिये समझने का सामूहिक प्रयास स्वतन्त्रता परवर्ती परिवेश में ही सम्भव हो सका है, जबकि मिलती–जुलती विचारधारा के समानधर्मी युवा कहानीकार एक साथ इस दिशा में सक्रिय हुये। इस बीच यशपाल, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त आदि ने 'कफन' की शुरूआत को जब–तब सामाजिक प्रतिबद्धता की कहानियाँ लिखकर जिन्दा रखने की कोशिश की। लेकिन उनमें इतना 'प्रकथनात्मक विस्तार' था कि सूक्ष्म सौन्दर्य बोध को उससे सन्तोष

नहीं मिलता था। ''इसके अतिरिक्त जिस जीवन के अन्तरंग चित्र वे प्रस्तुत कर रहे थे, वह बहुत पहले जिया जा चुका जीवन था–चेतना के वर्तमान क्राइसिस के साथ उनका सम्बन्ध नहीं के बराबर था। क्योंकि उनकी रचना दृष्टि इस क्राइसिस के पहले प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी, इसलिये एक गुजरे हुये समय के घात–प्रतिघातों को चित्रित करने तक इनके कृतित्व का सीमित ही रहना अस्वाभाविक नहीं था।'' वर्तमान 'क्राइसिस' को उस पीढ़ी ने जिया और भोगा, जो स्वतन्त्रता मिलने के समय वयस्क हो रही थी। इसलिये उनके लेखन में ताजगी थी। उनकी कहानियों का 'कथ्य' नया था। यदि उसे 'नयी कहानी' कहा गया तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि छठे दशक की कहानी पूर्ववर्ती कहानी से मिजाज और लिबास की दृष्टि से एक नयापन लिये हुये है।

नयी कहानी को कई तरह से समझाया गया है। कभी उसे 'प्रक्रिया' तो कभी 'पहचान' के रूप में आंका गया है। डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में ''नयी कहानी सामयिक सीमाओं के अन्तर्गत अपने यथार्थ, युग, समय, परिवेश और व्यक्ति को देखने परखने और मूल्यांकित करने की प्रक्रिया है, जो यथार्थ को उचित, सन्दर्भों में सप्राणता के साथ अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न करती है।'' डॉ. रामदरश मिश्र ने 'नयी कहानी' की चेतना को परिवेश से जुड़े हुये व्यक्तिमन की चेतना के रूप में देखा है। उन्हीं के शब्दों में ''......... वह न तो बाहरी यथार्थ की अनुभूतिहीन फारमूलाबद्ध कथा कहती है और न बाहरी परिवेश से विच्छिन्न होकर या बाहरी परिवेश को केवल अवचेतन की दुनिया से संदर्भित कर मात्र व्यक्ति मन का चित्रण करती है। वह जीवन परिवेश के दबाव में बनते–बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है।'' वकील रघुवीर सिन्हा का मानना है कि 'ये वे कहानियाँ थीं, जो अपने 'कथ्य' में न केवल नया विषय, चरित्र के नये पैमाने, एक नया अन्दाज लेकर आईं अपितु अपनी भाषा और 'ट्रीटमेंट' में भी एक दम नयी लगीं।'' लेकिन डॉ. गोरधन सिंह शेखावत जैसे समीक्षक नयी कहानी को पुरानी कहानी का ही विकसित रूप मानते हैं : ''सन् 50 के पश्चात् कहानी की वस्तु एवं शिल्प में जो परिवर्तन आया उसी के लिये 'नयी' शब्द की संज्ञा दी गई है। 'नयी कहानी' की कोई अलग विधा न होकर पुरानी कहानी का ही विकसित रूप है।''

नयी कहानी की व्याख्या या चर्चा करते समय कुछ आलोचक ऐसा दिखाते हैं कि नयी कहानी पुरानी कहानी से एकदम अलहदा और अप्रत्याशित चीज है। ऐसे लोग बेहद चालाकी से न केवल अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल को खारिज करते हैं, अपितु प्रेमचन्द्र

को भी अप्रासंगिक करार देते हैं। वस्तुतः नयी कहानी का एक बड़ा हिस्सा, उस हिन्दी कहानी का विकास है, जिसकी नींव को पुख्ता करने और उसे जीवन के बुंनियादी प्रश्नों से जोड़ने का श्रेय प्रेमचन्द्र को है। प्रेमचन्द्र की परम्परा को आगे बढ़ाती हुई जो कहानियाँ 50 से लेकर 60–62 की अवधि में लिखी गयीं उन्हें 'नयी कहानी' कहा गया है। राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, मन्नू भण्डारी, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई आदि के द्वारा बहुत सी अच्छी कहानियाँ इस अवधि में लिखी गयीं और चर्चित हुईं। 62 के बाद राष्ट्रीय स्तर पर मोहभंग और भ्रमभंग का एक लम्बा दौर चला, 'नयी कहानी' जिसे समझने या आंकने में अधिक सफल नहीं रही। इसके अलावा व्यावसायिकता और नेतागिरी की प्रवृत्ति ने भी 'नयी कहानी' की शक्ति को कम किया। अतः आन्दोलन के रूप में 'नयी कहानी' मुख्यतः छठें दशक की रचनात्मक उपलब्धि है। यही वह समय है जब कहानी को 'केन्द्रीय विधा' के रूप में प्रतिष्ठित होने का अवसर और गौरव प्राप्त होता है।

नयी कहानी के नयेपन को व्यक्त करने वाली विशेषतायें इस प्रकार है :–

(1) अनुभव की प्रामाणिकता

(2) समकालीन जीवन की व्यापक पहचान

(3) मध्यवर्गीय मूल्यबोध

(4) यातनामय प्रतीक्षा और आशावाद के स्वर

(5) स्थापित नैतिक बोध को चुनौती

(6) आधुनिकता बोध की विशिष्ट भंगिमा

(7) सांकेतिकता

(8) भाषा की सचेत, सर्वजनात्मक और वैविध्यपूर्ण, बनावट

(9) नवीन और सामर्थ्यपूर्ण अभिव्यंजना

नयी कहानी : दशा और दिशा

प्रत्येक युग की अपनी दृष्टि और सृष्टि होती है। बदलते संदर्भों में जिस दृष्टि का विकास होता है, उससे प्रेरित होकर ही साहित्य–सृष्टि के नये आयाम प्रस्तुत होते हैं। कोई

भी साहित्य युग–निरपेक्ष नहीं रह पाता है। उसके मूल में इतिहास और जीवन, परिवेश और वातावरण तथा परम्परा व प्रगति की नयी भंगिमायें सदैव क्रियाशील रहतीं हैं। सृजन यदि अपने समकालीन परिवेश से आँखें चुरा लेता है तो वह न तो जीवन्त व यथार्थ बन पाता है और न उसका प्रभाव स्थाई होकर किन्हीं मूल्यों को उत्प्रेरित ही करता है। अपने चारों ओर फैले परिवेश के दबाव को प्रत्येक नये संवेदनशील रचनाकार ने सहा है, भोगा है कभी चाहे–कभी अनचाहे। वह विक्षुब्ध हो उठा है उसका मन प्रतिक्रियात्मक हो गया है। समकालीन रचनाकार मानव मूल्य; नैतिकता, अनैतिकता, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के बीच, भूख, नवीन परिस्थिति में यौन सम्बन्ध आदि प्रश्नों के विविध पक्षों के समाधान ढूंढ़ना चाहता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित व्यक्तिगत स्वार्थ, अवसरवादिता, अनिश्चितता, अलसता, ग्लानि, असमंजस और रिक्तता बोध से घिरकर साहित्य की मनः शक्तियाँ काँप उठी हैं। उसकी चेतना भूमि में जो भी अंकुर पड़ता है, वह विकृत है, खण्डित है। उसकी संवेदना से सिक्त होकर जो चित्र उभर रहे हैं वे भी भयावह, दंशक बाधाओं को कंपा देने वाले, भूख, भोग, अनैतिकता और टूटते बिखरतें सायों के ही प्रतिबिम्ब हैं।

वर्तमान में कहानी अपनी कहानीनुमा तस्वीर को लेकर नये विशेषण के साथ अवतरित हुई है। स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखी जाने वाली कहानियों की नवीनता रूप शिल्प और मानवीयता दोनों की है। पत्र–पत्रिकाओं में नई पीढ़ी के कहानीकारों और तरुण आलोचकों ने वर्तमान कहानी को लेकर पर्याप्त विवाद उत्पन्न किये हैं। फलस्वरूप 'कहानी' नयी कहानी की संज्ञा से अभिषिक्त होकर गद्य साहित्य की विधाओं में अग्रिम मोर्चे पर खड़ी है। आजादी ने जो नयी चेतना प्रदान की है, उसमें आस्था व आशा का स्वर प्रमुख रहा है। जैसे–जैसे सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य बदला है वैसे–वैसे ही उसमें साँस लेने वाला व्यक्ति भी बदल गया है। आजादी के पहले जो प्रश्न–उप प्रश्न और समस्यायें थीं, वे आजादी के बाद एक नये रूप में सामने आई हैं। कारण मानव के अनुभवों की श्रृंखला में बेहिसाब नये अनुभव आकर जुड़ गये। उसकी समस्याओं की परिधि न केवल चौड़ी हुई है, वरन उसकी बाहरी सीमा कँटीले तारों से घिरी हुई है। ऐसी स्थिति में कहानी का नया हो जाना परिवेश की मांग है। नयी कहानी से तात्पर्य उस कहानी से है जो सन् 1950 ई. के आस–पास से नये युग–बोध के रंग में रंगी यथार्थ की रेखाओं से लिखी गयी है। "नयी कहानी की शुरूआत किसी एक व्यक्ति से नहीं हुई है। उसकी एक पीढ़ी है और उसी पीढ़ी की प्रगतिशील दृष्टि

भी है। इस दृष्टि के वाहकों में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, अमरकांत, निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी और मार्कण्डेय आदि का नाम शीर्ष पर स्थित है। इस पीढ़ी के कहानीकारों ने जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं और त्रासदियों से सीधा साक्षात्कार करके अपनी प्रामाणिक अनुभूतियों को प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि ये सभी नये कहानीकार परिवेश से प्रतिबद्ध हैं। इसका मानस सजग है, आँखे खुली हैं एवं प्रज्ञा और संवेदना के स्तर सजग हैं। तभी तो ये मानवीय स्थितियों और सम्बन्धों को यथार्थ की कलम से उकेर सके हैं।''[24]

उपेन्द्रनाथ अश्क की दृष्टि में ''ये ऐसे कहानीकार हैं जो पुरानों के नये तक पहुँचाने में समर्थ हैं।''[25] दूधनाथ सिंह की दृष्टि में इनमें 'राकेश' का नाम सर्वाधिक उपयुक्त है ''क्योंकि 'उसकी रोटी' की पुरातनता से 'मिसपाल' और 'परमात्मा का कुत्ता' की आधुनिक तथा हास्यास्पदता और व्यंग्य का चित्रण राकेश को एक मौलिक और 'जेनुइन' लेखक के रूप में प्रस्तुत करता है।''[26] इन कहानीकारों ने जीवन की सच्चाई को आन्तरिक जटिलता और संश्लिष्टता के साथ उभारा है। गाँव और नगर दोनों के यथार्थ–जीवन को रूपायित करने तथा खोखले एवं थोथे आदर्शों को छोड़कर नये जीवन–मूल्यों की प्रस्थापना का संकल्प व ललक इन कहानीकारों में मिलती है। परिवेश की जटिलता के बिम्ब, यथार्थ के सन्दर्भ, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों के प्रति लेखकीय सतर्कता, बौद्धिकता, रचना–तंत्र की नयी बुनावट और प्रतीकान्वेषी वृत्ति व बिम्बोद्भावक क्षमता नयी कहानी के प्रत्यक्ष गुण हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण नई कहानी अनुभव का प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है। वह यथार्थ अनुभव जनित संवेदना की नयी राह पर चल रही है।

नयी कहानी विशेष सन्दर्भों की कहानी है। इसमें परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता और जागरूकता तो मिलती ही है, यथार्थ ग्रहण के प्रति जीवन दृष्टि भी मिलती है। वह नयी इसलिये है कि आज का नया कहानीकार यथार्थ को रूबरू देखने की दिशा में सक्रिय है। उसमें हर पारम्परिक दृष्टि को छोड़ने का आग्रह है–दुराग्रह नहीं। वस्तुतः नये कथ्य की समृद्धि को अनुभव करते हुये तत्कालीन परम्परा के प्रति यह असंतोष और वितृष्णा ही लेखक को नया बनाते हैं, मात्र समवयस्क या समकालीन होना ही काफी नहीं है। नयी कहानी में जो कथ्य और शिल्प की नवीनता है वह स्वातंत्र्योत्तर भारत की गतिविधियों का परिणाम है। राजेन्द्र यादव के अनुसार – ''वस्तुतः स्वतंत्रता के पश्चात के कथाकार का एक संसार वह है जो उसके आस–पास फैला हुआ है, जिससे उसे घृणा है, लेकिन उसकी मजबूरी यह है

कि वह उसमें रहने, टूटने और घुटने व समझौता करने के अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं देख पाता है। दूंसरी दुनियाँ वह है जिसे उसने अपने भीतर से निकाल कर बाहर फेंक दिया है। इसका निर्माण उसने खुद किया है। कथाकार अपने टूटने, घुटने और घिसटने की तस्वीर पूर्ण असामर्थ्य, पराजय और हताशा के साथ व्यक्त करता है। यही उसकी नियति है। उसे खुद नहीं मालूम कि जिस कुरूप, घिनौनी और चिपचिपी सृष्टि का जिम्मेदार उसे ठहराया जाता है, उसमें उसकी जिम्मेदारी कितनी है ? जिस रंग–बिरंगे, लकदक सलमे–सितारे मढ़े संसार को उस पर लाद दिया गया है, उसकी कुरूप सिसकती आत्मा को खींचकर बाहर निकाल देना अपराध है या अपनी आंतरिक कुरूपता की कीचड़ को कला के माध्यम से औरों तक फैलाना। कलाकार का अपराध कहाँ है–कला धर्म का निर्वाह या न निर्वाह कर सकने की मजबूरी में।''[27]

नयी कहानी कल्पना लोक से उतरकर समाज के धरातल पर प्रतिष्ठित हुई है उसमें यथार्थ का स्तर न केवल साफ है, अपितु तीखा और तिलमिला देने वाला भी है। मेरी दृष्टि में नयी कहानी वह है जो आजकल लिखी जा रही है और जिसमें आज की अनुभूति व आज के युग का ज्वलंत बोध है। नयी कहानी पुरानी कहानी से भिन्न है। इस भिन्नता को कमलेश्वर ने इन शब्दों में प्रकट किया है : ''पुरानी कहानी में व्यक्ति शारीरिक रूप से आता था और वैचारिक रूप से कथाकार के रूप में। नयी कहानी में यह विचार उसी शरीर में अवस्थित बुद्धि से उपजता है जिसे प्रस्तुत किया जाता है। तब विचारों को हाड़–मांस प्रदान किया जाता था, अब हाड़–मांस के इंसान के विचारों को प्रस्तुत किया जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर आदि ने कहानी का यही रूप स्वीकार किया है। नयी कहानी का नया बोध मूलतः नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित है। नयी कहानी मानवीय मूल्यों से संरक्षण और जीवनी शक्ति के परिप्रेषण की दिशा में यत्नशील है।''[28] स्पष्ट है कि वह तो ध्वंसोन्मुखी आदर्शों की पुर्नस्थापन हेतु बदलते मूल्यों और टूटती मर्यादाओं के प्रति प्रबुद्ध और भावाकुल दिख रही है। फर्क है तो केवल यही कि वह पारंपरिक आदर्शों व प्रतिमानों के अवमूल्यन या ध्वंस पर झोंका कुल नहीं है। वह तो स्थिति, परिवेश और आस–पास बिखरे जीवन से प्रेरित हो नये प्रतिमानों के प्रस्तुतीकरण के निमित्त व्यग्र व इच्छुक है। नयी कहानी ने स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की साहसपूर्ण वास्तविकता, परिवेश और हाड़–मांस का सत्य अंकित किया है। जीवन का घिनौनापन उसका प्रतिपाद्य नहीं है। यही

कारण है कि 'नयी कहानी' सेक्स की अपेक्षा 'सेक्स साइकोलॉजी' को प्रस्तुत कर रही है। उसमें अश्लीलता की अपेक्षा बौद्धिक निर्लिप्तता अधिक है।

कमलेश्वर जी नयी कहानी को रेखांकित करते हुये लिखते हैं कि "आज की कहानी घटनाओं का संपुंजन या कथानक का मनोवैज्ञानिक विकास भर नहीं है, उसकी यात्रा घटनाओं या संयोगों से न होकर प्रसंगों की आंतरिक प्रतिक्रियाओं के बीच होती है और संवेदना के सूक्ष्म तन्तुओं पर धीरे–धीरे आघात करती हुई वह एक सम्पूर्ण अनुभव से गुजर जाती है, इसलिये वह कथा यात्रा नहीं, पाठक के उस अनुभव से स्वयं की यात्रा हो जाती है।"[29] दूसरी ओर अश्क जी की धारणा है कि "नयी कहानी में सबसे महत्व की चीज वस्तु और देखने वाली दृष्टि है। इसके बाद शिल्प का स्थान आता है।"[30] इसी संदर्भ में मोहन राकेश का कथन है कि – "कहानी कविता या चित्रकला के गुण से कहानी नहीं बनती, अपने गुण से कहानी बनती है – सजीव और सशक्त भाषा में यथार्थ के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हुये उनके माध्यम ने एक संकेत देकर।"[31] राजेन्द्र यादव ने नयी कहानी के संदर्भ में प्रामाणिकता की बात कही है। वे प्रामाणिकता की खोज उसका सम्पूर्ण स्वीकार और अप्रामाणिकता के अस्वीकार को ही नयी कहानी का धरातल मानते हैं। इस प्रामाणिकता में दोनों गुण हैं – 'अथेंटिसिटी और बैलेडिटी'। तात्पर्य यह है कि वह तो यथार्थ का सत्य–परक चुनाव ही है। प्रत्येक यथार्थ कहानी का कथ्य नहीं बन सकता है जो – 'वैलिड' है वही नयी कहानी का यथार्थ है। इसी से स्पष्ट है कि नयी कहानी संदेश नहीं अनुभव का खरापन अपने पाठकों को सौंपती है।

नयी कहानी के सम्बन्ध में जिन विशिष्ट कहानीकारों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। उनमें मार्कण्डेय प्रमुख हैं आपके अनुसार – "नयी कहानी से हमारा मतलब उन कहानियों से है जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण है, जो जीवन के लिये उपयोगी है और महत्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित है या जीवन के तत्वों को एकदम नई दृष्टि में दिखाने में समर्थ है .... नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भू–भाग के अजीब प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें है कि साधारण मानव में वह कौन सा विशेष नयापन है जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन सा ऐसा पहलू है जो साहित्य में एकदम अछूता है।"[32]

मार्कण्डेय के महत्वपूर्ण कथन से स्पष्ट है कि वे नयी कहानी उसे मानते हैं जिसमें नया भावबोध हो और जीवन के नये संदर्भों का उद्घाटन हो।

नयी कहानी में निरूपित नये भावबोध को स्वीकार करके डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं कि ''अभी तक जो कहानी सिर्फ कथा कहती थी या कोई चरित्र पेश करती थी या एक विचार का झटका देती थी वही 'निर्मल' के हाथों में जीवन के प्रति एक नया भावबोध जगाती है .... दुर्लभ अनुभूति चित्र प्रदान करती है।''[33] वास्तविकता यह है कि नयी कहानी किसी बिन्दु पर केन्द्रित प्रभाव की कहानी नहीं है, अपितु जीवन के एक संश्लिष्ट खण्ड में व्याप्त संवेदना की कहानी है। आज भी कहानी में प्रभावान्विति का महत्व उतना नहीं जितना अनुभूति जनित प्रभाव की गहराई और घनता का है। कहने का तात्पर्य यह है कि नये कहानीकार में अपने आस–पास के परिवेश की स्वीकृति है और वह पूर्वाग्रह रहित है। उसकी कहानी का विषय उसका भोगा हुआ यथार्थ है साथ ही इस भोगे हुये यथा की अनुभूति की घनता और परिवेशव्यापी अनुभवों, घटनाओं, सन्दर्भों की प्रामाणिक किन्तु यथार्थ प्रस्तुति और वह भी परिचित शिल्प में, नयी कहानी का महत्वपूर्ण आयाम है।

आज की कहानी का सूत्रपात कब हुआ, यह शोध का विषय है। कुछ लोग उसे निर्मल वर्मा (1992) की 'परिन्दे' कहानी से स्वीकार करते हैं और कुछ लोग सन् 1950 ई. के आस–पास डॉ. शिवप्रसाद सिंह की 'दादी माँ' से। यह अनुचित तर्क हैं। वर्तमान कहानी अपनी पिछली परंपरा का युगानुकूल स्वाभाविक विकास है। कहानी के सम्बन्ध में नयेपन का प्रश्न डॉ. नामवर सिंह ने 'कहानी' के वार्षिक विशेषांक में और दुष्यंत कुमार ने 'कल्पना' में 1954–55 ई. में उठाया था, किन्तु 'नया' शब्द दलबंदी और घुटन या दुःस्वप्न मात्र बनकर रह गया। 'नयी कहानी' के नामकरण को लेकर भी अनेक विवादों ने जन्म लिया और समाप्त होते चले गये। कुछ लोगों ने इसे 'कहानी', 'एन्टीस्टोरी', सचेतन कहानी और 'आज की कहानी' भी कहा, किन्तु ये नाम आधारहीन हैं। आजकल समानांतर कहानी की विशेष चर्चा है। वास्तव में नयी कहानी विषय और शिल्प की नवीनता के साथ–साथ अनुभव के खरेपन को व्यक्त करती है। ऐसी स्थिति में उसे 'नयी कहानी' का अभिधा से मंडित करना सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में मोहन राकेश की बात अधिक सत्य प्रतीत होती है – '' 'नयी कहानी' नाम तो मात्र एक अनुबंध है, प्रश्न वास्तव में दो अलग–अलग दृष्टियों का है। नयी कहानी के साथ शब्द 'नयी' का प्रयोग केवल विभाजन की सुविधा के लिये है – एक

सीमांत के बाद कहानी के विकास की अलग दिशा का संकेत देने के लिये है। मैं नहीं समझता कि आज के किसी कहानीकार को इस बात का मोह होगा कि उसकी कहानी भविष्य में 'कहानी' के रूप में न मानी जाये, नयी कहानी के रूप में जानी जाये। हाँ, उसका यह चाहना और इस बात का दावा करना कि उसके आज के प्रयोग पहले के प्रयोगों से भिन्न हैं, उसका दुराग्रह नहीं है।''(34)

वास्तविकता यह है कि नयी कहानी और पुरानी कहानी के मध्य दो संस्कारों की टक्कर है और यह टकराहट प्रमाणित करती है कि हिन्दी की आज की कहानी न केवल पहले की कहानी से अपनी दृष्टि और 'एप्रोच' में भिन्न है, अपितु उसका अपना एक निजी धरातल भी है। वस्तु, शिल्प और भावभूमि – सभी दृष्टियों से नयी कहानी अपनी एक पहचान बना चुकी है। उसकी अपनी उपलब्धियाँ हैं। कमलेश्वर की दृष्टि में नयी कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने जैनेन्द्र और अज्ञेय की नितांत व्यक्तिवादी, अहंवादी और रूग्ण मानसिकता से हिन्दी कहानी को मुक्त किया है। मोहन राकेश के अनुसार – ''रचना–दृष्टि और जीवन–दर्शन अलग–अलग बातें हैं जहाँ तक नयी कहानी के जीवन–दर्शन का प्रश्न है, वह अपनी मुख्यधारा में यथार्थपरक समाजवादी विचारधारा से सम्बद्ध रही हैं, पर अपनी रचना दृष्टि में उसने स्वार्थ के आंतरिक घात–प्रतिघातों में से ही अपने संकेत ग्रहण किये हैं।''(35)

अद्यतन दृष्टि से अवलोकन करें तो नयी कहानी जिस स्थिति में है, उसमें उसका स्वरूप काफी हद तक बदल चुका है क्योंकि आज का रचनाकार पूर्वाग्रहों और पारम्परिक स्वीकारों से मुक्ति चाहता है एक उदाहरण द्वारा इसे समझा जा सकता है – 'पुराने कुएं का पानी मीठा और स्वास्थ्य के लिये उपयोगी तो हो सकता है, किन्तु वह हर युग में नयी उभरती पीढ़ी को भी वैसा ही उपयोगी लगे यह आवश्यक नहीं है। सरोवर का जल निर्मल कितना ही हो, कंकड़ी फेंकने पर उसमें अनगिनत लहरें भले ही उत्पन्न हों, उसकी कोई भी बूँद वैसा स्फुरण और संवेदन नहीं जगा सकती है जैसा कि झरने से छूटते पानी के किंचित स्पर्श से ही जग जाता है। इसके कारण और कितने भी हों, किन्तु एक अहम कारण है कि प्रत्येक युग की दृष्टि अपने अनुकूल सृष्टि रचती है। उसे अपनी सर्जना से अधिक आत्म सन्तुष्टि मिलती है। फिर आज जबकि साहित्यकार की चेतना शतगुणित होती हुई परिवेश के समूचे फैलाव को अपने भीतर समाहित करती जा रही हो तो ऐसे में स्पष्ट है कि समकालीन परिवेश की बाहों का सहारा लिये बिना एक कदम भी चल पाना असंभव नहीं तो कठिन और बेमतलब

अवश्य लगता है। यही कारण है कि आज का सर्जक परिवेश बोध की संवेदना को आत्मसात करके जी रहा है। वह अपने अन्तस और ब्राह्म की असंगतियों, कटुताओं और अन्तर्विरोध जनित रिक्तताओं को झेल रहा है। जीने और झेलते जाने के इस क्रम में उसे आदर्श का मृदु जल भी बेस्वाद अनुपयोगी और व्यर्थ प्रतीत होने लगा है। फलतः वह नये सिरे से व्यक्ति–व्यक्ति के सम्बन्धों और व्यक्ति व समाज के सम्बन्धों का न केवल पुनरुवेषण कर रहा है, अपितु उन्हें एक नये अर्थ से भी जोड़ रहा है। यद्यपि ऐसा करते जाने में अनेक बाधायें और खतरें हैं, किन्तु वह नये मानवीय क्षितिजों की खोज के लिये खतरे उठाने को तैयार है। खतरों और बाधाओं के बीच चलते–चलाते वह भटक भी रहा है और कभी–कभी अटक अटक कर स्वयं को ही प्रश्निल दृष्टि से तौल भी रहा है। उसने अपने भीतर की अनमापी गहराइयों के बीच से जो स्वर ग्रहण किया है, वह एकदम निरर्थक नहीं है। उसकी सार्थकता यह है कि उसमें निरर्थकता भी एक मूल्य बन गयी है। अर्थहीनता में सार्थकता की खोज, व्यक्ति–व्यक्ति के सम्बन्धों का नया संदर्भ और सामाजिक विषमताओं व विद्रूपताओं के बीच भी जीने की शक्ति प्रेरित कामना ही आज के कथा साहित्य में निरुपित हो रही है। यह निरुपण इस तथ्य का प्रत्यक्ष गवाह है कि आज की कहानी कहानीकार की कहानी से बहुत बदल गई है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कहानी की वस्तु और दृष्टि भंगिमा में स्पष्टतः लक्षित की जा सकती है। कहानी के बीच व्यक्ति की शक्ति और सामाजिक कटुताओं का यह प्रक्षेपण साक्षी है कि आज कहानी सैद्धान्तिक व बौद्धिक आवरण को चीरकर धरती के आग, पानी को ही अपना धन समझ रही है। इसी में इसमें चित्रित व्यक्ति प्रेमचन्द्र के पात्रों की घुलनशील वृत्ति की केंचुल उतारकर विषमताओं, स्थापित व्यवस्था और समस्त अत्याचार ग्रस्त परिवेश के विरूद्ध अपने विश्वास का ध्वजारोहण कर रहा है क्योंकि "आज का नया कहानीकार एक ऐसे संधिस्थल पर खड़ा हुआ है, जहाँ उसके लिये पुराना टूट रहा है, नया बन रहा है, उभर रहा है। नया बनने की आकुलता में वह स्वयं भी अपनी बाहें फैलायें विराट एवं व्यापक मानवीय चेतना को आत्मसात करने की प्रयत्नशीलता में आतुर है। स्थिति यह नाजुक है। इससे पीछे जाना, या स्थिति को नकारना उसकी सारी सृजनशीलता का नाश कर सकती है, इसलिये नये कहानीकार ने चयन शक्ति की सक्षमता के सम्बन्ध में अधिक सर्तकता अपनायी है और बड़ी सावधानी से उसने सामाजिक यथार्थ की नब्ज पहचान कर उसे नये शिल्प एवं स्वविधान में प्रस्तुत किया है।"[36]

स्पष्ट है कि नयी कहानी ने पूर्वाग्रहों से मुक्ति प्राप्त कर ली है। वह इन्द्रधनुषी रंगों और कल्पना के सतरंगे आग्रहों से मुक्त होकर यथार्थ की ऊबड़–खाबड़, किन्तु ठोस धरातल पर आ गई है। उसने पुराने व अव्यावहारिक मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है तथा असमय वृद्ध सांस्कृतिक मूल्यों का था तो नवीनीकरण किया है या उन्हें नये मूल्यों के प्रकाश के समक्ष मृत घोषित कर दिया है। आज हम जिस युग में जी रहे हैं, वह वास्तविकताओं की पहचान का युग है। कहानीकार में यह पहचान कविता की अपेक्षा अधिक तेजी से घटित हो रही है, यही कारण है कि कहानी लिखने की प्रेरणायें भी असीमित हो गई हैं। हमारे चारों ओर बिखरे हुये जीवन का हर पल, हर सन्दर्भ और हर स्थिति कतिपय प्रभावों से आन्दोलित हो रही है। सजग कहानीकार के पास इस सबको पहचानने की सहज क्षमता है, गहरी अनुभूति है और अनुभव के उस यथार्थ को व्यक्त करने के लिये सशक्त शिल्प है। ''ऐसी स्थिति में जीवन का हर पल, डर संदर्भ और अपने आस–पास का सब कुछ कहानी बनता जा रहा है। परिणामतः हम जहाँ पर दो पल विराम कर सांस लेते हैं वहाँ एक आदमी कसमसाने लगता है। जिस राह से गुजरते हैं वहाँ पैरों के बने निशान एक करुण गाथा छोड़ देते हैं। धरती के गर्भ में छिपा बीज जब अंकुरित होकर हवा में लहराता है, तो उसका एक इतिहास लिख जाता है जिसे कहानी बनते देर नहीं लगती। इतना ही क्यों वर्तमान परिस्थितियों में अनेक संकटों को झेलते मानव के चेहरे के भाव–अभाव, तनाव और सलवटों, सभी में एक–एक कहानी लिखी दिखाई देती है।''[37] आज का सचेतन कहानीकार जब लगातार रौंदी जाने वाली सड़क के दिल की धड़कन भी सुन लेता है तो फिर मेहनत मजदूरी करने वाले आदमी के पसीने की बूँदों में, बीमारी और दर्द से पीड़ित मरीज की कराह में, अनेक संगतियों के बीच द्वन्द्व और तनाव झेलते स्त्री–पुरुषों में, निरन्तर टूटते मानवीय रिश्तों, किसी घायल, गरीब और बेसहारा की विवशता में और किसी प्रेम के मारे असफल और पूरी तरह टूट चुके आदमी में छिपी कहानी क्यों बाहर नहीं आ सकती ? आज की कहानी यही है उसकी संवेदना यही है और उसका परिवेश भी ऐसी ही अनेक स्थितियों से सम्बद्ध है।

यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी अश्क और प्रेमचन्द्र ऐसे ही विशिष्ट भावबोध वाले कहानीकार हैं। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने मानवीय आंतरिकता को मनोविश्लेषणात्मक कहानियों के सहारे अभिव्यक्त किया है। 'यशपाल' की कहानियों में सामाजिक वर्ग–वैषम्य की भावना और पात्रों की मनोग्रंथियों का विश्लेषण करके मध्य–कालीन बोध को तोड़ने का

प्रयत्न दिखाई देता है। अश्क में सामाजिक भावना और वैयक्तिक जीवन–प्रसंगों के आपसी संयोग से एक समीकरणात्मक मानवीय चेतना की अभिव्यंजना दिखाई देती है। सामाजिक बोध की भूमिका पर विकसित चेतना का स्फुरण और अभिव्यंजन अश्क, अमृतलाल नागर, चन्द्र किरण सौनरिक्सा, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी और धर्मवीर भारती की कहानियों में उपलब्ध होता है। परिस्थितियों की जटिलता और विषमता ने जीवन बोध और उसके स्तर को भी बदल दिया है। इतना ही नहीं मानवीय सम्बन्ध, रिश्ते–नाते और पारिवारिक एवं वैयक्तिक सन्दर्भों ने नई स्थितियाँ पैदा कर दी हैं। फलतः जीवन–निर्वाह का प्रश्न जटिल हो जाता है। उसके लिये न केवल पति वरन पत्नी भी नौकरी के क्षेत्र में उतर रही है। कहीं कहीं यह भी हुआ कि पति, पत्नी की कमाई पर पल रहा है। इसके साथ ही कहीं सामाजिक दायित्व के निर्वाह अथवा दबाव के कारण लड़कियाँ नौकरी कर रही हैं। उनकी इच्छाओं का रंग महल परिस्थितियों के दबाव के कारण खण्डहर होता जा रहा है। कभी वे अविवाहित होकर विवाहित का, कभी विवाहित होकर अविवाहित का और कभी प्रेम के नाम पर कलंकिनी बनाकर ठुकराई हुई अपेक्षिताओं का जीवन बिता रही हैं। इतनी पीड़ा को सहने पर भी उन्होंने अपने अस्तित्व को बनाये रखा है। अनेक रोजगार दफ्तर खुलने के बाद भी नयी पीढ़ी का अधिकांश जीवन निरर्थक और बेरोजगार हो गया है–परिणाम सामने हैं, काफी हाउसों, टी स्टालों और सिनेमाघरों पर भीड़ इकट्ठी होती जा रही है। भीड़ बढ़ रही है, उसका दबाव बढ़ रहा है और व्यक्ति अकेलेपन का बोझ लिये जीवन की रही–सही साँसों को जैसे–तैसे गिन रहा है। सामाजिक और पारिवारिक दायित्वबोध बढ़ने के कारण व्यक्ति की विवशताएँ बढ़ रही हैं। तब भी व्यक्ति के जीवन की गाड़ी चलती रहती है। शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं – "मनुष्य और उसकी जिन्दगी के प्रति मुझे मोह है। जो अपने अस्तित्व को उबारने के लिये विविध क्षेत्रों में विरोधी शक्तियों से जूझ रहा है। अंधविश्वास, उपेक्षा, विवशता, प्रताड़ना, अतृप्ति, शोषण, राजनीतिक, भ्रष्टाचार और क्षुद्र स्वार्थान्धता के नीचे पिसता हुआ भी जो अपने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हक के लिये लड़ता है, हँसता है, रोता है, बार–बार गिर कर भी जो अपने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ता है, वह मनुष्य तमाम शारीरिक कमजोरियों और मानसिक दुर्बलताओं के बावजूद महान है।"[38]

शहरीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया तेजी से घटित हुई है और अभी भी हो रही है। कस्बाती जीवन जीने का आदी बुद्धिवादी व्यक्ति रोजगार पाकर भी महानगरीय

जीवन की चकाचौंध और तड़क–भड़क में खोता जा रहा है। एक ओर यह नगरीय जीवन है और दूसरी ओर वह अतीत है जिसकी स्मृतियाँ उसके जगत (मन) में कौंधती हुई उसे इन्सानी रिश्तें से जोड़ती हैं। इस पीड़ामय द्वन्द्व में वह भटक गया है। व्यक्ति का निजीपन अनजाने महानगरों की भीड़ में आकर छूट गया है उसे केवल ऊब, उदासी और अपरिचय के बीच रहना पड़ रहा है। विवशता की प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हो रही है। जो व्यक्ति कस्बाती जीवन को छोड़कर यहाँ आया है वह केवल व्यक्ति नहीं है, वह किसी का पिता, किसी का पति और किसी असहाय वृद्धा का बेटा है। ऐसी स्थिति में उसे अपने पीछे छोड़ आये परिवार के लिये रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था भी करनी है। व्यवस्था जुटाने की आशा लेकर आया हुआ यह व्यक्ति महानगरीय जीवन में आकर स्वयं अव्यवस्थित होता जा रहा है। यह वह व्यक्ति है जो अपने किशोरकाल में भावी जीवन के सपनों का संसार संजोये हुये था। उसकी कल्पना थी कि शिक्षा समाप्त करके वह जीवन को नई दिशा देगा। उसे अच्छी नौकरी मिलेगी, अच्छा जीवन स्तर होगा, किन्तु इस 'किन्तु' ने ही तो उसे प्रश्नों और समस्याओं के जंगल में भटका दिया है। यह तो था उसकी कल्पना का जीवन और जब उसे इसमें उतरने का अवसर मिला तो सारी स्थितियाँ उलट गईं, कल्पनायें यथार्थ के ताप से तपकर न केवल झुलस गईं अपितु उनकी स्थिति एक प्रश्न बन गई। स्थिति यह हुई कि उसका विवाह तो हुआ, किन्तु नौकरी न मिली और हर साल बाद वह अपने 'फ्रस्ट्रेशन' को एक–एक बच्चे के रूप में जन्म देता रहा। स्वच्छ महान की कल्पना सीलन और बदबूदार 'अँधेरे बन्द कमरों' में बदल गई। उसकी पत्नी का सौंदर्य झुर्रियों में बदल गया और बच्चे सही परिवेश और पोषण न पा सकने के कारण न केवल दुर्बल हो गये वरन् चिड़चिड़े भी हो गये। नौकरी मिली तो है, किन्तु सारे दिन दफ्तरी जीवन में सिर खपाते रहने के बाद जब वह घर लौटता है तो उसका दम घुटता है; बच्चों की मांगों और चीख पुकार से कान के पर्दे फटते दिखाई देते हैं। पुरुष–पत्नी की खीज से भीतर ही भीतर घुलता जा रहा है। नतीजा यह कि वह वापस अपने अतीत में लौट जाना चाहता है। वह व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहता है कि सारे जीवन–तंत्र को नया रूप देना चाहता है, किन्तु हो कुछ नहीं पाता वह विवश भाव से इन सभी स्थितियों को स्वीकार कर लेता है। यह टूटन, यही विवशता और ऊब व निराशा नयी कहानी में प्रतिरूपित हो रही है।

एक दूसरी स्थिति शिक्षित दम्पत्ति भोग रहे हैं। दोनों का समान शिक्षित होना, नौकरी करना और कुछ व्यक्तिगत कारणों से इच्छाओं के विपरीत तनाव में जीते चले जाना, एक दूसरे को अपने अनुपयुक्त समझकर नये ढंग से जीने का प्रयत्न आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें कुछ घर टूटते हैं तो कुछ नये बनते दिखाई देते हैं। बच्चे पिता से छूट जाते हैं और पति–पत्नी एक दूसरे से। स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की यह स्थिति इतनी दारुण और यातनामयी हो जाती है कि दोनों अलग अलग रहकर भी जी नहीं पाते। सम्बन्धों के बीच आई यह दूरी फिर एक नया आकर्षण पैदा करती है। दोनों के बीच एक नया सेतु बनते–बनते रह जाता है। वे अलग–अलग स्थितियों में जीते हुये एक दुर्निवार पीड़ा व टूटन को झेलते हुये जीवन के अन्तिम रूप में समा जाते हैं। स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की यह स्थिति और परिणति पूरी कचोट भरी वेदना के साथ नयी कहानियों में आकार पा रही है। जीवन की विसंगतियों से उपजा यह पीड़ा बोध वर्तमान पीढ़ी का पीड़ा बोध है, अपितु समूची कथा–पीढ़ी द्वारा चित्रित कहानी यात्रा का एक अनिवार्य सोपान भी है।

निष्कर्ष के रूप में मैं राजेन्द्र यादव के शब्दों में अपनी बात समाप्त करना चाहूँगी कि – "आज हमारी नयी कहानी जहाँ आ गयी है, वह उसका समाप्त होना नहीं है, आगे गति न हो पाने के कारण बिखर जाना है .... किसी बड़े प्रारम्भ के बाद दरवाजों पर सिर पटककर साँस तोड़ देना है .... शायद जिन्दगी भी किसी ऐसे ही बन्द प्रारम्भ की दहलीज पर आ गयी है .... मगर जिन्दगी और कहानी को दरवाजा तो खोजना ही होगा। इस वर्तमान को किसी–न–किसी भविष्य तक तो खींचना ही होगा, उस आशा को तो प्राप्त करना ही होगा जो अनागत है, अगले जीवन और अगली कहानी की थीम है।"(38)

उपलब्धियाँ

नयी कहानी की वैचारिकता में खुलापन और प्रगतिशीलता है। उसने कई संकीर्णताओं को तोड़ा है। न तो यह केवल 'व्यक्ति' के इर्द–गिर्द घूमती है और न केवल स्थूल सामाजिक दृश्यों तक सीमित है। नयी कहानी 'व्यक्ति' को सामाजिक सन्दर्भ में देखती। रघुवीर सिन्हा नयी कहानी की जबर्दस्त देन 'व्यक्ति के पीड़ाबोध का पैना करना और संयत करते जाना मानते हैं। व्यक्ति की यह पीड़ा एकान्तिक न होकर सामाजिक बोध से उत्पन्न और सार्वजनिक है। नयी कहानी का चिन्तन परम्परागत मूल्यों खासकर नैतिक प्रतिमानों के लिये चुनौतीपूर्ण है। बकौल मधुरेश नयी कहानी की यह प्रमुख उपलब्धि है कि इसने वर्जित

प्रदेशों में प्रवेश किया है और किसी बात का समर्थन महज इसलिये नहीं किया कि वह अब तक मान्य रही है। 'परम्परागत नैतिक मान्यताओं को अपने विवेक से तौलने के आग्रह की जो परम्परा यशपाल की कहानियों से शुरू हुई, इसने उस परम्परा का निश्चित विकास किया है। नारी जीवन के विशेष सन्दर्भ में नैतिक वर्जनाओं पर या तो पुनःविचार किया गया है या उन्हें बिल्कुल नकार दिया गया है। 'दाम्पत्य', तलाश, 'ऊँचाई' आदि कहानियाँ इस कथन को प्रमाणित करती हैं।

नयी कहानी की भाषायी उपलब्धि भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।' नयी कहानी पर टिप्पणी करते हुये डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम ने लिखा है : सबसे बड़ी बात भाषा की है, जिसे आज कहानीकारों ने मात्र भाषा न रहने देकर जीवन के मुहावरे में ढली हुई भाषा बना दिया है।'' आज की उलझी हुई संवेदनाओं को चित्रित करने के लिये अज्ञेय या जैनेन्द्र की रोमानी और निजी भाषा से काम नहीं चल सकता था। नये कहानीकारों ने प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र और अज्ञेय के भाषा प्रयोगों के सशक्त पहलुओं को लेकर अपनी जीवन्त भाषा का निर्माण किया है। प्रेमचन्द्र की सादगी, जैनेन्द्र की सूक्ष्मता और सांकेतिकता तथा अज्ञेय की आत्मसजगता एक साथ 'नयी कहानी' की भाषा में मौजूद हैं। इसमें भाषा द्वारा चित्रों की भाषा का प्रयोग हुआ है। नयी कहानी ने 'कहानी' को एक नये मुहावरे, भाषायी सपाटपन और समकालिक चेतना से जोड़ दिया। इस प्रकार नकली या कृत्रिम आभिजात्य भाषा से मुक्ति का प्रयास हुआ। आगे चलकर कहानी की भाषा में जो तेजतर्रात्पन, तुनुकमिजाजी और बौखलाहट आयी, उसकी नींव नयी कहानी में पड़ चुकी थी।

युवा नीग्रो विचारक जॉन एल. कपूर के विचार में रूपकार में जड़ होते ही कला अप्रगतिशील हो जाती है तब वह उस शक्ति से वंचित हो जाती है, जो नयेपन और सृजनात्मक सम्भावनाओं को उजागर करती है। ऐसी स्थिति में नये शिल्प की माँग उठती है। नयी कहानी ने 'किस्सागोई, को चुनौती देकर नयी कथन भंगिमाओं की खोज की है। 'कथ्य' और 'शिल्प' की संश्लिष्टता नयी कहानी में प्रायः देखी जा सकती है। इसका 'शिल्प' न तो झटकेदार रह गया और न वर्णनात्मकता की अति इसमें है। 'नयी कहानी' के विरोधी जैनेन्द्र ने इसकी शिल्पगत उपलब्धि को स्वीकार किया है। भीमसेन त्यागी के साथ बातचीत में उनकी स्वीकारोक्ति है : ''शिल्प की दृष्टि से अवश्य विकास हुआ लगता है। सूचकता और सांकेतिकता का आग्रह बढ़ा है।''

(3) समान्तर कहानी एवं समानान्तर कहानी

'समांतर' : आंदोलन और वैचारिकता

सातवें–आठवें दशक में 'समांतर' हिन्दी कहानी का बहुचर्चित आंदोलन या 'नारा' रहा है। कमलेश्वर इस कथा आंदोलन के प्रस्तावक थे। बम्बई, कलकत्ता, राजगीर, कच्छ आदि स्थानों पर 'समांतर' गोष्ठियों का आयोजन, सहयात्री लेखकों का 'समांतर–1' जैसे संकलनों का प्रकाशन और फिर अपनी प्रतिष्ठित कथा–पत्रिका 'सारिका' के 'समांतर कहानी विशेषांक' निकालकर कमलेश्वर ने इसे प्रस्थापित करने के बहुविध प्रयत्न किये। इन सब जोड़–तोड़ों के बावजूद 'समांतर' कहानी महज एक नारा बनकर रह गयी। जून 1971 ई. में कमलेश्वर, कामतानाथ, मधुकर सिंह, रमेश उपाध्याय, जितेन्द्र भाटिया, इब्राहीम शरीफ, से. रा. यात्री, सुदीप, सतीश जमाली, राम अरोड़ा, दामोदर सदन, अरविन्द, निरुपमा सेवती, आशीष सिन्हा, विभुकुमार, श्याम गोविन्द, सनत कुमार, मुदुला गर्ग, श्रवण कुमार, प्रभात कुमार त्रिपाठी, शीला रोहेकर, रवीन्द्र वर्मा, राधेश्याम, शाहिद अब्बास अब्बासी, चन्द्रकांत मित्तल, महेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, एल. एन. दास आदि लेखक–पाठक अनौपचारिक रूप से बम्बई में मिले और इस चार दिवसीय (11, 12, 13 व 14 जून) 'अनौपचारिक' (??) गोष्ठी–समारोह में कहानी के विभिन्न मुद्दों पर बहस–मुबाहसे कर 'समांतर' के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित–प्रस्थापित किये जिनका जायजा 'समांतर–1' से लिया जा सकता है। इस संग्रह में आये हुये लेखक हैं – अरविन्द ('इत्यादि'), आशीष सिन्हा ('अनुराग'), इब्राहीम शरीफ ('दिगभ्रमित'), कमलेश्वर ('जोखिम'), कामतानाथ ('छुट्टियाँ'), जितेन्द्र भाटिया ('साजिश'), दामोदर सदन ('आग'), निरुपमा सेवती ('कुछ होने की स्थिति'), मधुकर सिंह ('पूरा सन्नाटा'), मृदुला गर्ग ('हरी बिन्दी'), रमेश उपाध्याय ('समतल'), राम अरोड़ा ('ऋतुशेष'), विभुकुमार ('यात्रा : शव–यात्रा'), शीला रोहेकर ('चौथी दीवार'), सतीश जमाली ('प्रथम पुरुष'), श्रवण कुमार ('बवंडर'), सनत कुमार ('टोपी का रंग टोपी'), सुदीप ('अन्तहीन'), से. रा. यात्री ('कहानी नहीं')। इस प्रकार ये सभी कहानीकार 'समांतर–1' के मंच पर एकत्रित होकर 1972 ई. में प्रकाशित हुये। इसके पश्चात् 1974 ई. के अक्टूबर अंक से 'सारिका' के 'समांतर कहानी विशेषांकों' की श्रृंखला जुलाई 1975 ई. तक 10 अंकों में प्रकाशित हुई। यदि ध्यानपूर्वक देखें तो 'समांतर' के समस्त कहानीकार 'सारिका' के ही कहानीकार हैं। इस समयावधि में 'सारिका' हिन्दी कहानी की

सर्वाधिक प्रतिष्ठित पत्रिका रही है। प्रत्येक कहानीकार 'सारिका' में छपने को गौरव समझने लगा। बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान की ऐसी समादृत पत्रिका में कहानी छपना लेखक को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित होने के लिये आवश्यक लगा जितना अधिक श्रम और शक्ति इस आन्दोलन को प्रस्थापित करने में लगी, उतना कदाचित किसी अन्य आन्दोलन के लिये नहीं। कलकत्ते का प्रसिद्ध कथा–समारोह नयी कहानी के पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाने के बाद हुआ और 'समांतर' का गोष्ठी–आयोजन इसे जमाने के लिये पहले ही हो गया। मानो कथा–लेखन के लिये कुछ नुस्खे, बने–बनाये फार्मूले लेखकों को थमाये गये, जिनके आधार पर उन्हें कहानियों की रचना करनी थी। समांतर को प्रकाशन की जो सुविधाएँ उपलब्ध रहीं, वे किसी भी कथा–आन्दोलन को न थीं। इस कहानी–आन्दोलन में सबसे ज्यादा शोर 'आम आदमी' का रहा। 'आम आदमी' के आस–पास आज की कहानियाँ 'समांतर' का सूत्र–वाक्य हो गया, किन्तु इन सबके बावजूद यह आन्दोलन अधिक तूल नहीं पकड़ सका। 'समांतर' विशेषांकों में प्रकाशित कुछ लेखक भी इसे बेमानी मानते हैं। यही कारण है कि नये–से–नया और पुराने–से–पुराना लेखक इन 'समांतर' विशेषांकों में छपा। किन्तु फिर भी यह आंदोलन 'नयी कहानी' के समान लोकप्रिय नहीं हो सका, इसका हश्र 'अकहानी', 'सहज कहानी', 'सचेतन कहानी' आदि आन्दोलनों से भिन्न कुछ नहीं हुआ। अब तो लगता है कि 'समांतर' का आन्दोलन चुक ही गया है।

यह 'समांतर' है क्या, इसका विवेचन भी अपेक्षित है। 'समांतर' की समस्त घोषणाएँ कमलेश्वर के द्वारा ही हुई। कामतानाथ, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, डॉ. विनय, इब्राहीम शरीफ आदि लोगों ने उन्हीं बातों को दुहराया जिनके 'सूत्र' कमलेश्वर ने दिये। इसलिये यदि यह कह दिया जाये कि 'समांतर' पर कमलेश्वर के विचार ही 'समांतर आन्दोलन' हैं तो अनुपयुक्त न होगा। वे इस आन्दोलन के आचार्य रजनीश हैं।

समांतर : वैचारिकता

'समांतर' कथा–सोच का केन्द्र–बिन्दु आम आदमी है। समांतर कहानियाँ 'आम आदमी के आस–पास की कहानियाँ' कही गयी हैं। 'सारिका' के 'समांतर' कहानी विशेषांक–1' में कमलेश्वर ने इन कहानियों के कथ्य को इस प्रकार रेखांकित किया – "...... ये कहानियाँ साहित्य की नरफ के साथ देने का औपचारिक प्रस्ताव नहीं, बल्कि बड़े पैमाने पर चल रही

यथार्थ की लड़ाई में शामिल कहानियाँ हैं। लड़ाई के दौरान लिये जाने वाले निर्णयों को यदि कोई कहानी कहना चाहे तो कह ले, लेकिन ये कहानी नहीं है। नाम की सुविधा के लिये हम इन्हें कहानी कह लेते हैं। ये मुजस्सिम आदमी की बदलती हुई धारणाओं, उसके प्रश्नों और चिंताओं की लिखित तहरीर ही नहीं, बल्कि समय में लिये उसके फैसलों की यथार्थ प्रतिलिपियाँ भी हैं।"[40] इन्हीं कहानियों की व्याख्या में कमलेश्वर और स्पष्ट रूप से कहते हैं, "ये समांतर कहानियाँ सामान्य जन की अपराजेय परंपरा की कहानी हैं।" "कहानी की समांतर वैचारिकता ने साहित्यिकता को अस्वीकार करके समय को पूरी तरह से स्वीकार किया है ...... ये कहानियाँ आम आदमी के समय–संदर्भों में जन्म लेने वाले जलते प्रश्नों के यथार्थमूलक द्विधारहित कदम हैं।" इस प्रकार ये कहानियाँ आम आदमी की लड़ाई के कदम हैं जो विभिन्न मोर्चों पर व्यवस्था के खिलाफ लड़ रहा है। "[41] .... समांतर समय का साहित्य आदमी की अपेक्षाओं की सम्पूर्ण लड़ाई से सम्बद्ध हैं .... कि समय–सापेक्ष समांतर साहित्य ही आदमी की बाहरी और भीतरी लड़ाई को जोड़ता है; जीने की शर्तों के लिये लड़ी जाने वाली टुकड़ा–टुकड़ा लड़ाइयों को जीने की अपेक्षाओं के आधारभूत और मूल–संघर्ष में बदलता है।"[42] कमलेश्वर ने इस समांतर साहित्य के विषय में यह भी कहा कि इसने – "सदियों से सत्य माने जा रहे 'सत्य' तथा उनसे सम्बन्धित मूल्यों पर भी प्रश्न चिन्ह लगाये हैं। ये सही अर्थों में विषमतामूलक समाज की कहानियाँ हैं।"[43] उनका दावा है कि इन कहानियों में 'व्यक्ति केन्द्रित नैतिक मूल्यों और प्रश्नों' को 'समयगत न्यायधारणा'[44] के संदर्भ में उठाया गया है। कहीं इन कहानियों का आम आदमी 'सांस्कृतिक निरीहता के खिलाफ लड़ाई में जुटा'[45] बताया गया है। इस प्रकार समांतर कहानियों का व्यक्ति, आम आदमी अपने परिवेश की हर गलाजत के प्रति संघर्षरत मानव बताया गया है।

अब एक प्रश्न और : साहित्य में इन 'समांतर' कहानियों का प्रारंभ कब से हुआ या कहें इस समांतर कहानी–आंदोलन का समय इसके जनक कब से मानते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर कमलेश्वर के 'मेरा पन्ना' ('सारिका' के संपादकीय) के अंतर्गत ही मिलता है। 'समांतर कहानी विशेषांक–2' (अक्टूबर 1974 ई.) में वे कहते हैं, "......... कहानी के क्षेत्र में यह निश्चित और सम्पूर्ण कदम पिछले दशक के अंतिम दो–तीन वर्षों में उठ चुका था–जो अब गुणात्मक अस्मिता प्राप्त कर चुका है।" इस प्रकार कमलेश्वर मानते हैं कि 1967–68 ई. से 'समांतर' कहानियों का प्रारम्भ हो चुका था और इसका अंत !! शायद कमलेश्वर इसका

अंत अभी मानेंगे ही नहीं, अर्थात् अब 'समांतर' का 'नोटिस' लेना भी बंद हो गया है, चर्चा की तो बात ही क्या ! वैसे यदि कमलेश्वर की बात मान लें तो 1967–68 में प्रारंभ हुआ कहानी का यह आंदोलन 1977–78 ई. से आगे चल भी नहीं सकता, क्योंकि हिन्दी कहानी के इतिहास में 'नयी कहानी' से लेकर अद्यतन कोई भी नारा ऐसा नहीं था जो इससे अधिक समय तक रहा हो। कहानियों की प्रवृत्ति को दशकों में ही बाँटकर देखा गया।

'समांतर' : कितना नया, कितना पुराना ?

'समांतर' कहानी–आन्दोलन में जो यह सामान्य आदमी या आम आदमी का शोर है, इससे एकदम यह सवाल उठता है कि जब से हिन्दी कहानी ने यथार्थ की भूमि ग्रहण की तब से अद्यतन यह आम आदमी कहाँ नहीं था या किस कहानी आंदोलन ने आम आदमी की उपेक्षा की ? प्रेमचन्द्र की परवर्ती कहानियों–'पूस की रात' और 'कफन' (जिन्हें 'नयी कहानी' का प्रस्थान–बिन्दु कहा गया) से लेकर 'नयी कहानी', 'साठोत्तरी कहानी', 'अकहानी', 'सचेतन कहानी', 'समकालीन कहानी' अथवा किसी अन्य नारे से संबद्ध कहानी में यह 'आम आदमी' गायब कहीं नहीं रहा। 'नयी कहानी' से अद्यतन, सदैव ही यह आम आदमी कहानी के कथ्य का केन्द्र रहा है। सामान्य जन या आम आदमी कहानी के कथ्य के तेवर यदि कुछ बदलते हैं, तो ये उसकी परिस्थितियों के बदलाव का स्वाभाविक प्रतिफलन हैं। आज मनुष्य की आर्थिक समस्यायें 50–60 के दशक की तुलना में बहुत अधिक विकराल रूप धारण कर गयीं हैं। इस विकरालता ने कहानी के सामान्य जन को और अधिक विद्रोही, किसी भी अन्याय का प्रतिकार लेने को प्रतिबद्ध और सन्नद्ध चित्रित किया है। यह सामान्य जन के स्वरूप की स्वाभाविक परिणति है। उसका श्रेय किसी आन्दोलन–विशेष को नहीं जाता। यथार्थ के प्रति प्रतिबद्ध कहानीकार सुनिश्चित रूप से अपने परिवेश को व्यक्त करता, भले ही वह 'समांतर' से जुड़ता या न जुड़ता। यह नयी कहानी का स्वाभाविक विकासक्रम है। नयी कहानी के कमलेश्वर ने लिखा था, "सन् 50 के आस–पास की कहानी से सन् 1965 की कहानी बदल गयी है और यह प्रक्रिया ही नयी कहानी की मौलिक और आधारभूत शक्ति और यह विविधता ही उसका वास्तविक स्वरूप है। जिस दिन 'नयी कहानी' किसी स्वरूप–विशेष को अंगीकार करके स्थिर और परिभाषित हो जायेगी, वही उसकी मृत्यु का दिन होगा।"[46] फिर 'समांतर' कहानी के कमलेश्वर ने जो घोषणाएँ की उनमें उपर्युक्त कथन को ही 'कंट्रेडिक्ट' किया है।

हमें ऐसा लगता है कि 'नयी कहानी' की 'मृत्यु का दिन' अभी नहीं आया है। विभिन्न दशकों में अनेक नूतन परिस्थितियों और परिवेश से गुजरती नयी कहानी विविध आयाम ग्रहण करती रही है और अभी समय नहीं आया कि 'नयी कहानी' या 'समकालीन कहानी' अभिधान को अस्वीकार किया जाये।

'समांतर' के कमलेश्वर ने आम आदमी के विषय में जो विभिन्न वक्तव्य दिये, थोड़े-से शब्दों के हेर-फेर के साथ यही बातें नयी कहानी के कमलेश्वर ने कहीं थीं। अपनी 'नयी कहानी की भूमिका' में वे कहते हैं, "......... स्वतंत्रता के बाद पहली बार नयी कहानी ने आदमी को आदमी के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। शाश्वत मूल्यों की दुहाई देकर नहीं, बल्कि उसी आदमी को उसी के परिवेश में सही आदमी या मात्र आदमी के रूप में अभिव्यक्ति देकर।"(47)

"नयी कहानी मनुष्य को उसके परिवेश में अन्वेषित करती है और मानव नियति और उसके संकट के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति है।"(48)

"नयी कहानी में मात्र सामान्य मनुष्य ही अवतरित हुआ है, अपनी सारी खामियों, कमियों और अच्छाइयों के संदर्भ में।"(49)

"नयी कहानी का व्यक्ति (या मनुष्य) इन सब विविध अनुभवों के संदर्भ में ज्यादा प्रौढ़ और संयत है, ज्यादा सही और सच्चा औसत आदमी है।"(50)

इन समस्त कथनों और उनके विभिन्न कहानी-संग्रहों की भूमिकाओं को 'समांतर' की घोषणाओं से मिलाकर देखने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि 'समांतर' का 'आम आदमी' कहानी में नया नहीं है। कहानीकार की 'प्रतिबद्धता' में भी 'समांतर' में आकर कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'समांतर' महज एक नारा बनकर ही रह गया। कमलेश्वर को इस आंदोलन में अपना श्रम और शक्ति लगाने की कोई आवश्यकता न थी। कमलेश्वर या इस आंदोलन से सम्बद्ध अन्य लोगों की कुछ अच्छी कहानियों को 'समांतर' के लेविल की आवश्यकता न थी। अच्छी कहानी किसी भी आन्दोलन के झंडे के नीचे आये या न आये, वह एक जीवन्त रचना रहती है और खराब या बुरी कहानी

को आन्दोलन की बैसाखियाँ खड़ा नहीं कर सकती। 'समांतर' के दौर में भी कुछ बहुत अच्छी कहानियाँ 'सारिका' ने हिन्दी को प्रदान कर उसके कहानी साहित्य को नवीन गौरव प्रदान किया। किन्तु जैसा कि हर आन्दोलन के दौर में हुआ करता है, बहुत–कुछ उपेक्षणीय भी कहानी के रूप में सामने आया। उसका कारण यह रहा कि 'समांतर' में लिखने वाले लेखकों के सम्मुख 'समांतर' की सिद्धान्त–घोषणाएँ प्रमुख रहीं। बने–बनाये ढाँचों और साँचों में फिट कराने के लिये श्रेष्ठ साहित्य की रचना नहीं हो सकती। साहित्य, श्रेष्ठ साहित्य, कभी भी बने–बनाये लक्षणों के आधार पर नहीं रचा जा सकता। हाँ ! इतना अवश्य हुआ कि हिन्दी की कुछ बहुत अच्छी कहानियाँ इस लिये उपेक्षित–सी रहीं या उनकी पर्याप्त चर्चा न हो सकी, क्योंकि वे 'समांतर' के झंडे के नीचे प्रकाशित हुईं, यथा स्वयं कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन', सुदीप की 'कितना पानी', इब्राहीम शरीफ की 'जमीन का आखिरी टुकड़ा', से. रा. यात्री की 'दरारों के बीच', 'हरिशंकर परसाई की 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' आदि। (कुछ नाम और भी लिये जा सकते हैं और यह सूची आवश्यक नहीं कि वही हो जो हिमांशु जोशी द्वारा सम्पादित, 'श्रेष्ठ समांतर कहानियाँ' की हैं, उसमें कुछ अच्छी कहानियाँ नहीं आयी हैं और कुछ सामान्य कहानियाँ भी आ गयी हैं। खैर, पसन्द अपनी–अपनी।

(4) साहित्यिक कहानी

साहित्यिक कहानी समसामयिक अनिवार्यताओं के बीच से उद्भुत हुई थी और उन्हीं के साथ क्रमशः विकसित होती गयी। अनिवार्यताएँ व्यक्तिगत नहीं थीं, सार्वजनीन थीं या अगर व्यक्तिगत रही थीं तो उन्हें ऐसे विस्तृत परिप्रेक्ष्य में खड़ा किया गया, जिसमें इनका अवान्तर स्वरूप बदल जाता है। वैयक्तिक चेतना अपने परिविस्तार में व्यापक संदर्भों और सवालों में निरंतर टकराती रही है और उसकी रचनात्मक खोज तो निश्चय ही सही और व्यापक संदर्भों को पाने की रही है, भले ही वे संदर्भ अत्यंत, अनगढ़, तीखे लगते हैं। रचनात्मक निर्णय के समय जहाँ हम खड़े होते हैं, हमारी दृष्टि का फैलाव उसके एक खास ऐंगिल से होता है। ऐसे मौकों पर प्रायः हम निर्णय की जगह कूट तर्कों के फेर में पड़ जाते हैं और अपनी बात को लेकर खींचतानी करने लगते हैं। आज की कहानी की उपलब्धियों का सही आंकलन उन स्थितियों से अलग होकर ही संभव है, जो गलत तरीके से आकर्षित और विकर्षित करती हैं। परिप्रेक्ष नहीं, दृष्टि भी विकसित होनी चाहिये। यह यों ही नहीं है कि

पुरानी पीढ़ी के लोगों को आज की कहानी नाराज करती है या खिझाती है। वस्तुतः इनकी आदत सिद्धान्तों और दर्शनों की भूमिका में सोचने की रही है, कला और साहित्य के दायरे बनाने और छेदने वाले रहे हैं। आज की कहानी का रचना–प्रयोग कहानीकार की अनुभवशीलता को तटस्थ बनाने का भी रहा है अन्यथा भीड़ में अपने को पाने की भूल का दुहराव होता ही रहता है। क्योंकि अब तक यही प्रक्रिया दुहरायी जाती रही हैं। आज की कहानी इससे मुक्त हुई है। इसलिये इसकी उपलब्धियों को इसी स्तर का आँका जाना चाहिये। आज की कहानी का अभी कोई स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया है। इसलिये इसकी उपलब्धियों के ब्यौरे देने का सवाल ही नहीं उठता–ऐसी बात भी अक्सर कही जाती है। संभवतः यह सच है कि आज की कहानी अपना कोई स्थिर स्वरूप नहीं बना सकी है, अभी वह प्रक्रिया ही है, लेकिन इसके साथ यह सच है कि इसकी उपलब्धियाँ शून्य हैं। सामयिक बोध के धरातल पर कथा–चेतना की सचेतता स्थितियों की गहरी सम्पृक्ति का संकेत देती है। सही माने में आज की कहानी ने इतिहास का क्रिएटिव यूज किया है, इसलिये उपलब्धियों को समसामयिकता और इतिहास, दोनों स्तरों पर स्पष्टतया रेखांकित किया जा सकता है।

सातवें दशक के मध्य से भारतीय जन–मानस में प्रतीक्षा का भाव समाप्त हो चला। इसके स्थान पर मोहभंग और सामाजिक परिवर्तन के लिये आतुरता–अधीरता का भाव पैदा हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह नेहरू–युग की समाप्ति के बाद राजनीतिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन की व्यापक माँग का ही प्रतिफलन था। कहानी की रचना में रत होने वाले नवयुवक कहानीकार सत्ता के प्रति आक्रोशमय रवैया रखते थे। उनका यह रवैया उनकी कहानियों में प्रकट हुआ। जिन कहानीकारों में आक्रोश के साथ स्थिति की पहचान और समझ भी थी, उन्होंने सार्थक कहानियाँ लिखीं। यह आक्रोश और समझ नये कहानीकारों की भाषा को वाणी एवं खुलापन देती है और व्यंग्य पूर्ण तेवर भी। भ्रष्टाचार कितना सहज और स्वीकार्य बन गया है, इसकी अभिव्यक्ति इन कहानीकारों की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इसी कारण इनकी रचनाओं में घृणा और क्षोभ है। इसे ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, पंकज विष्ट, असगर वजाहत, मिथिलेश्वर और संजीव की कहानियाँ कलात्मक संयम के साथ व्यक्त करती हैं। इन कहानीकारों में मिलने वाला व्यंग्य वास्तविक और पैना है।

इस बीच कुछ ऐसी कहानियाँ भी आई हैं, जो विकसित स्थिति की संभावनाओं पर भी ध्यान देती हैं। मधुकर सिंह की एक कहानी लहू पुकारे आदमी में दिखाया गया है कि

गरीब सवर्ण और गरीब अवर्ण वस्तुतः समान हैं और इसी प्रकार अमीर सवर्ण और अमीर सवर्ण भी। यह वर्ग चेतना केवल किताबी बोध नहीं है। चुनावों और शिक्षा का परिणाम है। अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी सुलह में एक असहाय ग्रामीण पात्र पुलिस और उच्च वर्ग की मिली भगत पहचान कर सुलह अपने ढंग से यानी जालिम को पीटकर करता है।

एक बात की ओर संकेत कर देना यहाँ मैं आवश्यक समझती हूँ कि रचनात्मक निर्णय के समय जहाँ हम खड़े होते हैं, हमारी दृष्टि का फैलाव उसके एक खास ऐंगिल से होता है। ऐसे मौकों पर प्रायः हम निर्णय की जगह कूट तर्कों के फेर में पड़ जाते हैं और अपनी बात को लेकर खींचतानी करने लगते हैं। साहित्यिक कहानी की उपलब्धियों का सही आंकलन उन स्थितियों से अलग होकर ही संभव है, जो गलत तरीके से आकर्षित और विकर्षित करती हैं। इसके लिए परिप्रेक्ष नहीं, दृष्टि भी विकसित होनी चाहिये। यह यों ही नहीं हैं कि पुरानी पीढ़ी के लोगों को आज की कहानी नाराज करती है या खिझाती है। वस्तुतः इनकी आदत, सिद्धान्तों और दर्शनों की भूमिका में सोचने की रही है, कला और साहित्य के दायरे बनाने में इन्हें आनन्द आता रहा है। अतः साहित्यिक कहानी के प्रति इनका यह रूख स्वाभाविक ही है। यहाँ मुझे डॉ. रघुवंशी की एक बात याद आती है (जो उन्होंने ऐसे ही ठस दिमाग वाले लोगों को लेकर कही थी) कि एक ओर तो छन्दोबद्ध कविता की माँग करते हुये क्लासिक की रक्षा चाहते हैं और दूसरी ओर ऐसी कविता पर चर्चा भी नहीं करते जो कि इस तरह की कवितएं भी आज कम नहीं लिखी जा रही हैं। रक्षावादी और कलावादी सीमाओं में घिरे रहने वाले लोगों की नियति यही है कि न तो वे कला का मूल्यांकन कर सकते हैं, न उससे हटकर नये धरातल पर ही चीजों को सोचने–समझने की व्यावहारिकता अपना सकते हैं। दोनों तरह के रास्ते इनके लिये बन्द रहते हैं और नया लेखन इनके लिये अन्त तक मजाक की चीज ही रहता है।

हमारे समक्ष एक अहम सवाल यह कि क्या समग्र अनुभूति की रचनात्मकता अब तक की कहानी में रही है ? इस प्रक्रिया से मानव और व्यक्ति की मूर्त परिभाषाओं से हटकर जीवित संभावनाओं की खोज की कोई दिशा अब तक बन सकी थी ? मुझे लगता है कि वैसा न हो सका था। सार्त्र ने यह मानते हुये भी कि व्यक्ति का अस्तित्व अनिश्चित है, यह स्वीकार किया था 'अपने लिये' भी है और इस रूप में उसकी संभावनाएँ निश्चय ही हैं। कहानियों के मामले में इसे घटित करते समय इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि संभावनाओं की

ओर न देखकर खास मूल्यों की स्वीकृति को ही इति मान लिया गया। मानवीय सभ्यता को ज्यों–त्यों बचाये रखना, परमाणु और महापिण्ड के जरिये चीजों की व्याख्या करते रहना, यही उसकी चरम उपलब्धि थी। साहित्यिक कहानीकार के साथ दूसरे बड़े दायित्व हैं, चुनौतियाँ हैं, नये मूल्यों के बनाने की प्रज्ञा है, अपने आसपास की चिंताओं से जूझने का भाव है। वह इन स्थितियों को रचना के स्तर पर झेल रहा है। यह अन्यतम उपलब्धि है साहित्यिक कहानी की। साहित्यिक कहानी, पिछली कहानी के जिन मानों से भिन्न है, उनमें से एक इसकी मूल संवेदना और रचना–प्रयोग का स्तर भी है, 'सेन्सिटिव भाषा' की पहचान, अलग है। कहानीकार की टकराहट जड़ता की अनुवर्ती न बनकर तनावपूर्ण प्रतिक्रियाओं में व्यक्त हो रही है। सम्बन्धों के प्रति सतर्कता और परिवर्तित दृष्टि, इन्हें लेकर सोची गयी मनः स्थिति से प्रकट होती है। यह भ्रम नहीं होना चाहिये, जो प्रायः हो जाता है, कि ये सब सिर्फ कहानी की स्थितियाँ हैं। वस्तुतः अब असल जिन्दगी और कहानी को दो भिन्न स्तरों पर नहीं जिया जा रहा है। संक्रमणकालीन बोध ने व्यवस्था को आधारहीन और निरर्थक साबित करते हुये उसकी सहज स्वीकृति की मूढ़ता से जहाँ मुक्ति दिलायी है, वहीं निष्कर्षों की उदारता के भीतर तमाम झूठ गढ़ लेने की गलतफहमियों से भी अलग किया है। अब कहानी से अपेक्षाएँ नहीं हो सकती। अपेक्षाओं से मेरा मतलब रचना के साथ जोड़ी जाने वाली उन अतिरिक्तताओं से है, जो रचना और रचना–दृष्टि के बीच विरोधाभास पैदा करती हैं। लेखक जो कुछ कहना चाहता है, उसका अपना जो अनुभव–संसार है, वह रचनाशीलता से नहीं 'गवर्न' होता, बल्कि इनके माध्यम से रचनाशीलता की खोज की जाती है। साहित्यिक कहानी की रचनाशीलता व्यक्त होने वाले माध्यम से निर्धारित नहीं हो पाती है। साहित्यिक कहानी करते समय हमारे सामने जैनेन्द्र, यशपाल और विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ नहीं आतीं, न राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश की ही आती हैं। इनकी कहानियाँ परिवर्तित बोध का ठेका भर लगती हैं। अनुभव के स्तर पर तेजी से बदलने वाली रचनाशीलता का साथ ये नहीं दे पाती हैं। रचना–स्थितियों के प्रति निजी तटस्थता न बरत पाने की इन कहानीकारों की लाचारी, अनुभव और संवेदन में एकदम नये लोगों से अलग कर देती हैं। एक फाँक दोनों के बीच बनी रहती है। ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर, अशोक सेकसरिया, महेन्द्र भल्ला, काशीनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल, विजय चौहान की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में जीवन–दृष्टि और रचना–दृष्टि के आन्तरिक संगठन के बदलाव को आसानी से रेखांकित किया जा सकता है। भूले–भटके

ऐसा हो सकता है कि जहाँ मोहन राकेश हों, वहीं दूधनाथ सिंह भी हों, लेकिन अन्ततः जहाँ निर्मल वर्मा हैं, वहाँ महेन्द्र भल्ला नहीं है, जहाँ राजेन्द्र यादव और लक्ष्मी नारायण लाल हैं, उससे आगे ज्ञानरंजन और काशीनाथ सिंह हैं। आज की कहानी का यह (अस्पष्ट ही सही) अलगाव दो कहानियों के जरिये समझा जा सकता है। मन्नू भंडारी की 'कमरे, कमरा और कमरे' तथा सुधा अरोड़ा की 'घर' एक ही स्थिति की दो प्रतिक्रियायें हैं। सुधा अरोड़ा की प्रतिक्रिया सार्थक लगती है। यथार्थ दोनों में है, लेकिन पहली में बस खोज भर है, जबकि दूसरी में खोज की शुरूआत का पता चलता है। भंडारी अपनी कहानियों में हमेशा स्थितियों से लगी रहती हैं। जातीय मोह उनसे छूट नहीं सका है, इसी कारण सहानुभूति का दर्जा हर जगह एक ही रहता है। इस कहानी की नीलू के मन का अटकाव आरोपित जैसा लगता है, 'घर' में यह बात नहीं है। अपने रूक जाने का एहसास बहन को बार–बार होता है, पर वह इसलिये पहुँचकर भी बिखरती नहीं है। मन्नू भंडारी के 'मैनरिज्म' से सुधा अरोड़ा मुक्त हैं।

साहित्यिक कहानी अनुभव के बीच में नहीं है। यह कहना वैसे काफी आसान सा लगता है कि ये कहानियाँ फैशनग्रस्त हैं, लेकिन इस 'ग्रस्तता' वाला जिन्स को परिभाषित करना काफी मुश्किल है। एक समय में रचना–स्थिति और वस्तु–स्थिति को अलग–अलग रखा जाता रहा है। तब से अब तक की रचना–चेतना बदल चुकी है। जिस 'व्यापक सामाजिकता' की आड़ लेकर कहानीकार रचना–चेतना के प्रति सतर्क होने का सबूत पेश करते आ रहे थे, वही अब आकर कितनी निरर्थक साबित हुई है, यह स्पष्ट है। यह सही है कि अब कहानीकार के पास धारणाएँ नहीं हैं, नुक्ते नहीं हैं (मैं नहीं जानती अगर इन्हीं से रचना बनती हो) पर इनके अलावा जीने और रचने की एक तड़प उसके पास है, सही दिशा की ओर प्रक्षेपित रचना–चेतना है, कहने के लिये अपनी निजी सच्चाईयाँ हैं। असुन्दर, बिखराव, अकेलापन, संत्रास, विद्रोह अगर इसमें तो इसलिये नहीं कि कहानी इसी से बनती है, बल्कि यह जीवन के साथ है। कहानी और जीवन का संघर्ष एक ही है। काशीनाथ सिंह की 'अपने देश के लोग,' रामनारायण शुक्ल की 'नाइट–शो', प्रयाग शुक्ल की 'आदमी' उदाहरण के लिये ली जा सकती है।

आज का साहित्यकार, साहित्यिक कहानी लिखते समय अपरिचय और अजनबीपन, ठहराव के बाद आत्म–बोध से कट जाने के उपक्रम में जिन छायाभासों की रचना करने लगता है, वह आज के व्यक्ति की पहचान में सहायक हो सकते हैं। महेन्द्र भल्ला की कहानी

'फन्दा' में व्यक्ति की पहचान कितनी सही उभरी है कि वह हमदर्दी दे पाने से इसलिये कतराता है, क्योंकि सब कुछ हो जाने के बाद ठीक हो जाता तो मन में खास तरह की 'जुगुप्सा' आ जाती, जिसे सहना अपने आप में एक भारी यंत्रणा से गुजरना है। ठीक हो जाने की यंत्रणा से नहीं, ठीक न हो पाने की यंत्रणा से गुजरने का एहसास मनहर चौहान की कहानी 'मोम' में बेहद सच्चाई लिये हुये हैं। श्रीराम वर्मा की 'राबिन्सन क्रूसो' आयताकार ध रातल बनाती है, जिस पर अनुभूतियाँ क्रमशः फैलती रहती हैं और रचना–चेतना की सार्थकता को नियंत्रित किये रहती हैं। इसी के समानान्तर 'थर्मस में कैद कुनकुना पानी', 'एक प्रामाणिक झूठ', 'वी. आई. पी.', 'अलग–अलग कद के दो आदमी', 'बुद्धू', 'एक सेन्टीमेनटल डायरी की मौत', 'सम्बन्ध' कहानियाँ शुद्ध साहित्यिक कहानी को वास्तविक रूप से प्रतिनिधित्व करती हैं।

यह जबावदेहियों से मुक्त हो जाने के बाद भी जिन नतीजों की ओर ले जाती हैं, वे गहरे और सोचकर निकाले गये लगते हैं। इन कहानियों के द्वारा यह बात रेखांकित की जा सकती है कि बदलाव के प्रति सतर्क किन्तु अनुभव में जड़ हो जाने वाले पिछले दशक के कहानीकार जबावदेहियों का दर्द ढोने में समय–सत्य से कितना पीछे छूट गये थे। प्रमाणिकता के धरातल पर अपने ही अनुभवों में पीछे छूट जाने वाले कहानीकार अब तक सिर्फ 'कहानीपन' को ही जीते रहे हैं।

साहित्यिक कहानी की यह एक विशिष्टता है कि कथा–स्थिति का यथार्थ उसी से उद्भूत नहीं है, जैसा कि अक्सर होता रहा है। यथार्थ अब वह नहीं है जो कहानी में यथार्थ बनता है, बल्कि यथार्थ से ही कहानी में यथार्थ बनता है, बल्कि यथार्थ से ही कहानी बनती है। जिस कहानियों के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे और .... उन्हीं तरह की तमाम कहानियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि इनमें यथार्थ को बनाया नहीं गया है। इसके पीछे कारण हैं। हमारे जीने के संघर्ष की एकतरफा व्याख्या की अवधि नहीं रही। आज जो संदर्भ सामने हैं, वे शायद उस तरह के नहीं हैं, जिन्हें बना लिया जाता है या जिनकी पैमाइश परम्पराओं से मिलान करके की जाती है। प्रायः मान लिया जाता रहा है कि चूँकि संदर्भ इस तरह के हैं, इसलिये सापेक्ष मूल्य भी ऐसे ही होंगे। परिणाम यह हुआ है कि कहानी मूल्य बनाने या मूल्य बनाने के फेर में ही उलझकर रह गयी। उनके संदर्भों का उल्लेख तो बहुत है, लेकिन उनका 'जस्टीफिकेशन' नहीं है। संदर्भ कभी 'वातावरण' नहीं बना सकते – यह

बड़ी स्थूल बात है। कहानी की अंतरंगता में इसे नहीं रखा जा सकता। यह गलती आज की कहानी में नहीं है। इसकी अंतरंगता केन्द्रीय व्यक्ति तथा उसके परिवेश की प्रामाणिकता में निहित है। कहानी के व्यक्ति ऐसा 'वातावरण' बनाने में सक्षम हैं, जो जीवन की तीखी सच्चाईयों और समसामयिक बोध को उभारता है। उदाहरण के लिये ज्ञानरंजन की कहानी 'शेष होते हुये' ली जा सकती है। इसमें परिवार के टूटते जाने तथा गहरे अवसाद को व्यक्त करने के लिये कोई बहुत बड़ा तूम–तड़ाम नहीं बाँधा गया है। यहाँ अवसाद में गहराई है, जो 'वातावरण' से संकेतित होती है और यह 'वातावरण' कहानी के केन्द्रीय व्यक्तियों की हरकतों से ही बनता है। कहानी इतनी स्थिर भी हो सकती है, यह पता पहली बार चलता है।

उपलब्धियों के विवेचन में यह भी जोड़ा जा सकता है कि कहानी – जो अपना अर्थ लगभग खो चुकी थी और एक तरह की वैचारिक अतिवादिता से आक्रांत थी – सही स्तर पर साहित्य के माध्यम से आयी है। यों इसमें पूर्वाग्रह भी हो सकता है और फतवा भी। किसी भी विवेचन में ऐसे संकट खासी पर्याप्तता में मौजूद रहते हैं, तो भी यह वैयक्तिक विचार भर है। हमेशा ऐसा होता है कि अर्थ की परवाह न करके, अर्थ की खाली जगह को भरने की सामयिक कोशिशें होती हैं, रूपबंध तोड़े जाते हैं, जिससे उपलब्धियों का ब्यौरा देने में सुविधा हो। मैं आज की कहानी में अर्थ–संदर्भ सिलसिलेवार खोजने की बात पर जोर नहीं देना चाहती (किन्हीं मन्तव्यों के जरिये व्याख्या में पड़ने का ख़तरा नहीं उठाया जा सकता)। मैं नयी रचनात्मकता की ओर संकेत करना चाहती थी, जो इधर की कहानियों में उभरा है। इनकी ओर पहले भी संकेत कर चुकी हूँ और मेरी धारणा अब भी यही है कि उपलब्धियों का केन्द्र–बिन्दु यही है। उपलब्धियों के बारे में गिनाये जाने वाले सारे संक्षेपों का समापन इसी बिन्दु से होता है।

साहित्यिक कहानी की संवेदना, इसी स्तर पर, कविता की संवेदना से कितनी भिन्न है, यह आंकलन महत्वपूर्ण हो सकता है। विधा का सामर्थ्य इससे आँका जा सकता है। यद्यपि यह आश्चर्यजनक है कि कहानी को मान्यता न देने की तमाम कोशिशों के बावजूद अब सारी चर्चाएँ सिर्फ कहानी पर केन्द्रित हैं। कुछ इस तरह लगता है कि आज की संवेदना का साक्षात्कार साहित्यिक कहानी में ही है। यह सच भी है।

साहित्यिक कहानी की संवेदना पिछले दशक की कहानियों की संवेदना से भिन्न है और ताजी भी। व्यापक सामाजिक चेतना और समसामयिक संवेदना के स्तर पर जातकीय जीवन की सीधी टकराहट देखने को मिलती है। इनकी रचना–प्रक्रिया की गतिशीलता इन्हें सार्थक कहानी बनाने में सहायक थी। पर क्रमशः इन कहानियों में जो रट आती गयी, उससे मूल संवेदना एक सीमित दायरे में ही भाव–सत्यों और मानव–सत्यों का रूप तय करने लगी। वह बाहरी अस्तित्व की आवाज भर रह गयी। इनकी संवेदना को एक व्यक्तिगत स्तर रह गया। साहित्यिक कहानी का कोई स्थायी स्वरूप नहीं बना है, हाँ, नये होते रहने की प्रक्रिया से सम्बन्ध अवश्य है, इसलिये इनमें समसामयिक बोध और संवेदना की पकड़ कई स्तरों पर है। एक ही कहानीकार की दो कहानियों में अनुभव के दो छोर मिलते हैं। काशीनाथ सिंह की 'सुख' और 'तीन कालकथा' अनुभव के विभिन्न आयामों की प्रतिक्रियाएँ अलग–अलग व्यक्त करती हैं। इसी तरह 'सुख' और ज्ञानरंजन की 'पिता' में संवेदना का एक स्तर है। प्रयाग शुक्ल की 'सांसें' में दूसरा और विनोद कुमार शुक्ल की 'झुण्ड' में तीसरा। इन विभिन्न स्तरों पर साहित्यिक कहानी क्रमशः विस्तृत हुई है। एक तरह से यह रचना दृष्टि के विकास का संकेत है इसी का असर है कि साहित्यिक 'कासमॉस' को पकड़ती है, उसे वहन करती है। 'कासमॉस' से कहानी की आन्तरिक स्थिति का बोध होता है।

सर्जनात्मकता का मतलब संभवतः यह भी है – 'सच्चाईयों का इकाई रूप में परिणत कर, उन्हें पात्रों के जरिये उजागर करना।' पात्र (इसे मैं चरित्र के अर्थ में ही लेना चाहूँगी) सच्चाईयों को वहन करने वाले होते हैं ओर इस संकल्प को रचनात्मक परिणति लेखक देता है। चूँकि सर्जनात्मकता को आगे बढ़ाने के लिये पात्रों को अनुभव–संवलित करना पड़ता है, इसलिये कहानी में अनुभव की सर्जनात्मकता का महत्व स्पष्ट है। इसके पात्र, इसका कथ्य, इसकी भाषा, इसकी स्थितियाँ, इसका संरचनात्मक गठन, सबके पीछे एक स्वीकृति है। इनका इस्तेमाल सर्जनात्मकता को अग्रसारित करने के लिये है। इनसे गहरे और नये संदर्भों का प्रतिष्ठापन होता है, समय की सच्चाई की व्याख्या होती है। गिरिराज की 'पेपरवेट', महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स', सुधा अरोड़ा की – 'अविवाहित पृष्ठ', रवीन्द्र कालिया की 'त्रास', ज्ञानरंजन की 'फेन्स के इधर और उधर', देवेन गुप्त की 'अजनबी समय की गति', विजय मोहन की 'कुछ महीने', मधुकर सिंह की 'कल' कहानियाँ सिर्फ मनोरंजन के लिये या सिर्फ आत्म–संतुष्टि के लिये यों ही नहीं लिखी गयी हैं। इनमें समझने के लायक

बहुत कुछ है। पिछले दशकों की कहानियों की उपलब्धियों को जिस तरह उल्लेखित किया गया है यानी बड़े पैमाने पर नये–नये प्रयोग हुये, विषय की दृष्टि से क्षेत्र में व्यापकता आयी आदि, ऐसा कुछ साहित्यिक कहानी के बारे में कहना मूर्खता लगता है। जिन्हें उपलब्धियाँ कहा गया है, वस्तुतः वे ही सीमाएँ हैं, जिनमें उलझकर कहानी चीख उठी थी। प्रयोग की नवीनता कुछ नहीं होती, संदर्भ नया होता है, दृष्टि नयी होती है। प्रयोग, जैसा मैं पहले भी कह चुकी हूँ, रचना–प्रक्रिया से बाहर नहीं होता। इसी तरह विषय की व्यापकता, दृष्टि की भी व्यापकता होती है। साहित्यिक कहानी की व्यापकता, रचना–दृष्टि की व्यापकता है। साहित्यिक कहानी ने मूल्यांकन के सभी प्रचलित मानदंडों को तोड़ा है। हर तरह के प्रचलित 'फार्म' से वह अलग हुई है। इसकी उपलब्धियों के मूल्यांकन के लिये नये मानदंडों की अपेक्षा है। ये मानदंड बाहर से नहीं आ सकते, कहानियों के भीतर से ही इनका निकाला जाना भरसक जरूरी मैं मानती हूँ।

(5) सचेतन कहानी

सचेतन कहानी की धारा पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों एवं विद्वानों, विशेषतः फ्रॉयड, ऐडलर और युग से प्रभावित रही है। प्रथम महायुद्ध के बाद की जीवन की विषम परिस्थितियों के फलस्वरूप विकारग्रस्त और पंगु एवं गतिहीन पात्रों का चित्रण होना और लेखकों द्वारा पात्रों का मन टटोला जाना स्वाभाविक था। इस धारा के लेखकों ने मनुष्य की असंख्य अपूर्ण इच्छाओं और कामनाओं का चित्रण किया। अतृप्त और दमित इच्छाओं द्वारा मनुष्य का जीवन संचालित होता ही रहता है। उसके मन में अनेक प्रकार की ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, मनुष्य अन्तर्मुखी हो जाता है और उसकी कार्य–प्रणाली में विचित्रता आ जाती है। उपर्युक्त तीन विद्वानों के अतिरिक्त ज्याँपाल सार्त्र, कामू, काफ्का आदि ने भी इस धारा को प्रभावित किया। फलस्वरूप सचेतन कहानियों में आत्मपरक विश्लेषण का सूत्रपात हुआ। कहानी साहित्य स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ी और कहानी का क्षेत्र मनुष्य का कर्म–क्षेत्र न होकर अन्तर्जगत् और मानस हो गया। इन कहानीकारों ने मनुष्य के अवचेतन से भरी हुई ग्रंथियों, कुरूपताओं, हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या, वासना आदि के आधार पर मानव–मन के रहस्य की गुत्थियाँ सुलझाने का प्रयत्न किया। इस आत्मपरक विश्लेषण की धारा ने शिल्प–सम्बन्धी नये–नये प्रयोग किये और सांकेतिकता तथा प्रतीकों के प्रयोग एवं बौद्धिकता के आग्रह से कहानी

जटिल से जटिलतर होती गई। यहाँ तक कि अनेक सामयिक कहानी लेखक जैसे निर्मल वर्मा ('दहलीज', 'कुत्ते की मौत'), नरेश मेहता ('चाँदनी', 'अनबीता व्यतीत'), मोहन राकेश ('कई एक अकेले', 'पाँचवे माले का फ्लैट), राजेन्द्र यादव ('शहर के बीच एक वृक्ष', 'किनारे से किनारे तक'), कमलेश्वर 'तलाश', 'पीला गुलाब'), अमरकान्त ('खलनायक'), श्रीकांत वर्मा ('टेरसो') सुरेश सिनहा ('पानी की मीनारें', 'नीली–धुंध के आर–पार', 'कई कुहरे'), आदि भी इस आत्मपरक विश्लेषण की धारा से एकदम अलग नहीं हैं – यद्यपि इन लेखकों में सामाजिक संचेतना, यथार्थ की पकड़, व्यक्ति की मर्यादा, व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, सामयिक भावबोध, परिवेश की यथार्थता और अपनी संगति–प्रतिबद्धता की भावना पिछले खेमे के कहानीकारों से अधिक गहरी और तीव्र है।

द्वितीय महायुद्ध (1939–1945) और स्वतन्त्रता की प्राप्ति (1947 ई.) के बाद की सचेतन कहानियों में अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिवेश के कारण नवीन युग के भाव–बोध के प्रति सजगता, और नई दिशाओं की खोज और भी अधिक तीव्र हो उठी है। इस प्रकार की कहानियों को 'नई कविता' की तर्ज पर 'नई कहानी' (1950 से) प्रदान की गई। 'नई' या 'नया' शब्द अपने में बुरे नहीं है। किन्तु दुर्भाग्यवश हिन्दी में इन दोनों शब्दों से साम्प्रदायिकता और दलबन्दी की बू आती है। उसे केवल 'सामयिक कहानी' या सचेतन कहानी के नाम से सम्बोधित किया जाये तो अधिक उपयुक्त होगा। ऐसी कहानी में हिन्दी कहानी की प्रकृति और परम्परा सुरक्षित रहते हुये भी, उसमें सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना व्यक्त होते हुये भी, वह अधिक सूक्ष्म हो गई है। प्रेमचन्द्र के बाद हिन्दी के कहानी–लेखक रोमांसपूर्ण कहानियाँ लिखने लग गये थे। किन्तु धीरे–धीरे हिन्दी के कहानी–लेखकों ने प्रेमचन्द्र की 'कफन' कहानी का मार्ग पकड़कर यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक कहानियों का सर्जन किया। उन्होंने निस्संकोच वर्तमान युद्ध और जीवन के कथानक चुने, मध्यम वर्ग के जीर्ण जीवन का चित्रण किया। व्यक्ति के मन का विश्लेषण किया, स्त्री–पुरुष के प्रेम का चित्रण किया और आधुनिक जीवन की मानसिक और भौतिक विषमताओं से कहानियों का कलेवर पूर्ण किया। द्वितीय महायुद्ध के बाद के कहानी–लेखकों ने अपने चारों ओर के जीवन से सम्बद्ध युग–सत्य को वाणी प्रदान की। आज की कहानी ने मानव–मन को पहले की अपेक्षा अधिक गहराई के साथ नाप कर उसे शिल्पगत नवीन रूप प्रदान किया है। उसके विषय–चयन और टेकनीक दोनों में नवीनता है। आधुनिक जीवन के विभिन्न पार्श्व आज की सचेतन कहानियों में देखे जा

सकते हैं। उनमें आधुनिक युग–बोध एवं भाव–बोध अपने अच्छे–बुरे रंगों एवं विभिन्न आयामों के साथ बोल रहा है। 1950 के बाद की इस प्रकार की कहानियों में मोहन राकेश की 'मिस पाल', कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ', राजेन्द्र यादव की 'टूटना', अमरकान्त की 'जिन्दगी ओर जोंक', निर्मल वर्मा की 'लन्दन की एक रात', रेणु की 'तीसरी कसम', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला', कृष्णा सोबती की 'सिक्का बदल गया', मन्नू भण्डारी की 'आकाश के आईने में', सुरेश सिन्हा की 'एक अपरिचित दायरा', रवीन्द्र कालिया की 'बड़े शहर का आदमी', ज्ञानरंजन की 'फेन्स के इधर और उधर' आदि कहानियों के रूप में स्वीकार की जा सकती हैं।

इन लेखकों ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति और द्वितीय महायुद्ध के बाद की कहानियों को नई दिशा और भाषा को नई अर्थवत्ता दी है। उन्होंने पात्रों को अभिनव यथार्थ के नये पार्श्व दिये हैं और मानव–मूल्य तथा मर्यादा एवं समकालीन जीवन में सन्निहित आधुनिक संचेतना अभिव्यक्त कर नवीन स्थितियों को गरिमा दी है। वास्तव में कहानी–कला की अपनी सीमाएँ हैं। कहानी–लेखक एक महाकाव्यकार की भाँति जीवन पर दृष्टिपात नहीं करता। जीवन की आंशिक अभिव्यक्ति ही कहानी के लिये उपयुक्त सिद्ध होती है। इसीलिये आज की किसी एक कहानी या कहानी–लेखक को लेकर नहीं, वरन् कहानियों में व्यक्त जीवन–खण्डों को मिलाकर देखने से आज के जीवन का सच्चा 'पैटर्न' दिखाई दे सकता है। आज का कहानी लेखक अपनी कला की प्रकृति के अनुसार नव–युग की संवेदनाओं को प्राप्त करते हुये, नवीन समस्याओं की जटिलता और चुनौती को स्वीकार करते हुये नित नवीनता से जूझ रहा है। यदि वह अपनी कला की उत्कृष्टता की ओर सचेत है, तो जीवन–सत्य को गहराई से देखने, जीवन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के प्रति भी सतत् प्रयत्नशील है।

मानव–जीवन के वर्तमान संक्रमण–काल में जब वैज्ञानिक प्रगति, चन्द्रलोक की यात्रा, परतन्त्र से स्वतन्त्र हुये राष्ट्र और नीचे से ऊपर उठे हुये लोक परम्परागत मानव–जीवन को चुनौती दे रहे हैं, तो सचेतन कहानी लेखक का उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है। जब कि सारे संसार की परम्परागत जीवन–पद्धति में दरारें पड़ गई हैं, ऐसे समय में हिन्दी का कहानी–लेखक मानवता की रक्षा और जीवन की विकृतियाँ झाड़–झंखाड़ दूर करने में प्रवृत्त हो तो कोई आश्चर्य नहीं। सन्तोष का विषय है कि नये कहानीकारों की एक नई परम्परा उभर रही है जो पिछली अनुकरण–प्रवृत्ति या चौंकाने वाली बातें कहने के स्थान पर

अपनी कला के गरिमापूर्ण दायित्व के प्रति सचेत है। उनका मनुष्य बाहर से ही नहीं, भीतर से भी सक्रिय है।

आज की कविता, कहानी और उपन्यास के सन्दर्भ में 'सचेतन' भी एक बहुचर्चित विषय बन गया है। 'सचेतन' या 'संचेतना' सापेक्षिक शब्द हैं और साहित्य में समय–समय पर आते रहते हैं। लेकिन आज जीवन–क्रम इतनी तेजी से बदल रहा है कि 'आधुनिकता' की पकड़ आवश्यक समझी जाने लगी है। द्वितीय महायुद्ध के बाद विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने इतनी तीव्र प्रगति की है कि उससे संसार के जीवन का पैटर्न तेजी के साथ बदलता जा रहा है। पुराने मूल्य खण्ड़ित और विघटित हो गये हैं। उनके स्थान पर नये मूल्य बन नहीं पा रहे हैं। विज्ञान की प्रगति से मनुष्य को सुख–सुविधाएँ ही प्राप्त नहीं हो रहीं, वरन् उसके पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी ऐसे अनेक परिवर्तन हो रहे हैं जिनके साथ उसका मानसिक सामंजस्य स्थापित नहीं हो पा रहा है और जिसके फलस्वरूप आज का मनुष्य 'Split Personality' और 'Frustration' का साक्षात् उदाहरण है। ऐसी परिस्थिति में 'आधुनिकता क्या है' पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। कुछ लोग पश्चिमी जीवन और वस्तुओं, आचार–विचार और नैतिकता का अनुकरण करने को ही 'आधुनिकता' मान बैठे हैं। नग्न सेक्स, डान्स, रेस्त्रां, शराब, सिगरेट, विवाहिता पत्नी को छोड़कर प्रेमिकाओं के साथ रहना, पति–पत्नी का कलह, तलाक, पारिवारिक विषमताओं और कुण्ठाओं आदि को वे 'आधुनिकता' समझते हैं। किन्तु 'आधुनिकता' के प्रति यह गलत दृष्टिकोण है। आधुनिकता बाह्य साधनों और उपकरणों तक सीमित न रहकर निरन्तर प्रवाहमान जीवन को समझने का सतत् प्रयास है। वह ऐसा जीवन–मूल्य है जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के प्रकाश में सामान्य मानव को स्थापित करता है। भारतीय संस्कृति में भी ऐसे तत्व विद्यमान हैं जो 'आधुनिकता' की इस कसौटी पर खरे उतर सकते हैं। सचेतन कहानी में इनका वर्णन देखने को मिलता है।

जहाँ तक सचेतन कहानी में से शिल्प सम्बन्ध की बात है उसमें आज का कहानीकार छोटे–छोटे जीवन–खण्ड लेकर चलता है और स्थानीय आचार–विचार, रीति–नीति, भाषा, विशिष्ट शब्दावली, जीवन के विविध रंग आदि का समावेश कर कलात्मक वैशिष्ट्य उत्पन्न करता है। कुछ कहानियों में लोकगत्यात्मकता प्रमुख रूप से दिखाई देती है और वे 'एनेक्डोटल' हो जाती हैं। जीवन की कुरूपता और विघटनकारी शक्तियों के फलस्वरूप

उत्पन्न घुटन, कुण्ठा, निराशा, सेक्स, कटुता, भग्न आकांक्षाएँ आदि आज की सचेतन कहानियों के प्रमुख विषय बने हुये हैं। किन्तु कहानी अब भी कहानी है। उसमें संसार की अन्य कहानियों की भाँति, कथानक का ह्रास पाया जाता है। किन्तु उसकी क्षति–पूर्ति पात्रों के चरित्र, उसके मन को कुरेदने और उसके व्यक्तित्व को उभारने में हो जाती है। कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें रेखाचित्र, संस्मरण, निबन्ध और रिपोर्ताज के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे 'स्केचेज' जैसी प्रतीत होती हैं। पश्चिम में तो सचेतन कहानी को 'स्टोरी पौयजन' कहा जाने लगा है। आज की हिन्दी कहानी में कथानक की स्थूलता के स्थान पर मन की सूक्ष्मता, मनुष्य का अपने मन से संघर्ष, वातावरण और सामाजिक परिप्रेक्ष्य की प्रधानता हो चली है। घटना और पात्रों की अवतारणा किसी वैचारिक विशेषता या 'मूड' या जीवन का कोई विशेष सूक्ष्म पक्ष उभारने की दृष्टि से की जाती है। उसमें नई आस्थाएँ और भाव–भूमियाँ रहती हैं। भोगा हुआ क्षण और अनुभूति की प्रामाणिकता उसका शिल्पगत लक्ष्य है। उसमें कथ्य प्रमुख होता है, किन्तु उसे चुनने की दृष्टि नई होती है। उसकी भाषा, उसके कथ्य और साक्षात् बोध के अनुरूप होती है। इस समान रूप से पाई जाने वाली शिल्पगत प्रमुख विशेषताओं के रहते हुये भी, यह कहना ही उचित होगा कि आज की सचेतन कहानी का कोई कटा–छँटा, चुस्त–दुरूस्त ढाँचा नहीं है। कलात्मकता, पात्र और कथोपकथन तो आज की अनेक कहानियों में जैसे गायब ही हो गये हैं इसके स्थान पर आत्म–विश्लेषण एवं अनुभूति की प्रधानता रहती है। आत्म्–संघर्ष और अनुभूति की ठीक–ठीक अभिव्यक्ति ही उसके शिल्प की सार्थकता है। आज के विघटित होते हुये जीवन की परिस्थितियों को लेकर कहानीकार आत्म–विश्लेषण और मानसिक द्वन्द्व एवं जीवन–संघर्ष की अभिव्यक्ति कभी समष्टिगत चिन्तन के आधार पर करता है, तो कभी व्यक्तिगत चिन्तन के आधार पर। आज की सचेतन कहानी का शिल्प विविधता–सम्पन्न है। अनुभूति और कथ्य की सच्ची अभिव्यक्ति के अतिरिक्त उसका 'प्रसाद'–प्रेमचन्द्र–युग जैसा कोई नपा–तुला मानदण्ड नहीं है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि आधुनिक सचेतन हिन्दी कहानी ने अब तक पर्याप्त उन्नति कर् ली है। पहले कहानी केवल विनोद के लिये लिखी जाती थीं तथा पत्र–पत्रिकाओं में पाठकों के विनोद के लिये ही कहानियों का होना आवश्यक समझा जाता था – उनका सचेतन मूल्य विशेष न था, परन्तु समय के साथ क्रमशः कहानी के रूप और शैली में विकास होता रहा और धीरे–धीरे कहानी भी एक साहित्यिक रूप की श्रेणी में आ गई। प्रेमचन्द्र,

'प्रसाद', 'सुदर्शन', जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, 'अज्ञेय' से लेकर निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश इत्यादि कहानी–लेखकों की प्रतिभा इस सचेतन रूप में चमक उठी है। यह केवल एक साहित्यिक रूप ही नहीं रह गई है, वरन् क्रमशः एक साहित्यिक परम्परा में परिवर्तित होती जा रही है। आजकल कवि, नाटककार, उपन्यासकार और निबन्ध–लेखक भी सचेतन कहानियाँ लिखना एक साहित्यिक कर्तव्य मानने लगे हैं। इस दृष्टिकोण से सचेतन कहानी–साहित्य का भविष्य बहुत ही उज्जवल दिखाई पड़ता है।

(6) समकालीन कहानी

'समकालीन कविता', 'समकालीन नाटक', 'समकालीन उपन्यास', 'समकालीन कहानी' के अभियान हम साहित्य–चर्चा में आये दिन सुनते और पढ़ते हैं। साहित्य–सन्दर्भ में 'समकालीन' और 'समकालीनता' मिथक बने रहे हैं, जब चाहे इनका मनचाहा प्रयोग किया जाता रहा है। नवलेखन के संदर्भ में इस संज्ञा की सही अवधारणा से परिचित होना नितांत आवश्यक है। जिस प्रकार 'आधुनिक' और 'आधुनिकता' के प्रति एक व्यामोह सुदीर्घ समय तक परिव्याप्त रहा, उसी प्रकार 'समकालीन' और 'समकालीनता' की अनेक भ्रांत धारणाएँ समय–समय पर सामने आयीं। हिन्दी शोध और समीक्षा – दोनों में सक्रियता से इनका प्रयोग हो रहा है और कभी उसकी सीमा–रेखा 1950 ई. से बाद के साहित्य के लिये स्वीकार कर ली जाती है तो कभी 1960 के बाद के साहित्य को 'समकालीन' कहा जाता है। अब समय आ गया है कि हिन्दी–समीक्षा इस शब्द का सुनिश्चित अर्थ निर्धारण करे। यहाँ यही प्रयास करते हुये मैं हिन्दी कहानी के संदर्भ में 'समकालीन कहानी' की अवधारणा पर विचार करूंगी।

अनेक शोध–ग्रंथों, समीक्षा–पुस्तकों, लेखों आदि में 'समकालीन' और 'समकालीनता' को परिभाषित करने के बहुविध प्रयत्न हुये हैं। कहीं इसे प्रवृत्तिगत तो कहीं मात्र समयबोधक अर्थ में स्वीकारा गया है। जिस प्रकार कुछ समय पहले प्रत्येक 'आधुनिक' ने 'आधुनिकता' की व्याख्या करना अपना 'परम पावन' कर्तव्य समझा, उसी प्रकार समकालीन साहित्यकारों ने 'समकालीनता' को अपने–अपने दृष्टिकोण को व्याख्यायित किया। विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोध–प्रबन्ध भी अपने–अपने रूप में 'समकालीनता' को स्पष्ट कर रहे हैं। 'आधुनिकता' की तो एक सार्वभौम धारणा अब बन भी चुकी है, किन्तु 'समकालीनता' को अपने–अपने ढंग

से जाँचने–परखने का क्रम अभी जारी है। 'समकालीन', 'समकालीनता' और 'समसामयिकता' की विभिन्न अर्थ–व्याख्याओं को पढ़कर भाषा–सम्बन्धी इस सिद्धान्त का स्मरण हो जाना स्वाभाविक है कि शब्द का निजी अर्थ, कोशगत अर्थ इतना प्रमुख नहीं होता, वह प्रयोग के द्वारा अर्थ आयत करता है। इस क्रम में कभी शब्द का अर्थ–संकोच होता है तो कभी अर्थ–विस्तार।

'समसामयिकता', 'समकालीनता' और 'आधुनिकता'

'समसामयिकता' और 'समकालीनता' अपने मूल अर्थ में अंग्रेजी के 'कोइवल' अथवा (Coeval) 'कन्टेम्पोरेनिटी' (Contemporaneity) शब्दों के समतावाची हैं जिनका अर्थ है "उसी समय या कालखंड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखंड में जी रहे व्यक्ति।" किन्तु आज के साहित्य–संदर्भ में बहुत कम लेखकों ने इसके मूल अर्थ को ग्रहण किया। डॉ. शिवप्रसाद सिंह 'समसामयिकता' को उसके मूल अर्थ में ग्रहण करते हुये इसे आधुनिकता से अलग मानते हैं : " 'समसामयिकता' कलेवर की चीज होती है। आधुनिकता समसामयिक बिखराव और कलेवरगत उथल–पुथल के भीतर निरन्तर प्रवाहित गतिशील चेतना को समझने का दृष्टिकोण है। .... इसलिये समसामयिक को आधुनिक मान लेना जोखम है।"[51] डॉ. नगेन्द्र समसामयिकता को सीमित संकुचित अर्थ में ही आधुनिकता के समकक्ष मानते हैं, "........ आज के सीमित संदर्भ में आधुनिक का एक संकुचित अर्थ 'समसामयिक' भी उभरकर सामने आया है। इस संदर्भ में आधुनिकता का अर्थ है वर्तमान का युगबोध, यही दृष्टि वर्तमान पर ही केन्द्रित रहती है।"[52] समसामयिकता और आधुनिकता की इस अर्थ–संयुक्ति को डॉ. नीहाररंजन रे जैसे प्रख्यात चिंतक पूर्णतः एकमेक ही कर देते हैं।, उनका मत है कि 'समसामयिकता' शब्द 'आधुनिकता' की अवधारणा को बेहतर ढंग से मूर्त करता है।[53] किन्तु श्रीपतराय 'समसामयिक' और 'आधुनिक' को अलग–अलग अर्थों में स्वीकारते हैं : "समसामयिक और आधुनिक में जो अन्तर है, वह केवल समय का ही नहीं, अर्न्तदृष्टि का भी है। कदाचित रचना–विधान का भी है।"[54]

'आधुनिक' और 'आधुनिकता' से सम्बद्ध करके ही 'समसामयिक' और 'समकालीन' को नहीं देखा गया, अपितु उन दोनों के अन्तर्सम्बन्ध पर भी खूब चर्चा हुई। डॉ. रमेश कुन्तल मेघ 'समसामयिकता' में सामयिक बोध की स्थिति स्वीकारते हैं : "समसामयिकता' ('कन्टेम्पोरेनिटी')

पूरे युग का एक आत्यंतिक सामाजिक–ऐतिहासिक बोध नहीं है। प्रत्येक युग में कई समसामयिकताएँ हो सकती हैं।''[55] डॉ. चन्द्रशेखर 'समकालीनता' को 'आधुनिकता' की प्रक्रिया को गतिवान बनाने वाली ही नहीं, अपितु नया अर्थ प्रदान करने वाली मानते हैं। 'समकालीनता' और 'समसामयिकता' का अन्तर बताते हुये वे निष्कर्षतः कहते हैं : ''...... समकालीनता समसामयिकता की आधुनिकता है अर्थात उसकी सप्रश्नता अथवा प्रश्नशीलता है।''[56]

हिन्दी कहानी के संदर्भ में भी 'समकालीनता' और 'समकालीन' पर विचार किया गया है। डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने 60 के बाद की कहानी को 'समकालीन कहानी' का अभिधान तो दिया ही था, उसे इस रूप में परिभाषित भी किया : ''समकालीन का अर्थ यह नहीं है कि दो व्यक्ति एक विशेष काल–खंड में जी रहे हों और संयोग से वे रचनाशील भी हों। .... जिस समकालीन या समकालीनता की चर्चा सन् 60 के बाद की कहानी के सम्बन्ध में की जा रही है, उसका 'शब्दार्थ की धारणा' से सम्बन्ध नहीं है, अपितु वह जीवन–बोध के आधार पर समानधर्मा रचनाकारों के बोध की समानदर्शिता है।''[57] डॉ. विमल के इस कथन से भी यह प्रदर्शित होता है कि समकालीनता और आधुनिकता की एक पहचान है। डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय 'समकाल' और 'समकालीनता' की अर्थ–व्याख्या करते हुये कहते हैं : '' 'समकाल' शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खंड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है। इसे उलटकर कहें तो कहेंगे कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर उसे अंकित–चित्रित करके ही हम 'समकालीनता' की अवधारणा को समझ सकते हैं। शर्त यही है कि लेखक आज के (देश–काल स्थित) मनुष्य के अंकन में वस्तुगत रहे यानी उसके चित्रण की विधि कोई भी हो लेकिन उससे जो मानव–बिम्ब उभरता हो, वह वास्तविक जीवन के निकट हो।''[58] डॉ. उपाध्याय इस प्रकार अपने कथन में यथार्थ–चित्रण पर बल देते हैं। डॉ. नरेन्द्र मोहन ने भी कहानी के संदर्भ में 'समकालीनता' पर विचार किया है। वे इसे काल–परक अर्थ में बिल्कुल ग्रहण नहीं करते, क्योंकि वह 'तात्कालिकता' हो जायेगी, ''समकालीनता' का अर्थ किसी कालखंड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण–भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है। .... समकालीनता तात्कालिकता नहीं है।''[59] किन्तु अपने युग की सामयिकता को चित्रित करते हुये उसमें चिन्तना का अंश

जोड़ना, जिसका जिक्र नरेन्द्र मोहन 'मूल स्रोत' तक पहुँचने आदि के द्वारा करते हैं, जो किसी भी श्रेष्ठ साहित्य का आवश्यक धर्म है। प्रेमचन्द्र का साहित्य भी तो इसी का ज्वलंत उदाहरण है। यदि श्रेष्ठ साहित्य का प्रस्थान–धरातल ही यथार्थ–बोध और लेखकीय चिन्ता है तो फिर 'समकालीनता' किस अर्थ में पूर्ववर्ती साहित्य परम्परा से अलग है ? उपर्युक्त समस्त विचार–सारणियों में प्रायः ही 'समकालीनता' की आन्दोलन–धर्मी व्याख्या हो गयी है। समकालीनता की इन प्रवृत्तियों से सहमत होते हुये भी साहित्य में उसके अवतरण की सीमा–रेखा 1960 ई. मान लेना सहज स्वीकार्य नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता के प्रभाव हमारे साहित्य पर 1950 ई. के बाद से ही देखे जा सकते हैं। तो क्या 1960 ई. तक आते–आते भारतीय परिदृश्य की परिस्थितियाँ किन्हीं कारणों से बदली हैं जिनसे साहित्य भी प्रभावित हुआ ? यदि नहीं तो फिर सन् 60 के बाद के साहित्य को ही 'समकालीन' की संज्ञा से क्यों अभिहित किया जाये ? इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रगतिवादी आन्दोलन के बाद साहित्य में यथार्थ–चित्रण का मुहावरा बदला था। इसलिये 'समकालीनता' में यथार्थ–चित्रण का नया मुहावरा तो है ही, किन्तु हमें उसकी काल–परक, प्रारम्भ होने की, सीमा–रेखा भी स्वीकारनी होगी जो निश्चिततः 1960 ई. नहीं हो सकती। 1960 ई. को समकालीन साहित्य का प्रारम्भ बिन्दु मानने का कोई आधार ही नजर नहीं आता, पता नहीं क्यों कविता, कहानी–सभी में 'साठोत्तरी' का 'रिवाज' चल पड़ा। धड़ल्ले से सन् 60 के बाद के साहित्य को 'समकालीन' कहा गया है। कहानी–संदर्भ में इसके अनौचित्य पर पहले निबन्ध में विचार किया जा चुका है। सन् 1965 ई. उनके समाजार्थिक एवं साहित्यिक कारणों से हिन्दी कहानी में 'समकालीनता' की दहलीज है।

यदि समकालीन कहानी के मूल्यांकन में 'समकालीनता' को केवल प्रवृत्तिगत अर्थ या आन्दोलनबद्ध दृष्टि से स्वीकार कर लिया जाये तो एक बड़ी भारी विसंगति रह जाती है। वह है 'समकालीन' के अन्तर्गत केवल उन्हीं कहानीकारों की चर्चा जो सातवें दशक या उससे बाद के समय में उभरकर हिन्दी कहानी–क्षितिज पर आयी है। किन्तु यदि निस्संग दृष्टि से देखा जाये तो सन् 60 से पूर्व के अनेक कहानीकार जिन्होंने कभी पाँचवे–छठें दशक से या इससे पूर्व भी कहानी–रचना प्रारम्भ की थी या जो कभी 'नयी कहानी' आन्दोलन से सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे, इस कालावधि में भी सार्थक कहानियाँ रचते रहे और उनका यह लेखन पूरी तरह समकालीन कहानी के मुहावरे से जुड़ा रहा है। इस काल में कुछ ऐसे कहानीकार

भी हुये हैं जो अभी तक पारम्परिक ढंग की कहानियाँ ही लिख रहे हैं, प्रबुद्ध पाठक वर्ग का ध्यान इन कहानियों की ओर आकृष्ट नहीं हो सका है। ऐसे कहानी–साहित्य को सुविधापूर्वक 'समकालीन' कहानी से बाहर रखा जा सकता है। इस स्थापना के आधार पर समकालीन कहानीकारों को चार वर्गों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है :

1. नयी कहानी–आन्दोलन के पूर्व के कहानीकार
2. नयी कहानी के हस्ताक्षर
3. आन्दोलनबद्ध दृष्टि से असंपृक्त लेखक
4. समकालीन कथाकारों की पीढ़ी।

प्रथम वर्ग में नयी कहानी–आन्दोलन से पूर्व के ऐसे अनेक कहानीकार इस समय रचना–प्रवृत्त रहे हैं जिन्होंने पाँचवें–छठे दशक से पूर्व कहानी–रचना प्रारम्भ की थी, यथा–यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', विष्णु प्रभाकर आदि। इनमें से कुछ कहानीकारों की कहानियाँ आठवें दशक के अंत तक कहानी की स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं ''[60] तथा इनमें से कुछ कहानीकारों के संग्रह भी समकालीन कहानी के दौर में प्रकाश में आये हैं।''[61]

'नयी कहानी–आन्दोलन' से जुड़े अनेक कहानीकार समकालीन कहानी की अवधि में बहुत सुन्दर और सशक्त कहानियाँ लिखते रहे हैं, यथा–निर्मल वर्मा, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, अमरकांत, भीमसेन त्यागी, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी, कृष्ण बलदेव वैद आदि। (संदर्भों में इन कहानीकारों के कृतित्व के नाम उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये गये हैं, इनके अतिरिक्त भी कहानीकार हैं – इन सभी को समकालीन कहानी पर लिखते समय समुचित मान नहीं दिया गया है।) समकालीन कहानीकारों में दूसरा वर्ग इन्हीं लेखकों का माना जाना चाहिये।

तीसरी श्रेणी में हम उन कहानी–लेखकों को रखना चाहूँगी जो नयी कहानी के समय से ही या उसके बाद में कहानी लिखते आ रहे हैं, किन्तु कभी भी उन लेखकों को अपने को हिन्दी कहानी के किसी खास आंदोलन या खेमे से सम्बद्ध नहीं किया और समकालीन कहानी के समय में भी ये रचना–रत रहे हैं, यथा–चन्द्र किरण सौनरेक्सा, शशिप्रभा शास्त्री, ब्रह्मदत्त, राधाकृष्ण आदि।

समकालीन कहानी में चौथी श्रेणी उन लेखकों की है जो सातवें और आठवें दशक में ही कहानी–क्षितिज पर उभरकर आये और अब तो नवें दशक के कहानीकार भी इसी वर्ग में आयेंगे। वस्तुतः समकालीन कहानी सम्बन्धी मूल्यांकन में कैमरे का फोकस इन्हीं लेखकों पर केन्द्रित रहा है। इस कथा–पीढ़ी को मैं समकालीन कहानी–लेखन के केन्द्र में मानती हूँ। समकालीन कथा–पीढ़ी के लेखन को समकालीन कहानी की मुख्यधारा मानना तो पूरी तरह सही है, किन्तु इनके प्रभा–आलोक में पूर्ववर्तियों को विस्मृत कर देना सर्वथा अनौचित्यपूर्ण है। इस वर्ग के कहानीकारों के नाम उदाहरणस्वरूप गिनाना तो काफी जोखिम भरा काम है, क्योंकि सूची को चाहे जितनी तटस्थता और निष्ठा से बनाया जाये, फिर भी कुछ कहानीकारों के नामों के छूट जाने का खतरा बना ही रहेगा। आज इतनी अधिक कहानियाँ लिखी जा रही हैं, कि सभी कहानीकारों के नाम गिनाना असम्भव–सा लगता है। फिर भी उन कहानीकारों के नामों को निर्दिष्ट करना समीक्षा का दायित्व है जिन्होंने इस दौर में बहुत अच्छा लिखा या सार्थक लिख रहे हैं। इसी दायित्व का निर्वाह करते हुये इस वर्ग के कहानीकारों में प्रमुख नाम इस प्रकार हैं – ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह, जगदीश चतुर्वेदी, माहेश्वर, गोविन्द मिश्र, गिरिराज किशोर, परेश, से. रा. यात्री, महीप सिंह, रमेश चन्द्र शाह, सिद्धेश, दामोदर सदन, शानी, कृष्णा अग्निहोत्री, सतीश जमाली, कामतानाथ, हिमांशु जोशी, अवध नारायण मुद्गल, सुरेन्द्र अरोड़ा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, दीप्ति खण्डेलवाल, निरुपमा सेवती, चित्रा मुद्गल, मुद्राराक्षस, रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, सुदर्शन नारंग, राकेश वत्स, सुरेश सेठ, जितेन्द्र भाटिया, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजुल भगत, बलराम, धीरेन्द्र अस्थाना, संजीव ध्रुव जायसवाल, विजय चौहान, सुनीता जैन, सूर्यबाला, मालती जोशी, मणिका मोहिनी, सिम्मी हर्षिता, मृणाल पाण्डे, आशीष सिन्हा, प्रभु जोशी, सुदीप, इन्दुबाली, श्रवण कुमार, हृदयेश, नरेन्द्र कोहली, बदीउज्जमाँ, मोहन थपलियाल, बटरोही, शरणबन्धु, वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता, चन्द्रप्रकाश पाण्डेय, हरदर्शन सहगल आदि–आदि। जो नाम रह गये हैं उनसे मैं व्यक्तिगत रूप से क्षमा–प्रार्थना करती हूँ। यहाँ एक बात मैं स्पष्ट करना आवश्यक समझती हूँ कि उपर्युक्त सूची में लेखकों का कोई वरीयता–क्रम या अन्य कोई क्रम नहीं हैं, सहज भाव से जो नाम याद आये हैं वह मैं लिख गयी हूँ। मेरे विचार से समकालीन समयावधि (या दौर) में रचित समग्र कहानी–साहित्य के सम्यक मूल्यांकन का यही उपयुक्त आधार हो सकता है।

समकालीन कहानीकार द्वारा यथार्थ को नयी दृष्टि से देखने से आज की कहानी में जीवन की विविधवर्णी समस्याएँ अपनी पूरी गहराई और विस्तार में अंकित हुई हैं। ये समस्याएँ एकदम नयी न होकर उनका क्षेत्र विस्तृत और ट्रीटमेंट कहानी के लिये बिल्कुल अलग है। जिस प्रकार नयी कहानी का कथ्य अपनी पूर्ववर्ती कहानी से बिल्कुल अलग है, वैसा यहाँ नहीं है। अपनी पूर्ववर्ती कहानी से नयी कहानी के अलगाव के बिन्दु सुविधापूर्वक पहचाने जा सकते थे, किन्तु नयी और समकालीन कहानी के बीच की विभाजक रेखा या पहचान के बिन्दु इतने स्पष्ट नहीं हैं, जिसका कारण यह है कि कथ्य का क्षेत्र नयी कहानी वाला होकर भी उसमें और अधिक नये आयाम उद्घाटित हुये हैं। उदाहरणार्थ, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के प्रति एक बदली हुई दृष्टि नयी कहानी के दौर में भी मिलती है, पर यही दृष्टि समकालीन कहानी के समय में बदल जाती है, यह कहानी और जीवन के विकास की सहज प्रक्रिया है। आंदोलनबद्ध दृष्टि की लफ्फाजी ने समकालीन कहानी के अलग होने की तो बात बार–बार की, किन्तु उसकी पहचान के अलग बिन्दुओं को रेखांकित करने का काम कम किया। समकालीन कहानी के कथ्य के मुख्य सरोकारों का विवरण देते हुये पहचान के अलग बिन्दुओं को निम्न प्रकार रेखांकित किया जा सकता है।

परिवेश के प्रति सजग दृष्टि

अपने परिवेश को पहचानने का प्रयास नयी कहानी में ही प्रारम्भ हो जाता है, किन्तु वहाँ दृष्टि में इतनी सजगता नहीं है। समकालीन कथाकार परिवेश के प्रति अत्यन्त जागरूक है, इसलिये अपनी कहानियों में वह बहुत अंतरंग रूप से इससे जुड़ा है। इसीलिये आज कहानी में समस्याएँ इतनी प्रमुख हो उठी हैं। परिवेश से जुड़ने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि लेखक शोषित और दलित वर्ग का प्रतिनिधि बनकर उनके साथ जलूस या हड़ताल और धरनों में भाग ले, अपितु समाज में इन स्थितियों को देखकर उनके प्रति अपनी रचनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करे। समकालीन कहानीकार ने समाज के विभिन्न अंगों की गलाजत को दृष्टिगत रखकर अपनी रचना में उन प्रश्नों और चिंताओं को उठाया जिनसे वे सब जूझ रहे हैं, "लेखक के रूप में उनसे अधिकाधिक गहरे और संश्लिष्ट रूप में जुड़ा रहना है जिससे पता रहे कि समाज के ये विभिन्न अंग क्योंकर अपनी जिन्दगी जीते हैं, क्या खाते हैं, कैसे रहते हैं, क्या सोचते हैं, आपस में क्या बातें करते हैं, उनकी ज्वलंत समस्याएँ क्या

हैं। यही ठोस ढंग से अपने परिवेश से जुड़ना है, अपने दिशा–काल को पहचानना है और गहरे पैठकर देखिये तो यही श्रेष्ठ लेखन का असल रक्त–मांस है" – अमृतराय।[62] आज की कहानी इसी रूप में अपने समाज से अत्यन्त गहरे जुड़ी हुई है। जीवन का खुरदरा और खाँटी यथार्थ कहानी में सूक्ष्मता से मूर्त्त हुआ है। समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक – सभी समस्याएँ यहाँ चित्रित हुई हैं। इन क्षेत्रों में फैली भ्रष्टता को एक–से–एक नये कोण से उठाया गया है। किन्तु इन्हें हम केवल एक क्षेत्र – राजनीतिक या आर्थिक – की कहानी नहीं कह सकते। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियाँ एक–दूसरे को इस प्रकार प्रभावित कर रही हैं कि वे सभी हमारे यथार्थ का एक संश्लिष्ट फलक तैयार करती हैं, इसलिये अध्ययन के सुविधार्थ हम भले ही आज कहानी को राजनीतिक, आर्थिक आदि के खानों में बाँट लें, किन्तु वस्तुतः ये यथार्थ की एक 'मिक्स्ड फॉर्म'[63] हैं। परिवेश का वही संकुल रूप आज कथाकार ने अत्यन्त सजग दृष्टि से कहानी में ग्रहण किया है। यही उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का कारण है। जीवन जीने की स्थितियों के विषमतर होते जाने से कहानियों में एक तीखापन, आक्रोश और विद्रोह का भाव स्वतः ही आ गया है। यथार्थ की ओर एक नया प्रमाण और परिवेश के प्रति अत्यन्त सजग दृष्टि – ये ही दो मुख्य आधार–भूमियाँ हैं जिनसे समकालीन कहानी की समस्त प्रवृत्तियाँ प्रेरित और स्वतःस्फूर्त हैं।

नयी मूल्य-दृष्टि

प्रत्येक समाज और पीढ़ी अपनी परिवर्तित परिस्थितियों के संदर्भ में नये जीवन–मूल्यों को स्वीकारती है। मूल्य–परिवर्तन की यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है। किन्तु विज्ञान, तकनीक तथा प्रौद्योगिकी के विकास से मूल्य–परिवर्तन की यह गति और भी क्षिप्र हो जाती है। यही कारण है कि पहले मूल्य–परिवर्तन यदि एक पीढ़ी में घटित होते थे तो आज पाँच–सात सालों में ही मूल्य–दृष्टि परिवर्तित हो जाती है। विदेशों में इस विषय में गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत हुये हैं कि तकनालॉजी किस प्रकार उनके जीवन–मूल्यों में परिवर्तन उपस्थित करती है।"[64] बढ़ता औद्योगिकीकरण मानव–ज्ञान और तर्क में वृद्धि कर प्राप्त मूल्यों को प्रश्नांकित करता है। भारतीय परिवेश में पश्चिम से आये ज्ञान–विज्ञान ने भी मूल्य–दृष्टि को गम्भीर रूप में प्रभावित किया। आधुनिकता की झोंक में हमारा समाज मूल्य–दृष्टि से एक संक्रमणशील स्थिति से गुजर रहा है। भारतीय साहित्य में रचनात्मक

मानस इन स्थितियों से साक्षात्कार करता हुआ परिवर्तित मूल्य–दृष्टि का परिचय देता है। हिन्दी कहानी में भी मूल्यों के सम्बन्ध में यह परिवर्तित दृष्टि रचनात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति पाती रही है।

औद्योगिक क्रांति के समय से ही मनुष्य का ईश्वरीय सत्ता में विश्वास कम होने लगा था। वैज्ञानिक युग की बौद्धिकतावादी दृष्टि ने अलौकिक तत्व (सुपर–नेचुरल ऐलीमेंट) और ईश्वरीय कार्यों को 'क्यों' और 'कैसे' की प्रश्नाकूल दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया था। नीत्शे आदि के 'ईश्वर मर गया है, हमने उसकी हत्या कर दी है' जैसे कथन इसी विचार–दृष्टि का परिणाम हैं। इन्हीं विचार–सूत्रों को लेकर अस्तित्ववादी धारणाओं का विकास हुआ। सार्त्र, ज्याँ जेने, कामू, बेख्त, जोसे हेलर आदि साहित्यकारों के पात्र जिस कर्मगत स्वतंत्रता की स्थापना करते हैं, वह इसी विचार–सूत्र का परिणाम है कि मनुष्य अपने भाग्य का नियामक स्वयं है। इस विचारणा ने मनुष्य को अपने कर्म में अधिक स्वतंत्र कर दिया। किसी दूसरे लोक या जीवन को सुखकर बनाने की अपेक्षा मनुष्य इसी जीवन को भरपूर रूप में भोगने (दिस–वर्ल्डलीनेस) में जीवन की सार्थकता मानने लगा। इससे जीवन में भोगवादी दृष्टि और मूल्य प्रधान हो गये। नयी कहानी के पश्चात 'अकहानी' के दौर में रचनाकारों ने अपनी कहानियों में इस जीवन–दृष्टि का भरपूर प्रयोग किया। किन्तु भारतीय अवधारणा में ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास न करने की बात आरोपित विचार–दर्शन बनकर ही रह गयी, इसलिये इस प्रकार की कहानियाँ भी अधिक देर न चल सकीं। हमारा एक चरण धर्म के पुरातन रूप की ओर ही बढ़ता रहा जिसके परिणामस्वरूप इस देश में 'आधुनिक भगवानों', 'बाबाओं' का गुरुडम बना रहा – समाज की एक विचारधारा इन्हें स्वीकारती है तो दूसरी नकारती ही नहीं, इससे बुरी तरह घृणा करती है। समकालीन कहानी में धार्मिक क्षेत्र में घटित इन परिवर्तनों को लक्षित कर अनेक कहानियाँ लिखी गयीं।

देश की बदली हुई समाजार्थिक परिस्थितियों ने सामाजिक क्षेत्र में अनेक मूल्यों में परिवर्तन उपस्थित किया। द्वितीय महायुद्धोत्तर समय में आर्थिक कारणों ने ही प्रत्येक देश के समाज का परिदृश्य बदलकर रख दिया। अर्थ और अर्थव्यवस्था आज वह धुरी बन गयी है जिसके द्वारा समाज के रीति–नीति, व्यवहार, सम्बन्ध, रिश्ते–नाते – सभी कुछ परिचालित होते हैं। संयुक्त परिवारों का विघटन, नारी का नौकरी के लिये घर से बाहर जाना, रोजी–रोटी की तलाश में ग्राम से शहर, और छोटे शहर से बड़े शहर, महानगर में पहुँचा

बहुसंख्यक वर्ग–इन सभी स्थितियों ने आत्मीय रिश्तों, सम्बन्धों की ऊष्मा को समाप्त कर दिया है। समाज–क्षेत्र की यह परिवर्तित मूल्य–दृष्टि समकालीन कहानी में तीव्रता से अभिव्यक्ति पाती रही है।

सम्बन्धों के परम्परागत रूप का नकार

इस समयावधि में संयुक्त परिवारों के टूटने की प्रक्रिया और तीव्र होती चली गयी है। परिणामतः हमारे पारम्परिक सम्बन्धों, रिश्ते–नातों में एक ऊष्मा का अभाव होता चला गया है। लगता है, भाई–बहिन, बुआ–मामा, चाचा–ताऊ आदि के सम्बन्ध रीत और छीज गये हैं। यद्यपि नयी कहानी के दौर से ही सम्बन्धों के दरकने और टूटने की कहानियाँ आने लगी थीं, किन्तु समकालीन कहानी में सम्बन्धों का यह रीतापन और तीव्रता से अभिव्यंजित हुआ है। लगता है, अर्थ का विषधर सम्बन्धों में कुंडली मारकर बैठ गया है। दृष्टि सम्बन्धों को जीने की नहीं, ढोने की हो गयी है। ज्ञानरंजन की 'पिता' इस दृष्टि से इस समय की बहुत चर्चित कहानी रही है। पिता और माता के बेगानेपन पर बहुत लेखकों ने लिखा है। गोविन्द मिश्र की 'कचकौंध', राजी सेठ की 'उसका आकाश', प्रभु जोशी की 'उखड़ता हुआ बरगद', राकेश वत्स की 'गुलाम' आदि कहानियाँ पिता की बेचारगी को रेखांकित करती हैं। 'संध्यानाद' (गोविन्द मिश्र) में माँ की दुरवस्था का चित्रण अत्यन्त कुशलता से हुआ है। काशीनाथ सिंह की ताजा कहानी (1984) 'अपना रास्ता लो बाबा' इसी कथ्य पर है, जिसमें पड़ोस के ताऊ द्वारा गाँव से लाया गया गन्ने का रस–कलश (सम्बन्धों का मधु–घट) शहर में बसे 'अपने लोगों' द्वारा नाली में बहा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त सुधा अरोड़ा की 'दमन–चक्र', दीप्ति खंडेलवाल की 'विषपायी' जैसी कहानियाँ बहन–भाई और भाई–भाई के सम्बन्धों में बदलाव को चित्रित करती हैं। कृष्णा अग्निहोत्री की 'औरत जात', मृदुला गर्ग, ममता कालिया, निरुपमा सेवती की अनेक कहानियों में सम्बन्धों का बिखराव बहुत अच्छी तरह चित्रित हुआ है। महीप सिंह की 'कितने सम्बन्ध' कहानी सम्बन्धों के इस पेंच को एक और नये कोण से प्रस्तुत करती है। "मैं उत्तर प्रदेश के एक कस्बे का रहने वाला हूँ। मेरे माँ–बाप, भाई–बहन, सभी जिन्दा हैं। मगर उनके होने का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि न तो मैं उनको खिला सकता हूँ और न वे मुझे। पिछले पाँच सालों से घर से बाहर हूँ" – माहेश्वर की कहानी 'मुत्युदण्ड' के नायक के ये शब्द आज इन सम्बन्धों की वस्तु–स्थिति को खोलते हैं।

इसी प्रकार निर्मला ठाकुर की कहानी 'बेघर दीवारें' में संयुक्त परिवार के पारम्परिक मूल्य और नयी धारणाओं ने घुटते परिवारजनों से साक्षातकार कराया गया है। व्यक्ति के वस्तु, 'कमोडिटी', के रूप में जीने की स्थितियाँ आज इन पारिवारिक इकाइयों में रह गयी हैं। वस्तुतः आज कहानी टूटते पारिवारिक सम्बन्धों और उनके बीच टूटते, दम घुटते व्यक्ति की मनःस्थितियों का बहुत सशक्त चित्रण कर रही है।

नया नैतिकता बोध एवं स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में दृष्टि का बदलाव

समकालीन कहानी स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के विविध स्तरों को अत्यन्त सूक्ष्मता और प्रामाणिकता से अभिव्यक्ति करती है। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों पर नयी कहानी के समय से ही बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी जाने लगी थीं, बिना किसी पूर्वाग्रह के इन सम्बन्धों के जिये हुये क्षणों को अत्यन्त ईमानदारी से बिना किसी चटखारे या मात्र चौंकाने की प्रवृत्ति से परिचालित न होकर, पूर्ण स्पष्टता से बेझिझक अभिव्यक्ति यहाँ मिली है। सैक्स के नाम पर 'बोल्ड' कहानियाँ और बतौर फैशन के तौर पर लिखने की प्रवृत्ति अब समाप्तप्राय हो चली है। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के सूक्ष्म–से–सूक्ष्म स्तरों, अनाम भावनाओं एवं अनछुए प्रसंगों को जिस रूप में यहाँ वाणी मिली है, वह हिन्दी कहानी की बहुत बड़ी उपलब्धि है। इन सम्बन्धों के प्रति एक ईमानदार दृष्टिकोण रखने के कारण कहानी में आज एक नया नैतिकता–बोध भी दिखायी देता है, जिसमें देह–धर्म की ईमानदार स्वीकृति देखी जा सकती है।

स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में आज सबसे बड़ी क्रान्ति विवाह और प्रेम–सम्बन्धों को लेकर हुई है। विवाह और प्रेम–सम्बन्धी यह बदली हुई दृष्टि कहानी में पूरी तरह रूपायित हुई है। आज विवाह का आधार प्रेम या भावनात्मक संवेदना, युग–युग के सम्बन्ध की आस्था या विश्वास नहीं है, अपितु उसे मात्र एक सामाजिक समझौता, साथ रहने की आवश्यकता–भर समझा गया है। कुछ कहानीकारों ने विवाह–संस्था को ही निरर्थक घोषित कर दिया है। कतिपय कथाकारों ने विवाह को नारी का शोषण मात्र माना। विवाह–संस्था के दो प्रमुख आधार थे – प्रथम, नारी की आर्थिक सुरक्षा और दूसरे, शरीर की भूख, काम की तृप्ति। आज नारी स्वयं आर्थिक दृष्टि से सक्षम है और जहाँ तक शरीर–सुख या काम–तृप्ति का प्रश्न है, स्त्री–पुरुष दोनों को ही उसे प्राप्त करने की अनेक सुविधाएँ और अवसर प्राप्त हैं। इसलिये अनेक लेखकों ने विवाह–संस्था को व्यर्थ, बेमानी घोषित कर उसे समाप्त करने की बात कही

है। विवाह और प्रेम–सम्बन्धी इस बदली हुई नयी मूल्य–दृष्टि का अध्ययन हम दो रूपों में कर सकते हैं – 'एक, इस सम्बन्ध में पुरुष कथाकारों की दृष्टि और दूसरे, महिला कथाकारों की दृष्टि।

पुरुष कथाकारों में रमेश बक्षी, जगदीश चतुर्वेदी, सुरेन्द्र चोपड़ा, माहेश्वर, पृथ्वीराज मोंगा आदि की कहानियों में विवाह सम्बन्धी यह नयी सोच विशेषतः अभिव्यंजित हुई है। रमेश बक्षी की 'पिता–दर–पिता' के 'फादर' (पादरी) कहते हैं कि ''जो शादी करते हैं वे अपने–आपके साथ मजाक करते हैं।'' एनी जिन्दा रहने के लिये विवाह को एक अनिवार्यता तो मानती है, किन्तु एक स्थान पर कहती है, ''विवाह माने खुद को समाप्त करना है।''[65] इस प्रकार विवाह यहाँ एक ऐसी विवशता बतायी गयी है जिसे ढोने के लिये मनुष्य अभिशप्त है। जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों में भी विवाह–विषयक यही मान्यता अभिव्यक्त हुई है। सात वर्ष तक साथ–साथ रहते पति–पत्नी 'फ्लर्ट' कहानी में अपने को एक–दूसरे से बहुत दूर पाकर यह अनुभव करते हैं कि उन्होंने माँ–बाप या समाज की मर्जी रखने के लिये ''कितनी बड़ी नागफांस गले में पहन'' ली है। वे इसे ऐसी अमरबेल कहते हैं जो इनसान को चाटकर ही दम लेती है। ''केवल चार–पाँच कच्ची–पक्की रोटियाँ दोनों टाइम खाने और खानदान चलाने के नाम पर व्यभिचार करने के सिवाय और क्या मिलता है, शादी से !''[66] ऐसे विचार जगदीश चतुर्वेदी की अनेक कहानियों में बिखरे पड़े हैं। सुदर्शन चोपड़ा ने तो विवाह–संस्था को एक 'पेशा', लगभग 'काल गर्ल्स' जैसा पेशा, ही बता दिया है। ''स्वीकारांत' कहानी की नायिका कहती है, ''पत्नी भी पेशा है। है ही ! फेमिली प्रॉस–कम–गवर्नेस से अधिक क्या 'हैसियत' है उसकी ! और दुनिया में सबसे बड़ा प्रोफेशन शायद यही है। सबसे अधिक बेकार भी। मगर इसकी 'ट्रेड यूनियन स्थिति' सब पेशों से अधिक मजबूत है। शायद इसीलिये अधिकतम औरतें इस पेशे में आना चाहती हैं। मगर अब इस लाइन में भी उतना स्कोप नहीं रहा।''[67] माहेश्वर की 'बन्द' कहानी में 'विवाह के पारिवारिक स्वरूप की मूल स्थापना को अस्वीकार कर' उसके 'आर्थिक आधार' को स्वीकारा गया है।[68] इस प्रकार सभी पुरुष कथाकारों ने विवाह–संस्था को किसी रोमानी दृष्टि से नहीं आँका, अपितु उनकी दृष्टि पूरी तरह व्यावहारिकता और वास्तविकता की है जिसमें पारम्परिक आदर्शों को ढोने की बात नहीं है, क्योंकि आज लेखक मनुष्य के नकली चेहरों और दोगली मानसिकता ('हिपोक्रेसी') को ओढ़ना नहीं चाहता। वह जीवन और व्यवहार के साथ नकाबों को उतार फेंकना चाहता है।

प्रेम और विवाह सम्बन्धों की इस बदली दृष्टि को महिला कथा–लेखन में और भी अधिक लक्षित किया जा सकता है। महिला कथाकारों ने नारी की विवाह के प्रति एक भावुक दृष्टि को केवल नकारा ही नहीं है, युग–युग से नारी को विवाह के पवित्र बंधन के नाम पर शोषित करने और जर–खरीद गुलाम की तरह रखने के प्रति एक आक्रोश और विवाह–संस्था को समाप्त करने की बड़ी प्रबल आन्दोलनपूर्ण दृष्टि प्राप्त होती है। इस निर्णय को लेने में उसे विवाह और मातृत्व के प्रति नारी के भावात्मक दृष्टिकोण को पूरी तरह त्यागना पड़ा है।[69] जिस विवाह के लिये नारी गौरी–पूजन आदि करके मनौतियाँ मनाती थीं कि उसे अपने जनम–जनम के पुरुष से मिला दिया जाये, उसी विवाह–संस्था को आज कहानी में एकदम व्यर्थ, मात्र औपचारिकता और छल के रूप में घोषित किया गया। मृदुला गर्ग अपनी 'तुक' कहानी में विवाह और प्रेम को पूर्ण असंगत और व्यर्थ सिद्ध करती हैं। सिंदूर जो सौभाग्य और अक्षत पातिव्रत्य का चिन्ह समझा जाता था, वही आज प्रयोजनहीन हो गया है।[70] माँग में पति का सिंदूर धारण कर भी सुविधाभोगी जिन्दगी जीने के लिये न जाने किस–किसको शरीर समर्पित करते रहने में सिंदूर का प्रयोग अर्थहीन हो जाता है।[71] आज की नारी के विवाह–सम्बन्धी विचार पिछली पीढ़ी की नारी से किस प्रकार भिन्न हुये है, इसका भी बहुत प्रभावी वर्णन कुछ कहानियों में प्राप्त होता है। इस दृष्टि से दीप्ति खंडेवाल की 'निबंध',[72] 'वह', मेहरुन्निसा परवेज की 'कयामत आ गयी है' कहानियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। इससे स्पष्ट है कि समकालीन कहानी में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर एक नया नैतिकता–बोध विकसित हुआ और इन सम्बन्धों को लेकर दृष्टि पूरी तरह परिवर्तित है।[73]

कहानी में जीवन के आर्थिक पक्ष की प्रधानता

समकालीन कहानी विषमतर जीवन–परिस्थितियों में जी रहे सामान्य मनुष्य की आर्थिक लड़ाई की पक्षधर है। 'समान्तर' जैसे आन्दोलनों ने भी कहानी का सम्मान मानव की आर्थिक समस्याओं की ओर मोड़ने में सहायता की। फलतः आज की अधिकांश कहानियाँ सामान्य मनुष्य की वह लड़ाई लड़ती दिखायी देती हैं जो विभिन्न रूपों में वह आर्थिक मुहानों पर लड़ रहा है। कठिन जीवन–संघर्ष की ये कहानियाँ मध्य वर्ग, उच्च–मध्य वर्ग और निम्न वर्ग–सभी को लक्षित कर लिखी गयी हैं। सुरसा–सा मुँह फाड़ती मँहगाई, शिक्षित बेरोजगारी, क्षमता के अनुरूप कार्य न मिल पाना, योग्यता और प्रतिभा की खुल्लमखुल्ला अवमानना आदि

पर बहुत सशक्त कहानियाँ इस दौर में लिखी गयी हैं। इसी प्रकार राशन की लम्बी–लम्बी कतारें, खाद्य वस्तुओं की दुष्प्राप्यता, मिट्टी की तेल, गैस, डीजल, सीमेंट, कार–स्कूटर–सभी की किल्लत और सभी पर ब्लैक आदि स्थितियाँ अपनी पूरी सच्चाई में कहानी में उतारी गयी हैं। एक ओर आर्थिक तंगदस्ती और दूसरी ओर जीवन जीने की हर सुविधा प्राप्त करने की ललक–इन्हीं दो तकलीफों के विरोधाभास में आज का आदमी जिन्दगी जीता है। आज व्यक्ति के जीवन में 'अँधेरे का सैलाब' (से. रा. यात्री) उमड़ आया है जिससे निकलकर वह 'बड़े जतन से बचाये' कुछ रुपयों से दीपावली की रोशनी खरीदना चाहता है। यात्री की ही 'दर्पण' कहानी उस क्लर्क की व्यथा कहती है जो अपने मित्र के बच्चे के जन्म–दिन पर किसी दूसरे मित्र से रुपये उधार माँगकर उपहार देना चाहता है। इस प्रकार यह कहानी अपने कथा–नायक की ही नहीं, अपितु नौकरीपेशा हर सामान्य आदमी की व्यथा की कहानी है।[74] मधुकर सिंह की 'सैलाब' की पत्नी भी अपने आस–पास की जिन्दगी की खुशहाली की नकल करना चाहती है, किन्तु एक दिन उधार पैसे लेकर भी अपनी जिन्दगी में वह वे सुख प्राप्त नहीं कर पाती जो उसके पड़ोसियों को प्राप्त हैं – ब्रिज खेलना, बच्चों का कॉन्वेंट में पढ़ाना, पति और बच्चों को अच्छा खाना खिलाना, आदि। सामान्य वेतनभोगी व्यक्ति किस प्रकार हर माह अपनी लड़ाई लड़ता है, इसे ममता कालिया ने 'बसंत सिर्फ एक तारीख' कहानी में बहुत अच्छी तरह चित्रित किया है, "भूख, मँहगाई, बीमारी और दुर्घटनाओं को चकमा देते हुये एक और महीना जिन्दा रह लिये" जैसी स्थितियों को जिन्दगी 'जीना' नहीं, 'ढोना' ही कहा जायेगा। रमेश चन्द्र शाह की 'कहानी', गिरिराज किशोर की 'ठंडक', भीमसेन त्यागी की 'सोफासेट', राकेश वत्स की 'ताजा रोटी की महक' और 'छुट्टी का एक दिन' सुदीप की 'कितना पानी', सिम्मी हर्षिता की 'भूख की बिक्री', प्रभु जोशी की 'फोकस के बाहर', सुधा अरोड़ा की 'साल बदल गया', श्रवण कुमार की 'मैं' आदि अनेक सशक्त कहानियाँ मनुष्य की आर्थिक मजबूरियों का प्रामाणिक अंकन करती हैं। रवीन्द्र कालिया के तो कहानी–संग्रह का नाम ही 'गरीबी हटाओ' है, किन्तु माहेश्वर ने 'मृत्युदंड' कहानी में 'गरीबी हटाओ' के नारे का खूब पर्दाफाश किया है, "यह एक नया तमाशा शुरू किया है सालो ने! हुँह! गरीबी हटाओ ! जैसे गरीबी इनके घर की नौकरानी है कि जब चाहा कान पकड़कर सड़क पर खड़ा कर दिया। गरीबी को जिन्हें हटाना होता है, वे पहले अमीरी को हटाते हैं।"[75] इस प्रकार आज कहानी में जीवन की आर्थिक समस्याएँ अपने पूरे विस्तार और विवरणों में चित्रित हुई

हैं। कोई ऐसी समस्या नहीं है जो आज जीवन में है और कहानी उससे जूझ न रही हो ! इसलिये कहा जा सकता है कि आज कहानी में जीवन का आर्थिक पक्ष ही सर्वाधिक प्रमुख होकर अभिव्यक्ति पा रहा है।

व्यवस्था के प्रति तीव्र रोष

आज व्यक्ति अत्यन्त भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था में रह रहा है, जिसके सभी क्षेत्रों में प्रदूषित और घिनौने रूप का साक्षात्कार हर व्यक्ति को पग–पग पर होता है। राजनीति, समाज, धर्म, शिक्षा, प्रशासन, पुलिस–व्यवस्था विशेषतः औद्योगिक प्रतिष्ठान – सभी क्षेत्र व्यवस्था की भ्रष्टता में आपाद–मस्तक डूबे हुये हैं। कहीं कोई फरियाद नहीं। इन स्थितियों से व्यक्ति का किसी भी स्थिति में त्राण नहीं है। चुनाव, राजनीति, कोटा–परमिट की नीतियों और लूट–खसोट ने व्यक्ति के जीवन को दूभर कर दिया है। समकालीन कहानी इस भ्रष्ट व्यवस्था से अपनी लड़ाई दो रूपों में लड़ती है : प्रथम, सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टता को रचनात्मक स्तर पर उघाड़ना और दूसरे, इस भ्रष्ट व्यवस्था से निपटने के लिये एक आक्रोशशील, प्रहारक मुद्रा ग्रहण करना। राजनीति के क्षेत्र में फैली गुंडई एक किस्म की 'गुंडा–संस्कृति' को प्रश्रय दे रही है, अनेक कथाकारों ने इस कथ्य पर बहुत सशक्त कहानियाँ लिखी हैं। महीप सिंह की कहानी 'एक गुंडे का समयबोध' में इस बात को रेखांकित किया गया है कि पेशेवर गुंडों की भी अपनी एक मौलिकता (इथिक्स) होती है, किन्तु राजनीति के गुंडों का कोई ईमान–धर्म नहीं होता। पेशेवर गुडों में इतनी नैतिकता अवश्य होती है कि वे अपने गुरु और साथियों के साथ कभी दगा नहीं करते, किन्तु राजनीति में तो यही समझ में नहीं आता कि "गुरू कौन है, और चेला कौन है ? हर चेला गुरु को गुड़ बनाकर खुद शक्कर बनने की कोशिश करता है।" अशोक अग्रवाल की 'तंत्र', ध्रुव जायसवाल की 'केवल एक क्षति', श्रवण कुमार की 'सलाख पर घूमता आदमी' काशीनाथ सिंह की, 'माननीय' होम मिनिस्टर के नाम', गिरिराज किशोर की 'मंत्री–प्रद', मुद्राराक्षस की 'दाँत या नाखून या पत्थर', कमलेश्वर की 'मानसरोवर के हंस', आदि कहानियाँ बहुत सुन्दर ढंग से राजनेताओं द्वारा गांधीवादी मूल्यों की हत्या, देश की जनता की अपेक्षाओं का गला घोंटकर स्वयं के स्वार्थ–साधन की चिंता की स्थितियों को स्पष्ट करती हैं। चुनाव, वोट और कुर्सी की राजनीति ने किस प्रकार देश की राजनीतिक व्यवस्था को भ्रष्ट किया है, इसका प्रामाणिक अंकन गोविन्द मिश्र ने 'धाँसू', असगर वजाहत ने 'मछलियाँ', प्रदीप पंत ने 'आम आदमी का

शव', गिरिराज किशोर ने 'नया चश्मा', आदि कहानियों में किया है।[76] इस सबसे सामान्य आदमी की अपनों की शासन व्यवस्था' की महात्वाकांक्षा का मोह–भंग हुआ है। अब तो वह यही समझकर संतोष कर रहा है कि सभी राजनेता और राजनीतिक दल एक ही जैसा चरित्र रखते हैं, उसके लेखे 'साँपनाथ' या 'नागनाथ' में कोई अंतर नहीं है, विष का दंश तो सभी दे रहे हैं। रमेश चन्द्र शाह की 'कवच', गौरीशंकर राजहंस की 'मुखौटे', हबीब कैफी की 'मजमेबाज', हिमांशु जोशी की 'जलते हुये डैने', मधुकर सिंह की 'बाढ़', माहेश्वर की 'साहब, बीबी, गुलाम', आदि कहानियों में प्रशासनिक भ्रष्टाचार का रूप उघाड़ा गया है। बड़े–से–बड़े अफसर से लेकर छोटे–से–छोटे कर्मचारी, चपरासी तक किस प्रकार रामराज्य के इस रथ को ठेल रहे हैं, इसका अत्यन्त प्रामाणिक चित्रण आज के कहानीकारों द्वारा हुआ है। हम इन सब स्थितियों से पूरी तरह वाकिफ तो होते हैं, पर कहानी रचनात्मक स्तर पर उस बुराई का शिद्दत से अहसास कराकर हममें एक कर्त्तव्य–बोध जगाती है। इस कर्त्तव्य–बोध का ही दूसरा रूप कहानी में रचनाकार की एक आक्रोशशील मुद्रा है। भ्रष्ट–व्यवस्था में रहने से इनकार करते इन कहानियों के पात्र पूरी व्यवस्था को आमूल–चूल बदल डालना चाहते हैं। इसीलिये वे देश और व्यवस्था को जी भर के कोसते हैं। सतीश जमाली की 'अर्थतंत्र' का यह कथन इस मत की संपुष्टि करता है : "यह साला कोई देश है, लोगों के पास इतना बेकार वक्त है। घंटों ये लोग फिजूल खड़े रहेंगे। कोई मतलब नहीं। कोई काम नहीं। प्रधानमंत्री के दर्शन करेंगे ! दर्शन ! थू !"[77] इसी प्रकार शरण बंधु की 'कुत्ते' कहानी में देश में 'रहने लायक नहीं रह गया' बताया गया है और पृथ्वीराज मोंगा की 'काँचघर' में सारी भ्रष्ट–व्यवस्था को 'पेट्रोल डालकर फूँक देने योग्य' करार दिया गया है। माहेश्वर की 'तुम्हारा' कहानी भी इसी प्रकार देश को भ्रष्ट–व्यवस्था के द्वारा 'अनाथालय बना डालने' की पीड़ा को व्यक्त करती है। समकालीन कहानी में सभी क्षेत्रों में फैली भ्रष्टता और उसके प्रति तीव्र रोष सर्वत्र सशक्त रूप में व्यक्त हुआ है।

कहानी का बौद्धिक हो जाना

हिन्दी कहानी नयी कहानी के समय से ही एक गंभीर साहित्यिक विधा का रूप धारण करने लगती है, जबकि इससे पूर्व वह एक हलकी–फुलकी मनोरंजन की विधा थी। समकालीन कहानी के दौर में आकर कहानी पूरी तरह चिंतन और मनन की विधा बन गयी।

आज कहानी में कथा–तत्व तो अत्यन्त गौण होकर रह गया है। इसे कहानी की संवेदना–स्तर से चेतना–स्तर तक की यात्रा कहा जा सकता है। अपने इस रूप में वह पाठक को झिंझोड़ती है, उसकी सोच पर दस्तक देती हुई अनेक प्रश्नों को जगाती है। शायद ही आज कोई ऐसी सारवान कहानी हो जो अपने पहले ही पाठ (फर्स्ट रीडिंग) में पूरी तरह समझ में आती हो। उनका कथ्य तभी पूरी तरह संप्रेषित हो पाता है जब वह दूसरी बार कहानी की रोचकता और कुतूहल–वृत्ति को अलग हटकर पूर्ण गंभीरता में पढ़ी जाये। इस प्रकार वह इतनी बौद्धिक हो गयी है कि उसमें रस–ग्रहण के साथ–साथ चिंतन–स्तर पर ले जाने की क्षमता आ गयी है। अपने इस रूप को ग्रहण करने के लिये उसने अपने स्वरूप में कहीं–कहीं निबंध–धर्मिता भी ग्रहण की है, अर्थात कहानी इतने अधिक विस्तार में जाकर समस्या का विश्लेषण करने लगती है कि बीच–बीच में वह निबंध हो उठती है। समस्या–प्रधानता आज उसका प्रकृत गुण बन गया है।

नगर और महानगर की कहानी की मुख्य कथा-भूमि बनना

समकालीन कहानी मुख्यतः नगर और महानगर में केन्द्रित हो गयी है। किन्तु यह कहने का यह मंतव्य नहीं है कि उसमें ग्रामीण जीवन–परिवेश पर बिलकुल लिखा ही नहीं गया। आज ग्रामों का भी पढ़ा–लिखा नवयुवक शहर या किसी महानगर में जीविकोपार्जन के लिये आ–बसा टिका है। वह भी नगर या महानगर में जीवन जीने की विषम स्थितियों से जूझ रहा है। फलतः उसने भी अपने इस नये जीवन–परिवेश पर ही अधिक लिखा। जो शहर में ही पले–बढ़े रचनाकार थे, उनका ग्रामीण कथा–भूमि से परिचय ही नहीं था। फलतः आज कहानियों में प्रचुरता ऐसी ही कहानियों की है जो नगर–महानगर की विभिन्न समस्याओं पर लिखी गयी हैं या यदि सम्बन्धों का भी चित्रण करती हैं तो वह भी नगरीय या महानगरीय पृष्ठभूमि पर ही है। इससे नगर और महानगर ही आज कहानी की मुख्य कथा–भूमि बन गये। ग्रामों की समस्याओं पर भी कुछ कथाकारों ने प्रारंभ में अच्छी कहानियाँ दीं, किन्तु फिर लगा कि वे भी एक लोक में बँधकर बुरी तरह अपने को 'रिपीट' कर रहे हैं। मिथिलेश्वर की कहानियाँ इस कथन के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। यों मिथिलेश्वर, चन्द्र प्रकाश पांडेय, बलराम, जगवीर सिंह वर्मा, संजीव, मनीषराम, शिवमूर्ति आदि ने ग्रामीण जीवन पर अच्छी कहानियाँ दी हैं; पहाड़ की जिन्दगी पर वल्लभ डोभाल, बटरोही, सुरेश उनियाल,

केशव आदि ने भी प्रामाणिकता से लिखा है, किंतु इन सबके बावजूद यह सच है कि आज कहानी में अधिकांशतः नगर और महानगर ही कथ्य के केन्द्र में हैं। स्पष्ट है कि समकालीन कहानी प्रमुखतः नगर और महानगर केन्द्रित है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि समकालीन कहानी का यथार्थ आज अत्यन्त विस्तृत और विविधवर्णी है। जीवन की कोई समस्या और क्षेत्र नहीं छूटा है जहाँ रचनाकार की दृष्टि नहीं गयी है। सामाजिक प्रतिबद्धता, सामान्य मानव की पक्षधरता तथा इस पक्षधरता से प्रेरित होकर जिन्दगी के विभिन्न मुहानों पर लड़ी जा रही उसकी लड़ाई में सहभागिता आज कहानीकार के कथ्य के प्रमुख सरोकार हैं।

(7) आंचलिक कहानी

आंचलिक कहानियों से तात्पर्य उन कहानियों से है जिनमें किसी क्षेत्र के वातावरण की विशेषता को ही रेखांकित करना कहानीकार का उद्देश्य होता है। इस दृष्टि से आंचलिकता को ग्राम कहानी से अलग किया जा सकता है। ग्रामीण–जीवन की कहानियों में देहाती वातावरण हो सकता है, किन्तु वातावरण का चित्रण अपने आप में उद्देश्य नहीं होगा। वे ग्रामीण जीवन की कोई चारित्रिक या सामाजिक समस्या को सामने लायेगी। आचंलिक कहानीकार समस्या को लायेगा भी तो ऐसे ढंग से नहीं कि वह कहानी का मुख्य विषय बन जाये। जो हो, स्वाधीनता के उपरान्त कुछ वर्षो बाद ही ग्रामीण जीवन को लेकर लिखी गई कहानियों का दौर चला। ऐसी स्थितियाँ और चरित्र जो सर्वदा के लिये लुप्त हो रहे हैं या अपनी ग्रामीण विचित्रता के कारण असामान्य हैं, चित्रित होने लगे। यद्यपि किसी अंचल विशेष को लेकर कहानी लिखने की परिपाटी हिन्दी में पहले भी रही हैं परन्तु किसी विशिष्ट अंचल की खास परम्पराओं को नये ढंग से चित्रित करने का प्रयास सन् 1950 ई. के बाद हिन्दी कथा क्षेत्र में व्यापक रूप में दिखाई पड़ा। यों उपन्यास के क्षेत्र में शिवपूजन सहाय, नागार्जुन आदि अंचल विशेष की पृष्ठभूमि अपना चुके थे। शिवप्रसाद सिंह की दादी माँ, मार्कण्डेय की 'गुलरा के बाबा' ऐसी ही चरित्र प्रधान ग्रामीण कहानियाँ थीं। खासकर नागार्जुन में 'बलचनमा', 'बाबा बटेसर नाथ', 'वरूण के बेटे' आदि में उत्तर बिहार के ग्रामीण अंचल को चित्रित कर नयी दिशा का संकेत कर चुके थे। परन्तु इस क्षेत्र में सबसे जबरदस्त प्रभाव डाला फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने। उन्होंने बिहार की पूर्वी अंचल की पृष्ठभूमि पर आंचलिक कहानियाँ लिखकर

कहानीकारों को प्रेरित किया। 'तीसरी कसम' जैसी उत्कृष्ट कहानी 'रेणु' की ही कृति है। आंचलिकता की चर्चा वस्तुतः रेणु के उपन्यास मैला आंचल से शुरू हुई। रेणु की कहानियों में पात्रों की चेष्टाएँ, भाषा आदि क्षेत्रीय वातावरण में घुली मिली होती है। इंद्रिय–बोध, लोक–कथा, लोक धुनें रेणु की कहानियों के विशिष्ट उपादान हैं। अपनी सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानी तीसरी कसम में 40 वर्षीय ग्रामीण गाड़ीवान हिरामन और नर्तकी हीराबाई के परस्पर आकर्षण की कथा के आधार पर रेणु ने कहानीकार के रूप में मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया।

❑❑❑

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक कथा साहित्य – गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ. 19
2. समकालीन हिन्दी साहित्य : नयी कहानी प्रश्न और उपलब्धियाँ – प्रवीण नायक, पृ. 61
3. जनवादी हिन्दी कहानी का विकास एक परिप्रेक्ष्य – आनंद प्रकाश, पृ. 58
4. नयी कहानियाँ – परमानन्द श्रीवास्तव, पृ. 33
5. परम्परा का नया मोड़ : रोमांटिक यथार्थ (नयी कहानी संदर्भ व प्रकृति) पृ. 228
6. नयी कहानी : प्रतिनिधि हस्ताक्षर – डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. 128
7. समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा – डॉ. सविता जैन, पृ. 121
8. स्वतंत्रता के बाद की कहानी : नई कहानी दशा दिशा सम्भावना, श्रीमती विजय चौहान, पृ. 223
9. धर्मयुग – हिन्दी पत्रिका – 16 अक्टूबर, 1979
10. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी – कृष्णा अग्निहोत्री, पृ. 12
11. आधुनिक साहित्य – नन्ददुलारे बाजपेयी – पृ. 239
12. हिन्दी कहानी – एक अन्तरंग परिचय, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 17–18
13. कहानी के तत्व : भगवतीचरण वर्मा, पृ. 29
14. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ. 155
15. समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि (सं. धनन्जय) : डॉ. बच्चन सिंह का निबन्ध गुमशुदा पहचान : तलाश की प्रतिक्रिया, पृ. 89
16. समकालीन कहानी : समांतर कहानी : समांतर से पूर्व कहानी में यथार्थ, जीवन : पृ. 21
17. कहानी नयी कहानी : डॉ. नामबर सिंह : पृ. 24
18. गिरिस्तन – (कहानी संग्रह) पृ. 166
19. श्री कान्त वर्मा : आलोचना अंक, 16 जनवरी–मार्च, 1972
20. समकालीन हिन्दी साहित्य : वेद प्रकाश शर्मा अमिताभ : पृ. 66
21. कहानी : दिशा दशा और संभावना : हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा : डॉ. रामदरश मिश्र : डॉ. नरेन्द्र मोहन, पृ. 203
22. समकालीन कहानी की पहचान : नरेन्द्र मोहन : पृ. 25
23. 'मधुमती', फरवरी 1978 में प्रकाशित
24. कहानीकार मोहन राकेश– डॉ. सुषमा अग्रवाल, पृ. 40
25. कहानी के इर्द–गिर्द उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 65
26. कहानी के इर्द–गिर्द में प्रकाशित अश्क के साक्षात्कार से उदघृत – दूधनाथ सिंह
27. एक दुनिया : समानान्तर – राजेन्द्र यादव, पृ. 19
28. नयी कहानी की भूमिका – कमलेश्वर, पृ. 70

29. नयी कहानी की भूमिका – कमलेश्वर, पृ. 72–73
30. नयी कहानी एक पर्यवेक्षण लेख से – उपेन्द्रनाथ अश्क
31. कहानी नये सन्दर्भों की खोज लेख से – मोहन राकेश
32. हंसा जाई अकेला भूमिका भाग से – मार्कण्डेय
33. कहानी 'नयी कहानी' – डॉ. नामवर सिंह, पृ. 68
34. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि – मोहन राकेश, पृ. 48
35. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि – मोहन राकेश, पृ. 78
36. नयी कहानी की मूल संवेदना – डॉ. सुरेश सिन्हा, पृ0 37
37. नयी कहानी की संवेदना निबन्ध से – डॉ. हरिचरण शर्मा
38. कर्मनाशा की हार – शिव प्रसाद सिंह, पृ. 6
39. एक दुनिया : समानांतर – राजेन्द्र यादव, पृ. 74
40. सारिका, अक्टूबर, 1974 'आज का यथार्थ'
41. सारिका, अक्टूबर, 1974 'आज का यथार्थ'
42. सारिका, नवम्बर, 1974 'समांतर, – कहानी विशेषांक–2'
43. सारिका, जनवरी, 1975 'समांतर कहानी विशेषांक–4'
44. सारिका, मार्च, 1975 'समांतर कहानी विशेषांक–4'
45. सारिका, फरवरी, 1975 'समांतर कहानी विशेषांक–3'
46. नयी कहानी की भूमिका 'द्वितीय सं., पृ. 50'
47. नयी कहानी की भूमिका 'द्वितीय सं., पृ. 70
48. नयी कहानी की भूमिका 'द्वितीय सं., पृ. 143
49. नयी कहानी की भूमिका 'द्वितीय सं., पृ. 168)
50. नयी कहानी की भूमिका 'द्वितीय सं., पृ. 175
51. कल्पना, अगस्त–सितम्बर, 1969, 'नवलेखन विशेषांक 1'; सम्पादकीय
52. नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ, पृ. 63
53. Modernity and Contemporary Indian Literature, p.5
54. विकल्प, कथा साहित्य विशेषांक – 1968 ई.
55. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृ. 338
56. आणुनिकता बनाम समकालीनता – पृ. 9; द्रष्टव्य पृ. 2
57. समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि, पृ. 166
58. समकालीन कहानी की भूमिका, पृ. 2
59. समकालीन कहानी की पहचान, प्रस्तावना, पृ. 7

60. अमृतलाल नागर, 'ओढ़री सरकार', 'सारिका', अगस्त–1, 1978
61. यशपाल के 'खच्चर और आदमी', 1965 ई., तथा 'भूख के तीन दिन', 1969 ई.
62. अमृतराय, 'आधुनिक भावबोध की संज्ञा', पृ. 40–41
63. द्रष्टव्य, गोविन्द मिश्र, 'धाँसू' कहानी–संग्रह की भूमिका
64. Kurf Baiger& Nicholes 'Edit'-'Values & The Future
65. रमेश बक्षी, 'पिता–दर–पिता', पृ. 20 तथा 24
66. जगदीश चतुर्वेदी, 'फ्लर्ट'--'निहंग', द्र. पृ. 104, 9 तथा 10
67. सुर्दशन चोपड़ा, 'जिनके मकान ढहते हैं'–'स्वीकारांत', पृ. 58
68. माहेश्वर, 'बंद'–'स्पर्श', पृ. 42 तथा 44
69. मृदुला गर्ग, 'तुक','मनोरमा' महिला कथाकार विशेषांक
70. निरूपमा सेवती, 'तलफलाहट'–'आंतकबीज', पृ. 58
71. 'बद्धमुष्टि'–'आतंकबीज', पृ. 47
72. दीप्ति खंडेलवाल, 'निर्बंध','सारिका', सितम्बर 1975
73. मणिका मोहिनी, 'ढाई आखर प्रेम का','सारिका',जनवरी–I, 1979
74. से0 रा0 यात्री, 'दर्पण','धरातल'
75. माहेश्वर, 'मृत्यूदंड'–'स्पर्श', पृ. 32–33
76. महीप सिंह, 'एक गुंडे का समयबोध'–'कितने सम्बन्ध', पृ. 79, 80
77. सतीश जमाली, 'अर्थतंत्र' 7 प्रथम पुरूष, पृ. 38

□□□

द्वितीय
अध्याय

द्वितीय अध्याय

आलोच्य कथाकारों की कहानियों की कथावस्तु

(क) प्रमुख घटनायें

जीवन की सामान्य घटनाओं और तथ्यात्मकता से लेकर तीखी सामाजिक विसंगतियों एवं ऐतिहासिक स्थितियों का मार्मिक चित्रण कहानी के विकास में हर मोड़ पर देखने को मिलता है।

"कहानी सदैव परिणाम प्रधान होती है और घटनाएँ ही उसका संबल है। इसलिये कहानी में घटनाओं का आधार तो होगा ही, साथ ही कहानी में घटनाओं की योजना और उनका आकर्षण नाटकीय ढंग से होता है। कहानी इसलिये गत्वर कला सृष्टि है।"(1)

कहानी में आई घटनाएँ और स्थितियाँ अपने वर्णन, निरूपण और संयोजन में मानवीय संबंधों और स्थितियों को प्रतिफलित करती है उनमें से ऐसे अधिक अर्थों, अभिप्रायों, अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और निर्णयों को व्यंजित करने की क्षमता रखती है। इस ढंग का संयोजन प्रेमचन्द्र की "कफन" और "पूस की रात" कहानियों से शुरू हुआ था।

कहानी में वस्तु तत्व का उतना ही महत्व है जितना की शरीर में आत्मा का। दूसरे शब्दों में तो वस्तु तत्व ही कहानी की भित्ति है, जिस पर मनचाहे रंगों से मनोरम चित्र अंकित किए जा सकते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि चित्रों के सृजन में भित्ति का विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है, इसीलिए कहानीकार के कला कौशल का अधिकांशतः परिचय कथानक के चुनाव में प्रकट होता है, यद्यपि कलात्मकता के माध्यम से साधारण कथानक में भी सुन्दरता लाई जा सकती है, तथापि रचना की उत्तमता अधिकांशतः सामग्री की उत्तमता पर निर्भर रहती है। डॉ. गुलाबराय का कथन है – "जो सुन्दर मूर्ति संगमरमर से गढ़ी जा सकती है, वह खुरदरे कड़े पत्थर से नहीं।"(2)

सर्वेश्वर जी की कहानियाँ उनके अपने अनुभव संसार और उनके माध्यम से हिन्दी के अनुभव ससार का अभिन्न अंग हैं। शिल्प की नवीनता के बावजूद सर्वेश्वर की कहानी में जो महत्वपूर्ण चीज है वह अनुभूति की सघनता है। निःसंदेह यह कहा जा सकता

है कि आज के बहुत सारे साहित्यिक विवादों और चमत्कारों के बावजूद सर्वेश्वर जी की दिशा सही है।

भारतीय जिन्दगी से सर्वेश्वर जी का परिचय ऐसा कभी नहीं रहा कि उनकी कहानी महानगरीय संत्रास की नकली दुनिया में आ जाए। भारतीय गाँव और कस्बें की जिंदगी के अनुभवों को सर्वेश्वर एक प्रौढ़ कला में भी बदलते हैं और इस जिंदगी में नये मूल्यों के प्रवेश की रचनात्मक कोशिश भी इन्हीं के पास आसानी से मिल जाएगी। उनके पात्रों के प्यार और उनकी लड़ाई में भारतीय जिन्दगी के कई गहरे स्तर पर छूने वाली घटनाएं चित्र हमें देखने को मिलती हैं।

(ख) गौण घटनाएं

''बहुधा कथानक की व्याख्या करते समय कहा जाता है कि कथानक घटनाओं या कार्य–कलापों के संचयन मात्र को कहते हैं।''(3)

यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। किसी भी कथानक की पूर्णता उसके कथा–कृति में उपस्थित किए गए रूप पर निर्भर होती है जिसके निर्माण के लिये उसका होना पहली शर्त है। वस्तु संकलन की दृष्टि से आज की कहानी वास्तविकता का सच्चा आभास कराने वाली है। कहानी साध्य को साधक से, उद्देश्य को कथानक से जोड़ती हुई चलती है और कभी–कभी तो जीवन घटना ही कहानी की वस्तु व साध्य आप बन जाती है। घटना के अंत में उद्देश्य विद्यमान रहता है। रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में गौण घटनाओं की अधिकता देखने को मिलती है।

(ग) कथा क्षेत्र

रघुवीर सहाय जी की एक कहानी है ''कहानी की कला''। जाहिर है कि यह शीर्षक किसी लेख के लिए अधिक उपयुक्त होता। यह कहानी हिन्दी के पुरानी गद्य शैली वाले निबन्धों की तरह ही लिखी भी गयी है। यह पाठक के साथ निरन्तर संवाद करते हुए, कहानी की सम्भावनाओं पर विचार करती चलती है। पर मजे की बात यह है कि यह सब करते हुए भी यह एक कहानी ही रहती है। कहानी का अर्थ पाठक पर अपने पूरे मर्म के साथ प्रकट होता है। इस कहानी में कहानी इतनी ही है कि एक भरी हुई ट्रेन में एक यात्री दूसरे

यात्री को जगह माँगने पर पहले तो इंकार कर देता है पर आधा घण्टे तक उसे कष्ट झेलते हुए खड़ा हुआ देखने के बाद वह उठकर उसके लिए जगह कर देता है और कहता है – "खड़े–खड़े उसे पाँच मिनट बीत गए, दस पंद्रह, बीस मिनट बीत गए। आधा घंटे बाद बैठे हुए आदमी से जरा सी हरकत हुई, उसने आसन बदला और राल घूँटी। जरा देर बाद उसने खड़े हुए आदमी के मुँह की ओर देखा पर वह दूसरी ओर देख रहा था इसलिए वह औठ काटने लगा। फिर उसने असान बदला और इस बार जो उसकी आँखें आगंतुक से चार हुईं तो वह डब्बे के बाहर झाँकने लगा। खड़ा हुआ आदमी खड़ा रहा। गरमी बढ़ रही थी। वह पसीने से नहाता गया। पाँच मिनट और बीत गए। अचानक बैठे हुए आदमी ने पाँव समेट लिए और गला साफ करके कहा, "अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता, आप यहाँ बैठ जाइए।"(4)

रघुवीर सहाय जी इन तीन पंक्तियों की कहानी, तक पहुँचने के पहले हुई पन्नों में पाठों के साथ कहानी बुनते उधेड़ते रहते हैं। कहानी के विवरण में उस यात्री की गरीबी, मरणासन्न माँ की बीमारी का तार पाकर स्टेशन भागना, प्लेटफार्म पर उसकी जेब का कटना, ट्रेन तक पहुँचने से पहले दो से टकराना चार से गालियाँ खाना, आदि बातें जोड़ने या न जोड़ने पर विचार करके चलते हैं। फिर वे कहानी में ही पाठक से यह सवाल पूछते हैं मगर क्यों ? मैं इस कहानी को इस तरह क्यों कहूँ ? क्या आपको ऐसे आदमी से कोई मानवीय सहानुभूति नहीं होगी जो न दयनीय हो वरन् जो केवल कष्ट में हो ? क्या अति रंजित भाव से कलान्त होना सामान्य स्वाभाविक संवेदना पाने के लिए जरूरी है ? क्यों हम बिना किसी अतिरंजित दृष्टि के वह घटना पहचान ही नहीं पाते और उसे पहचानकर चौकते क्यों हैं, वह जो मानवीय है स्वाभाविक है और उसमें कौतूहल क्यों पाते हैं, आनन्द क्यों नहीं ? वास्तव में सभी आनंददायिनी मानवीय घटनाएँ स्वाभाविक हैं यदि एक व्यक्ति श्रेष्ठ है तो उसकी श्रेष्ठता स्वयं महत्वपूर्ण है।

रघुवीर सहाय जी का यह सवाल रचनाकारों के सामने बहुत गंभीर और अहम् सवाल है। आखिर रचनाकार जब यथार्थ को बहुत अतिरंजित करके पाठक के सामने रखता है सिर्फ चौंकाना चाहता है या करूणाद्रि होना चाहता है ? लेखक कहानी की कला में कहता है कि – "मैं जानता हूँ कि ऐसे कोई कहानी नहीं कही जाती कि यह हुआ, फिर वह हुआ और अन्त में यह हुआ इति। मगर यह खूब जानता हूँ कि कहानी होती ऐसी ही है। मुझे तो

केवल घटना का वर्णन करना है केवल यह बताना है कि जब दो व्यक्तियों दो मानवों के बीच एक सम्बन्ध टूटा और दूसरा बना तो उसमें क्या कहानी पैदा हो गयी।''[5]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कला तो जीवन के लिए है यही जीवन भी कला के लिए हो जाता है। इसलिए हमारी कहानी यह है कि एक यात्री ने दूसरे से कहा – ''भाई जरा हमको भी बैठने दो। दूसरे ने कहा, नही मैं आराम करूँगा। पहला आदमी खड़ा रहा। उसे जगह नहीं मिली, पर वह चुपचाप खड़ा रहा। दूसरा आदमी बैठा रहा और देखता रहा। बड़ी देर तक वह उसे खड़े हुए देखता रहा। अचानक उसने उठकर जगह कर दी और कहा भाई, अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। आप यहाँ बैठ जाइए।''[6]

रघुवीर सहाय जी की कहानियों में जीवन के प्रति यह आशावाद उनकी कहानियों को एक ताकत देता है। यह गौर करने की बात है कि यह आशावाद किसी तरह के रोमांटिसिज्म में तब्दील नहीं होता वरन् अपनी जड़ें यथार्थ में ही बनाये रखता है।

इन्द्रधनुष कहानी का आरम्भ इस तरह है – ''वह घोर गरीबी का एक दिन था।'' थोड़ी देर हुई उसने मुझे एक साथ मुक्त और निरुपाय कर दिया था और चिंताएँ न्यूनतम ही नहीं रह गईं थीं बल्कि जिन भौतिक आवश्यकताओं की वे चिंताएँ थी वे भी सहसा मुझसे अलग हो गईं थीं, उतनी ही अनिवार्य पर मेरे अस्तित्व में बिना तनिक भी हस्तक्षेप किए हुए। मैं उठा और किताबों की अलमारी के पास गया जिस पर जानी पहचानी पीठों की पंक्ति के सामने कुछ पैसे रखे हुए थे। मैंने उन्हें गिना और न देखते हुए कि ये कितने से कम है और कितने से ज्यादा घर से निकल पड़ा।''[7]

रघुवीर सहाय जी के अनुसार यथार्थ के इस सूक्ष्म चित्रण के आगे कहानीकार जीवन और प्रकृति के रोजमर्रा घटने वाले आम दृश्यों को देखता और वर्णन करता है – ''किसी रंगीन दुकान से दो औरते निकलीं और तेजी से एक ओर निकलती चली गयीं, दो छोटी लड़कियाँ चकर–चकर बात करती हुई मुझसे आगे निकल गयीं अचानक मैंने देखा सड़क के अन्त पर मकानों के समूह से लेकर दूर मेरे पीछे इन्द्रधनुष खिंच गया है।''[8] आदि–आदि। लेखक कहता है यही मैं हूँ जैसा कि उस हवा ने मुझे परिभाषित कर दिया है। मैं बच गया हूँ और मैं टूटा नहीं हूँ मैं वापस आ गया हूँ सुरक्षित और सुन्दर और नये सिरे से सम्पूर्ण मैंने कहा और मैं कृतज्ञ हूँ इस अनुभव के लिए। यह जीवन के प्रति कृतज्ञता है।

जो सारी समस्याओं के बावजूद आदमी को टूटने से बचा लेती है। यही वह आस्था है जो आदमी को विनाश के विरूद्ध या आत्महत्या के विरूद्ध चलने की शक्ति देती है।

मेरे और नंगी औरत के बीच कहानी भी मनोवैज्ञानिक श्रेणी में आती है। क्योंकि रघुवीर सहाय जी का गैर रुमानी यथार्थ बोध उन्हें अपनी संवेदनाओं का अपनी करूणा का निर्णय विश्लेषण करने को बाध्य करता है। उनकी कई कहानियों में इस आत्म परीक्षण का स्वर का लगातार चलते आत्मालाप की तरह दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत कहानी घोर जाड़े में रेल के डिब्बे में सफर करती हुई एक नंगी औरत की है, जो बिना कंबल ओढ़े बैठी ठिठुर रही है। और सामने बैठे लेखक (रघुवीर सहाय जी) यह सब देखकर उसे अपना कम्बल उड़ाने या न उड़ाने की कशमकश में चलती है। कहानीकार अपनी करूणा को उलट पुलट कर हर कोण से जाँचता है। और सोचता है कि – "मैं इसे कम्बल क्यों देना चाह रहा हूँ ? एक मानव को दूसरे पर दया करने का क्या अधिकार है ? प्यार मैं कर सकता हूँ, पर क्या मैं सचमुच प्यार कर रहा हूँ, दया बिलकुल नहीं ? क्या मैं विश्वास से कह सकता हूँ ? नहीं मैं इसलिए दे रहा हूं कि मेरे पास खाली है और में दे सकता हूँ। पर वह कितना क्षुद्र कारण है और इस कारण से देने से अच्छा है न देना। कम से कम जहाँ तक मेरी आत्मा का प्रश्न है ऐसे देने और न देने में कोई अंतर नहीं। पर ठहरो इसी का क्या प्रमाण है कि उसे सरदी लग रही है या इतनी सरदी लग रही है कि वह तुमसे कम्बल लेना स्वीकार कर सकती है ? क्या तुम्हारे और उसके कपड़ो में जो भीषण अंतर है उसी से तुम समझ रहे हो कि उसे सरदी लग रही है।"[7]

रघुवीर सहाय जी न ट्रेन में बैठी औरत को देखकर मन में अनेक तरह के प्रश्न लाते हैं स्वयं ही उसका समाधान खोज लेते हैं और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करते हुए कहानी को आगे बढ़ाते हैं। सामने बैठी ठंड से ठिठुरती औरत के बिना कहे उसके मन की बात भावना उसका मनोविज्ञान पढ़ना अपने आप में अनूठा प्रयोग है। इसीलिए वे बार–बार कहते हैं कि क्यों दूसरे व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्र मानते हुए भी तुम यह संभावना नहीं मान सकते कि बाहर सरदी होते हुए भी उसे नहीं लग सकती है ? आखिर कहानीकार अपने आपसे इतने प्रश्न क्यों करता है ? डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि – "इसका कारण पूंजीवाद युग के अमानवीय सामाजिक सम्बन्धों के बोध से उपजा एक तरह का मानवतावाद है अपने ज्ञान और अपनी अनुभूति की सीमा के बोध ने रचनाकार की सहानुभूति सम्बन्धी पूरी

धारणा ही बदल दी है। वस्तुतः रघुवीर सहाय की इस आत्म सजगता और करूणा के प्रदर्शन करने या न करने की ऊहापोह के पीछे सम्बन्धों के नये यथार्थ को पकड़ने की कोशिश तो है ही खुद लेखक की वह गहरी संवेदनशीलता भी है, जो हर मनुष्य को समानता के स्तर पर देखना चाहती है।''[10]

कम्बल ओढ़ाने के बाद अंत में अपना स्टेशन आने पर उस सोती हुई औरत पर से कम्बल इस तरह खींच लिया जैसे प्याज पर से छिलका उतार दिया हो। मानवीय संवेदना जैसे उमड़ी थी वैसे ही घट भी गई और अमानवीयता का भाव सारी दया, करूणा को मिटा गया – जैसे – ''जबकि तथ्य, शुद्ध तथ्य यह है कि इसके पहले कि मैं अपनी संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अपने को मुक्त कर पाता, सड़क के किनारे का एक छोटा स्टेशन आ गया था और वह औरत उतरकर किसी कस्बे की अँधेरी रात में खो गई थी। या यह संभावना आपको पसंद न हो तो मान ले सकते हैं कि जिस आदमी ने उसे उठाया था उसका स्टेशन आ गया और उसने सोती औरत से अपना कंबल खींचकर उतार लिया और चला गया। ठीक यही मैंने किया था।''[11]

इससे स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय जी के समग्र साहित्य में ही हम रचना को मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता के लिए संघर्ष करते देखते हैं। वे अपनी करूणा को शंका की दृष्टि से देखते हैं कि कहीं यह दूसरे आदमी की स्वतंत्रता को कम करके खुद उन्हें अपने श्रेष्ठ होने के बोध से तो नहीं भर रही है ? इस आत्मशंका का सार रघुवीर सहाय की गहन जनतान्त्रिक संवेदना है। यह उनकी एक कविता कला में भी हर व्यक्ति के अद्वितीय होने का अधिकार छीन लेने वाली कला के विरोध में प्रकट होती है –

''अद्वितीय हर एक है मनुष्य
और, उसका अधिकार अद्वितीय होने का
छीनकर जो खुद को अद्वितीय कहते हैं
उनकी रचनाएँ हों या उनके हों विचार
पीड़ा के एक रस भीने अवलेह में लपेटकर
परसे जाते हैं तो उसे कला कहते हैं।''[12]

रघुवीर सहाय जी अपनी पीड़ा को पूरा उधेड़कर देख समझ लेना चाहते हैं, अपने को श्रेष्ठ मानकर दिखाई हुई करूणा से लोकतान्त्रिक जीवन मूल्य का क्षरण होता है, जो उन्हें मंजूर नहीं।

मुक्ति का एक क्षण कहानी भी मनोवैज्ञानिक श्रेणी में आती है। मानव संबंधों से परे भी एक सम्बन्ध एक प्रेम होता है, अमुक प्रेम, जो पशु–पक्षियों से सम्बन्धित होता है। निरीह मूक प्राणी होते हैं, पशु–पक्षी, किन्तु अपनी आँखों एवं हरकतों से बरबस हमें अपनी ओर आकर्षित करते हैं और हम उनसे जुड़ जाते हैं, ये जुड़ना ही उनके मनोविज्ञान को समझने की ताकत देता है।

प्रस्तुत कहानी का सारांश इतना सा ही है कि एक कबूतर रोज मुडेंर पर आता है और लेखक रोज उसे दाना डालते हैं। इसी क्रम में वे उससे इतना जुड़ जाते हैं कि कबूतर में ही सौन्दर्य नजर आने लगता है। वे उसकी आँखों से उसके मन की बात जानने लगते हैं जैसे वहां चारों ओर देखता है टुकुटुकर। क्या उसने लक्ष्य किया है कि कोई यहाँ है ? वह खास तरीका जो कबूतरों को आता है, गरदन टेड़ी करके देखने का उसे मेरी तरफ आँख करके देख रहा है। देखा''[13] वह इतना स्वतंत्र है कि अपनी तरफ से मुझे हँसा भी सकता है। यह खिलौने जैसी आँख पहले भी देखी हैं, शायद खिलौने ही में/पर यहां एक सजीव प्राणी है, और जिधर चाहता है उधर देख रहा है, यानी उसका अपना अहं भी है अब छत पार कर दूसरी ओर गया–फिर इधर मुँह घुमाया कुछ देखने काबिल नहीं। हां गरम है। हूँ सबेरे कड़ाके की ठंड थी। अब वहीं बैठा है। कुछ नहीं कर रहा है, सिर्फ अपना लूला पंजा लटकाए वह कर रहा है जो उसके लिए स्वाभाविक है गरदन चकर–मकर करके चारों ओर टुकुर–टुकुर ताक रहा है, जैसे गुटरगूँ–गुटरगूँ की आवाज। इससे स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय जी ने एक लुंज बेकार पंजे वाले कबूतर के लिए दाना लाते समय वह अपनी संवेदना को बिलकुल साफ करके रख देना चाहते हैं – जैसे ''वह मुझे अच्छा लगता है और आज भी उसके लिए मैं दाना ला रहा हूँ। दुनिया इसको एक सम्बन्ध मान सकती है और गल्प साहित्य इसको मनुष्य और पक्षियों के प्रेम की एक सच्ची घटना भी कह सकता है। पर यह कोई अनुग्रह नहीं है, न कोई बन्धन है। यहां की धूप सुखद है और इस छत का अपना एक एकान्त है उसको न आप तोड़े न हम, और सच इतना ही रहने दें कि यह समय बहुत सुन्दर है।''[14]

कबूतर में सौन्दर्य का वर्णन भी कहानी में रोचकता उत्पन्न करता है – "और क्या मैं कह सकता हूँ कि कबूतर सुंदर लग रहा है ? मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ऐसा कहने में कोई अनुग्रह नहीं है कोई बंधन नहीं है, वह मुझे अच्छा लग रहा है बस इतना ही सच है। वह वहां थोड़ी दूर पर धूप में है। वह है, और स्पष्ट है कि उसके जाने का कोई कारण नहीं है इसलिए अच्छा है कि वह अच्छा लगता रहे और रहे। अहा ! अच्छा ख्याल आया।"[15]

'एक जीता जागता व्यक्ति' में जीवन के लिए संघर्ष करती एक गौरैयानुमा चिड़िया का चित्रण है। कहानी में कोलतार के कीचड़ में फँसी हुई एक गौरैयानुमा चिड़िया है, उसमें छटपटाती हुई उससे मुक्त होने की लगातार कोशिश कर रही है और उसकी मुक्ति की इस छटपटाहट को देखते हुए दो आदमी हैं। इस तरह चिड़िया और उन दो आदमियों के बीच एक रिश्ता बनता है। इस रिश्ते के एक छोर पर 'जिजीविषा' है और दूसरे छोर पर 'दया' और 'सहानुभूति' है जैसे – छुड़ा दूँ, मैंने सोचा। इसमें सोचने की क्या बात है ? पर क्या वह खुद कोशिश नहीं कर रही है, उसे अपने आप करने न दूँ ? मैं समझ सकता हूँ कि खुद कोशिश करने का क्या अर्थ होता है और सहानुभूति एक जगह अनादर भी बन जा सकती है। वह इस समय एक महत्वपूर्ण संघर्ष कर रही है जैसे उसने जरूरी समझा है और जैसे वह ही कर सकती है। उसे करने दूँ ? अंत तक ले जाने दूँ ? जैसे उसे सुखकर होगा ?"[16]

इससे स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय जी मानवमन के साथ पक्षियों के मनोविज्ञान को भलीभांति समझते थे इसीलिए यह भी संयोग नहीं है कि वह "जिजीविषा" और जीवन के लिए संघर्ष एक गौरैयानुमा चिड़िया का है एक नाचीज सी नाजुक हस्ती की जीवेषणा और उसके लिए अदम्य संघर्ष। पूरी कहानी एक नामालूम सी घटना और अलक्षित कर दिये जाने वाले दृश्य की प्रक्रिया है मैंने कहा – मैं तुम्हें छुड़ाने आ रहा हूँ। जकड़े हुए पंजों पर उसका शरीर दायें से बायें पागल की तरह डोलने लगा, जैसे कह रहा हो, नहीं, नहीं। मैंने कहा, मैं तुम्हें आहिस्ते से छुड़ा दूँगा। उसने हांफकर चोंच बन्द की और फिर खोली, कहा, नहीं, मैं खुद छूटने को बेकरार हूँ। मैंने मौन रहकर उसे आँख भर देखा। जैसे सम्मोहित होकर वह एक पल फिर आँखों से मुझे देखती रही, फिर ऐसे फड़फड़ायी जैसे यह उसका आखिरी फड़फड़ाना हो। फिर उसने पंख खोल दिये और उन्हें तान दिया। अब तक वह छूट गयी।"[17]

यहाँ जैसे चिड़िया ही नहीं छूटती है रूढ़ियों के कोलतार में जकड़ी हुई हिन्दी कहानी भी छूटकर मुक्त हो जाती है। जिजीविषा, दया और मुक्ति के सहारे रघुवीर सहाय जी बेहद बुनियादी स्तरों पर कहानी को जीवन के करीब ले आते हैं जहाँ हर प्रकार के यथार्थ भी झूठे प्रतीत होने लगते हैं। दरअसल रघुवीर सहाय जी जब कहानियाँ लिख रहे थे तो कहानी के बारे में और कहानी होने की बुनियादी बातों पर बहस भी कर रहे थे। इसलिए वे कहानी की कला जैसी कहानियाँ लिखते हैं जहाँ यह बताना जरूरी हो जाता है कि कहानी क्या है और कला क्या है। पर साथ ही बेचारा और 'दया' को वे सबसे अधिक अमानवीय कर्म मानते होते हैं, मगर क्यों ? कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो कहानी के माध्यम से तब भी उठाये जाने चाहिए थे और आज भी। अगर गौर करें तो क्या आर्द्रा, परिन्दे, मलबे का मालिक, जानवर और जानवर, राजा नरबंसिया, डिप्टी कलेक्टरी आदि ऐसी दर्जनों कहानियों को हम इसलिए पसन्द नहीं करते कि उनके नायकों या नायिकाओं के प्रति हमारा "हृदय द्रवित" होता है ? इसका मतलब यह नहीं है कि केवल इस कारण हम इन कहानियों के मनोविज्ञान को महसूस करते हैं। पात्रों का मनोविश्लेषण देखते हैं। रघुवीर सहाय जी की लगभग सभी कहानिया इसी मनोविश्लेषण एवं छद्मविश्वास का उद्घाटन करती हैं।

(घ) कथा प्रारम्भ, विकास अंत

कवि रघुवीर सहाय (1929–90) बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उनके व्यक्तित्व में एक ही साथ कवि, कहानीकार चिन्तनशील निबन्धकार अप्रतिम संपादक और प्रतिबद्ध लोकतांत्रिक समाजवादी के गुण समाए हुए थे, काव्य लेखन तथा संपादन की विधाओं में उनका अद्वितीय योगदान है। रघुवीर सहाय की कहानियों, कविताओं और लेखों का प्रथम संग्रह जब जब अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित हुआ तो भूमिका में अज्ञेय ने उनके कवि व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा दी और साथ ही उनके समर्थ कहानीकार के महत्व को प्रतिपादित करते हुए उन्हें कहानी का विशिष्ट हस्ताक्षर माना है। अज्ञेय ने लिखा है कि – आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास की चर्चा में यदि आधुनिकता पर बल दिया जा रहा हो तो पहले दो तीन नामों से अवश्यमेव उनका नाम लेना होगा, कदाचित पहला नाम ही उनका हो सकता है।"[18]

रघुवीर सहाय कवि कहानीकार होने के अतिरिक्त विचारक भी हैं। यह अलग से अध्ययन का विषय हो सकता है कि उनकी कविताओं और कहानियों का उनके विचारक के साथ कैसा संबंध है, किन्तु यह हमारा अभीष्ट नहीं हैं। नागेश्वर लाल ने इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उनकी कहानियों के बारे में लिखा है कि रघुवीर सहाय जी कहानियों में सजगता, कविता की सार्थकता, निबन्ध की विशेषता और प्रासंगिकता कहानी की है।''[19]

1972 में जब रघुवीर सहाय का पहला स्वतंत्र कहानी संग्रह ''रास्ता इधर से है'' प्रकाशित हुआ तो भूमिका में कवि रघुवीर सहाय ने कहानीकार रघुवीर सहाय के साथ जुगलबंदी की। अपनी सृजन प्रक्रिया के दौरान कोई भी रचनाकार कविता, कहानी अथवा नाटक लिखने का फैसला कब, क्यों और कैसे करता है। इसका सीधा जबाव रघुवीर सहाय के पास नहीं है। उनके अनुसार – ''मैं लिखने बैठता हूँ कविता पर लिख जाता हूँ, कहानी, ''क्योंकि सत्य यह भी है अनेक कविताएँ मैंने इसलिए लिखीं हैं कि नाटक नहीं लिख पा रहा था।''[20]

जो रचनाकार एक से अधिक विधाओं में रचना करते हैं विशेषकर वे जो अपेक्षाकृत छोटे आकार वाली विधाएँ जैसे कविता, कहानी, चुनते हैं, उनके समक्ष अपने अनुभव को किसी विधा विशेष में अभिव्यक्त करने का दुविधाग्रस्त संकट मंडराता रहता है। रचनाकार सृजन प्रक्रिया के पहले चरण में यह सुनिश्चित नहीं कर पाता कि उसका अनुभव सृजन प्रक्रिया के अंतिम क्षण में किस विधा में व्यक्त होगा।

रघुवीर सहाय जब से कविताएँ लिख रहे थे, प्रायः तभी से कहानियाँ भी लिख रहे थे। यद्यपि आपकी कहानियाँ संख्या में अपेक्षाकृत कम है, पर उनकी कविताओं के समानांतर वे उतनी ही या वैसी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी शायद मुक्तिबोध की कहानियाँ, हालांकि मुक्तिबोध की कहानियों और रघुवीर सहाय की कहानियों में उतना ही फर्क है, जितना मुक्तिबोध की कविताओं और रघुवीर सहाय की कविताओं में।

रघुवीर सहाय की कहानियों का परिचय

रघुवीर सहाय जी के तीन कहानी संग्रह हैं सीढ़ियों पर धूप में (1960) रास्ता इधर से है (1972) तथा जो आदमी हम बना रहे हैं (1982) सीढ़ियों पर धूप में एक मिला–जुला संकलन है, जिसमें कविताओं और टिप्पणियों के अलावा कहानियाँ भी हैं। संग्रह में जीता

जागता व्यक्ति खण्ड के अंतर्गत 1952 से 1959 के बीच की दस कहानियाँ संकलित हैं1। दूसरे कथा संग्रह 'रास्ता इधर से है में 1959 से 1972 के बीच की 11 कहानियाँ है। तीसरा संग्रह जो आदमी हम बना रहे हैं एकदम नई कहानियों का संग्रह नहीं है। इसमें सीढ़ियों पर धूप में तथा रास्ता इधर से है कि सारी कहानियाँ शामिल कर ली गई हैं। संग्रह में दो कहानियाँ एक भगोड़े का आत्मकथ्य और 'विदेश में एक भारतीय' नई हैं। ये कहानियाँ उनके किसी अन्य संग्रह में शामिल नहीं है। इस संग्रह में रघुवीर सहाय जी की ही ऐसी कहानीनुमा रचनाएँ भी शामिल कर दी गई हैं जो अन्यत्र कहीं भी कहानी के रूप में नहीं छपी हैं। ऐसी एक रचना है स्पष्टवादिता। सीढ़ियों पर धूप में के अंतर्गत "खुला घर" में टिप्पणी की तरह इसका एक अंश छपा है। इसी तरह हिन्दी के एक संपादक से भेंट भी राष्ट्रवाणी (फरवरी 1958) अथवा सीढ़ियों पर धूप में के अंतर्गत कहानी की तरह नहीं छपी है। कहानीनुमा इन रचनाओं को रघुवीर सहाय जी ने अपने अंतिम कथा संग्रह में शामिल किया है। रघुवीर सहाय जी द्वारा इन कहानीनुमा रचनाओं को संग्रह में रखने का कारण – "कहानी के प्रति उनकी नयी अवधारणा है। जो आदमी हम बना रहे है कि भूमिका में वे लिखते हैं कि कहानी अन्य विधाओं की तरह जीवन की एक समझ पैदा करती है। और जब नहीं कर पाती तो कहानी नहीं होती है, मगर जब कर पाती है तो उस पर ये बंधन भी नहीं रहता कि वह कहानी ही रहे।"[21] ये दो कहानीनुमा रचनाएँ जीवन की एक समझ तो पैदा करती हैं लेकिन कहानी के पारंपरिक तत्वों का उनमें अभाव है। रघुवीर सहाय जी अपनी कहानियों में इन तत्वों की परवाह नहीं करते। उनके अनुसार पाठक या श्रोता मनुष्यों के बीच जिस रिश्ते को जानते हैं उसके बदलने और बदलकर नया रूप लेने की प्रक्रिया ही कहानी है।"[22]

जो आदमी हम बना रहे हैं कि भूमिका में उनका उद्देश्य है कि बदलती परिस्थितियों के बीच बदलते मानव संबंधों की पहचान। अपनी कहानियों में रघुवीर सहाय जी इस पहचान को प्राथमिकता देते हैं। कहानी के अन्य तत्व आपके लिये मायने नहीं रखते। इसीलिए कुछ लोगों को उनकी कुछ कहानियाँ कहानी नहीं लग सकती हैं। लेकिन रचना की बुनियादी संबद्धता की दृष्टि से देखेंगे तो उनकी कहानियों में भरपूर कहानी है। उनका कथाकार कहानी को बिल्कुल नवीन रूप देने की कोशिश करता है।

1982 में जो आदमी हम बना रहे हैं संग्रह के प्रकाशन के बाद उन्होंने कुल तीन कहानियाँ लिखी वार्निश (1982) पंचक (1982) तथा कूडे का देवता (1984) कूडे का देवता

रघुवीर सहाय जी की अंतिम कहानी है। उसके बाद अगले छह वर्षों में निधन होने तक उन्होंने कोई कहानी नहीं लिखी।

रघुवीर सहाय जी की सात अन्य प्रारंभिक कहानियाँ है जिनमें से कुछ प्रकाशित कुछ अप्रकाशित हैं। ये कहानियाँ 1947 से 1959 के बीच की हैं। सीढ़ियों पर धूप कहानी संग्रह में जो कहानियाँ हैं वे 1952 और उसके बाद की हैं। रघुवीर सहाय जी किस तरह कहानी का एक नया ढांचा गढ़ने में कामयाब हुए यह उनकी प्रारंभिक कहानियों के प्रयोगों के अध्ययन से पता चलता है।

साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित उनकी पहली कहानी "तारा" है जो अक्टूबर 1947 की मनोहर कहानियाँ में छपी थीं। इसके एक महीने बाद यही कहानी कुछ संशोधित रूप में आँधी पत्रिका के नवम्बर 1947 के अंक में आधी रात का तारा शीर्षक से प्रकाशित हुई। कहानी टूटता तारा शीर्षक से संगीत रूपक के रूप में लखनऊ रेडियो से प्रसारित हुई। संगीत रूपक का आलेख रघुवीर सहाय रचनावली 2 में देखा जा सकता है।

कहानी "आंधी" के अंतर्गत रोमानी ताने बाने में सामाजिक असमानता पर गहरी चोट की गई है। कहानी के शिल्प में नयापन है। परंपरित ढंग से कथानक आदि का सुनियोजित निर्वाह नहीं किया गया है। रोमानीपन के बावजूद रघुवीर सहाय जी को सामाजिक विंसगतियों का गहरा अहसास है।

"गुब्बारे" (1948) कहानी में एक गुब्बारे वाले गरीब लड़के की विड़ंबना चित्रित है। सपने और सवेरा (1942) में रोमानीपन और यथार्थ का द्वन्द्व है। कुत्ते की प्रतीक्षा (1950) तक पहुँचकर रघुवीर सहाय जी ने अपने अलग शिल्प और कथ्य की पहचान बनाने की कोशिश की है। एक बीमार कुत्ते से छुटकारे को लेकर लिखी गई इस कहानी में उनकी अद्वितीय पर्यवेक्षण क्षमता की विशेषताएँ भी स्पष्ट होने लगती हैं। "घरौंदा" (1952) कहानी में उनका अपना ही नया अन्वेषित शिल्प स्वयं पर इतना हावी हो गया है कि लगता है कहानी ने बीच में निबन्ध की शक्ल ले ली है, लेकिन कथांत तक आकर वे उसे संभाल ले जाते हैं। 'फुटबाल' (1952) पहली ऐसी कहानी है, जिसमें उनके सारे पिछले प्रयोगों को एक निष्कर्ष मिलता दिखाई देता है। एक स्थिति को विभिन्न कोणों से देखकर कहानी रचने का शिल्प वे इस कहानी में एक आविष्कार की तरह हस्तगत करते हैं। बाद में ऐसे शिल्प संयोजन में आपने अनेक कहानियाँ लिखी हैं।

रघुवीर सहाय जी की अनेक कहानियाँ हैं। जो वर्तमान परिवेश में मानव संबंधों के यथार्थ को संपूर्णता में दर्ज कराने का प्रयास करती हैं। ये कहानियाँ नितांत नए शिल्प में लिखी गई हैं। रघुवीर सहाय जी कहानी के लिए सुनिश्चित कथानक की अनिवार्यता नहीं मानते। कथानक आदि से अलग जो तत्व कहानी को कहानी बनाते हैं उन पर वे अधिक ध्यान देते हैं। कहानी में उनका उद्देश्य कथानक कभी नहीं रहता। कहानी में प्रस्तुत घटनाओं का अर्थ पाठकों तक संपूर्णता में पहुँचे इसके लिए उनका कथाकार कहानी में ही कई बार व्याख्याकार की भूमिका भी निभाता है। जैसे ''कहानी की कला शीर्षक'' कहानी। लेकिन उनकी शिल्पगत कुशलता के कारण यह कभी थोपा हुआ नहीं लगता बल्कि वह कहानी का हिस्सा बन जाता है। नयी कहानी के दौर में नामवर सिंह ने जरूर सहाय जी की कहानियों की ताजगी को रेखांकित किया लेकिन इस कथा आंदोलन के अन्य ध्वजवाहकों की निगाह से इन कहानियों का नयापन ओझल ही रहा। नाम सिंह ने रघुवीर सहाय जी की उस दौर की कहानियों पर ''छोटी सी सही मगर कहानी तो है शीर्षक से टिप्पणी लिखी थी। यह टिप्पणी उनकी पुस्तक ''कहानी नयी कहानी'' में संकलित है।

रघुवीर सहाय लिखते है कि कहानी लिखना केवल कहानी लिखना ही नहीं है, गद्य लिखना भी है गद्य को तोड़ने और बनाने का अपना एक अलग मजा है। मैंने पाया कि वह भी उतना ही तृप्तिकर है बल्कि कुछ अधिक ही। क्योंकि उसे जितना तोड़ों वह उतना ही सार्वजनिक बनता जाता है पर वह उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी भी सर पर डाल देता है। यह कि न उसके साथ निरा खिलवाड़ किया जाये न उससे किसी को धोखा दिया जाये। साहित्य के अन्दर जरूरत से ज्यादा लोग यही कर रहे है। उनकी कथनी और करनी के भेद के चलते गद्य की विश्वसनीयता घटी है। उनके हाथ लगी यह एक पूरी पीढ़ी जिसको आदमी की अच्छाई का फिर से विश्वास दिलाने में बहुत वक्त लगेगा। यह काम अकेले न कहानी कर सकती है न कविता दोनों ही करेंगे।[23]

रघुवीर सहाय जी की कहानियों का नया शिल्प और विशिष्ट आंतरिक संरचना उनके बहुमुखी रचनाकार होने की वजह से है। उनकी सर्जनात्मकता सबसे पहले एक कवि की सर्जनात्मकता है। इसलिए उनकी दूसरी विधाओं की रचनाशीलता इससे अक्सर निर्धारित होती है। रास्ता इधर से है कथा संग्रह की भूमिका में रघुवीर सहाय जी ने लिखा है कि और कुछ न लिख पाने पर मैंने ये कहानियाँ लिखी हैं आपके लिए निश्चय ही इनका कोई महत्व

न है न होना चाहिए कि मैंने ये कहानियाँ क्यों और कैसे लिखीं। पर यह जानकर मुझे एक रचनाकार को, संतोष मिलता है कि इनमें से प्रत्येक रचना एक न एक विधा का विकल्प है बहुत करके कविता का क्योंकि वही मैं लिखना चाहता रहा हूँ। ज्यादातर फिर भी यह कोई एकांत सत्य नहीं कि मैं लिखने बैठता हूँ कविता और लिख जाता हूँ कहानी क्योंकि सत्य यह भी है कि अनेक कविताएँ मैंने इसलिए लिखी हैं कि नाटक नहीं लिख पा रहा था।''[24]

रघुवीर सहाय जी की कहानियां वर्तमान परिवेश में मानव सम्बन्धों के यथार्थ को सम्पूर्णता में दर्ज कराने का प्रयास करती है। यह कहानियां नितान्त नई शिल्प में लिखी गयी है। रघुवीर सहाय कहानी के लिये सुनिश्चित कथानक की अनिवार्यता नहीं मानते। कथानक आज से अलग जो तथ्य कहानी को कहानी बनाते है उन पर वे अधिक ध्यान देते हैं। कहानी में उनका उद्देश्य कथानक कभी नहीं रहता। कहानी में प्रस्तुत घटनाओं का अर्थ पाठकों तक सम्पूर्णता में पहुँचे इसलिये उनका कथाकार कहानी में ही कई बार व्याख्याकार की भूमिका भी निभाता है। (जैसे कहानी की कला शीर्षक कहानी) लेकिन उनकी शिल्पगत कुशलता के कारण यह कभी थोपा हुआ नहीं लगता बल्कि वह कहानी का हिस्सा बन जाता है। नयी कहानी के दौर में नामवर सिंह ने जरूर सहाय जी की कहानियों की ताजगी को रेखांकित किया। लेकिन इस कथा आन्दोलन के अन्य ध्वजावाहकों की निगाह से इन कहानियों का नयापन ओझल ही रहा। नामवर सिंह ने रघुवीर सहाय की उस दौर की कहानियों पर छोटी ही सही मगर कहानी तो है शीर्षक से टिप्पणी लिखी थी। यह टिप्पणी उनकी पुस्तक कहानी : नयी कहानी में संकलित है।[25]

रघुवीर सहाय जी की सर्जन प्रक्रिया के इस रचनात्मक द्वंद्व से निश्चय ही उनकी रचना का स्वरूप निर्धारित होता है और वह एक विशिष्ट शिल्प धारण करती है। यही वजह है कि रघुवीर सहाय जी कि कहानियाँ पारंपरिक और प्रचलित कहानियों से हटकर है। उनकी अनेक कविताओं में जैसे नाटयधर्मिता है वैसे ही अनेक कहानियों के केन्द्र में काव्यात्मकता है। यही कारण है कि कहानियाँ ढले हुए सांचे की कहानियाँ नहीं है। उनके कवि ने उनके कथाकार को क्या दिया इसके बारे में आप लिखते हैं कि सबसे बड़ी बात जो कविता ने मुझे सिखाई वह है शब्दों की फिजूल खर्ची की निरर्थकता। कहानी लिखते हुए मुझे इससे मदद मिली। पर कहानी लिखना सिर्फ कहानी लिखना नहीं है गद्य लिखना भी है। गद्य को तोड़ने और बनाने का अपना एक अलग मजा है मैंने पाया कि वह भी उतना ही तृप्तिकर

है बल्कि कुछ अधिक ही है क्योंकि उसे जितना ही तोड़ो उतना ही सार्वजनिक बनता जाता है।''[26]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का मानना है कि कहानी लेखक कुछ वर्ष कविता लिखकर जब फिर कहानी की ओर लौटता है तो फिर उसी सूत्र को नहीं उठाता। जिसे वह छोड़ गया था, बल्कि एक नये प्रदेश में नयी राह पर चलता हुआ अपने को पाता है। इसी प्रकार कवि जब गद्य लेखन के अन्तराल के बाद फिर काव्य क्षेत्र में लौटता है, तो वह भी एक नये आयाम में।[27]

रघुवीर सहाय जी ने अपनी कहानियों में गद्य को जगह जगह तोड़ा है और एक नए किस्म का गद्य लिखने की कोशिश की है। इसमें उनकी कहानी के गद्य की भाषा अधिक अभिव्यक्तिपूर्ण और सर्जनात्मक हो गई है। ''प्रेमिका'' कहानी का एक उदाहरण देखिये – ''क्या दिन थे वह भी या वह भी क्या दिन थे''। हम दोनों भागे हुए थे। गनीमत यह थी कि किसी लक्ष्य को लेकर नहीं भागे थे और दोनों के दो घर थे जहाँ रात या दिन के किसी समय हम लौट जा सकते थे। वह रोज घर से भागती और रोज घर के लोगों के पास स्वीकृत हो जाती यहां तक कि अपनी बड़ी बहन के पास भी जो उसके और मेरे प्रेम में सबसे बड़ी बाधा थी। स्कूल के रास्ते से मैं उसे रोज उड़ा ले जाता। सारे दिन उसके साथ निरूद्देश्य खेलकर उसे फिर वहीं छोड़ आता जहाँ से शुरू किया था।''[28]

रघुवीर सहाय जी सर्वथा नए शिल्प और नई भाषा में कहानियाँ लिखते हुए कहानी लिखने के अपने बड़े उद्देश्य को कभी नहीं भूलते हैं। वे अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों में परिवर्तन की इच्छा और सामर्थ्य पैदा करना चाहते हैं। इसीलिए अपनी कहानियों के द्वारा उनकी कोशिश एक संपूर्ण मनुष्य बनाने की होती है। उन्होंने अपने अंतिम कथा संग्रह का नाम रखा था जो आदमी हम बना रहे हैं। इस कहानी संग्रह का समर्पण वाक्य था, ''किशोरों'' को जो तरूण हो रहे है। तरूण के रूप में निर्मित हो रहे किशोरों से रघुवीर सहाय जी का जुड़ाव रहा यों ही नहीं है। वे जानते हैं कि तरूण बनते किशोर को एक ऐसे आदमी के रूप में आसानी से ढाला जा सकता है जो समता, न्याय और अपने अधिकारों के लिए आसानी से जागरूक हो। ''जो आदमी हम बना रहे हैं कि भूमिका में उन्होंने इन मूल्यों से अपनी कथा रचना के रिश्ते को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

हिन्दी के किसी भी कहानीकार की कहानियों से रघुवीर सहाय जी की कहानियों की तुलना नहीं की जा सकती। वे चकित कर देने की हद तक अपनी भाषा और बुनावट में ही नहीं जीवन के प्रति अपनी दृष्टि में भी अद्वितीय हैं। रघुवीर सहाय जी का लगभग सभी कहानियों की थीम एक जैसी है पर विषय, उद्देश्य और विचारों के मान से उनमें वर्गीकरण किया जा सकता है जैसे सामाजिक कहानियाँ, मनोवैज्ञानिक कहानियाँ, राजनैतिक एवं विचार प्रधान कहानियाँ और अन्य सामान्य उद्देश्यों को लेकर लिखी गई कहानियाँ।

सर्वेश्वर दयाल की कहानियों में वर्तमान समाज व देश में व्याप्त विसंगतियों, अव्यवस्थाओं का बड़ा ही सजीव ढंग से चित्रण किया गया है। अपनी इसी कार्यशैली के आधार पर वह जन लेखक बन गए हैं। उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों को छूते हुए अपनी कहानियों को मूर्त रूप दिया है। आपने अपनी सम्पूर्ण कहानियों का मूल्यांकन निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट करने का प्रयास किया है :–

सर्वेश्वर जी की कहानियों में कथानक मात्र कल्पना की ही उपज नहीं है। उनमें सत्य का, वास्तविकता का चित्रण है एवं कल्पना रूपी रंगों से जिनका निर्माण किया गया है। इससे उनके कथानकों में रोचकता का विस्तार हुआ है। किसी भी लेखक के जीवन में अनुभूति घटित वस्तु ही उभर कर लेखनी के माध्यम से अनेक प्रकार से व्यक्त होती है। जब उसकी स्मृतियाँ उसे लिखने के लिए प्रेरित करती हैं तो वह लिखने को तत्पर हो जाता है। स्वयं लेखक ने इस तथ्य को स्वीकार किया है – "जब मैं बहुत छोटा था, मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं अपने चंद कपड़ों के साथ–साथ, खील, लइया, मिठाईयाँ, खिलौने, चित्रों की किताबें और बालपोथी भी रखा करता था। वह मेरी तिजौरी थी, जिसमें कुछ भी रखकर मैं पूर्ण आश्वस्त रहता था कि वह निरापद है। दुनिया की निगाहें वहाँ तक नहीं पहुँच पायेंगी। वह मेरी शक्ति थी, जहाँ मैं असमर्थ होते हुए भी अपनी किसी भी चीज को खतरे से बचा सकता था।"[29]

"डूबता हुआ चाँद" कहानी में भी सत्य घटना को ही कल्पना द्वारा नया रूप दिया है, ऐसा प्रतीत होता है, एक उदाहरण दृष्टव्य है – "मैं दूर जड़वत बैठा था। पति को पास से हट जाने को कहा और उनके हट जाने पर वह मुझसे धीरे से बोली –

"मुझे तुम्हारे ऊपर बहुत यकीन है। मेरे मरने के बाद एक काम कर देना।"

"मैं चुपचाप खड़ा रहा। बोला नहीं। डर था कहीं भीतर का तूफ़ान बाहर न फूट पड़े।

वह बोली – "इनकी जल्दी ही किसी सुन्दर गोरी लड़की से शादी करा देना।" और फिर उन्होंने बड़ी–बड़ी सुन्दर आँखें मेरी जलभरी आँखों में डाल दी और वे देखते–देखते पथरा गई, लेकिन पथराते–पथराते भी उन्होंने मुझसे बहुत कुछ कह दिया। काश कि वह कुछ भी मेरी कलम लिख सकती, फिर मैं दुनिया को बताता कि वह हत्या थी, एक निर्दोष की हत्या थी।"[30]

"पुलोवर", "पराजय का क्षण", "मौत की छाया", "भगत जी", "मास्टर श्याम लाल गुप्ता" कहानियों का कथानक भी वास्तविकता पर आधारित प्रतीत होता है। लेखक की कृति के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य निहित रहता हैं लेखक की समस्या कृति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रकट हो ही जाती है। सर्वेश्वर जी की अधिकांश कहानियाँ विघटित, पतनशील मूल्यों, प्रवृत्तियों से मुक्त और संपूर्ण मानवीय गुणों से मुक्त होने के जद्दोजहद में संघर्षरत मनुष्य की गाथा है।

आज मनुष्य की गरिमा नष्ट हो उसे इसकी चिन्ता नहीं, लेकिन अपने झूठे शौर्य से खुश होते हैं लोग। एक झूठी और अर्थहीन परम्परा का निर्वाह और इसके निर्वाह में अपने असली चेहंरे की नकाबपोशी, आज हर कोई एक ऐसे कोण पर खड़ा है जहाँ से उसका असली चेहरा दिखता नहीं इसका सजीव अंकन "सफलता" कहानी में किया गया है।

आज समस्या है कि सत्य जीवन से कटा हुआ है और जहाँ सत्य को जीवन से जोड़ने की आवश्यकता महसूस की जाती है। वहाँ व्यवस्था उसे कामयाब नहीं होने देती। प्रस्तुत पंक्तियों में जहाँ पुलिस से सत्य की रक्षा का अनुरोध किया जाता है, वहाँ उसका जबाव क्या रहता है ? स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है –

"सत्य की रक्षा करना, हमारा काम नहीं है। हम शान्ति व्यवस्था की रक्षा करते हैं।"[31] व्यवस्था के भ्रष्टाचार के साथ–साथ सर्वेश्वर जी ने अनेक प्रकार की समस्याओं को उभारा है – जैसे नारी शोषण आदि।

सर्वेश्वर संवेदनशील कथाकार हैं। इनकी कुछ कहानियों के कथानक रोंगटे खड़े करने वाले हैं। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है – "उसने पूरी शक्ति और साहस से शव को उठाया और उसे नल तक ले गया। शव हाथ से गिरा जा रहा था, अशक्त हो गई बाँहों से संभल नहीं रहा था लेकिन बच्चा उसका था, किसी दूसरे से वह कैसे उठाने को कह सकता था। नल तक पहुँचकर जमीन पर रखते–रखते शव हाथ से छूट गया और सर लद्द से बैल जैसा जमीन पर गिरा।"[32]

सर्वेश्वर जी की कहानियों के कथानक पारिवारिक जीवन से भी संबंधित हैं। पारिवारिक कथानक कहानियों को सजीवता प्रदान करते हैं यथा –

"तोता ! तोता !!" उत्साह में भरी मेरी पत्नी की आवाज आई। मैं उठकर रसोई घर में गया जहाँ वह थी। एक तोता आटे के परात के पास आटा खा रहा था।"[33]

इसी तरह "सूटकेस", "एक बेवकूफ चिड़िया", "पराजय का क्षण", "पुलोवर" के कथानक भी माँ, पत्नी व बच्चों से संबंधित है।

प्रत्येक लेखन में कल्पना को मुखरित करने का ढंग आना अति आवश्यक है, कोरा चित्रण को शुष्क लगता है, उनमें कल्पना रंग भरकर उन्हें सुंदर बनाना ही लेखक का कार्य है और वह भी विशिष्ट प्रकार की कल्पना। सामान्य रूप से प्रत्येक मनुष्य ही कल्पना लोक में विचरण करता है। सर्वेश्वर जी में कल्पना व सूक्ष्म चित्रण करने की विशेष प्रवृत्ति है। वे इतना सूक्ष्म चित्रण करते हैं कि घटनाएँ सामने घटित प्रतीत होती हैं।

"सन्ध्या समय, गाँव के मेले में चटक तूली रंग की साड़ी पहने, धूप मुझे खिलखिलाती हुई लौटती मिली। मुझे देखकर वह बेहद हँसी–हँसते–हँसते दोहरी हो गई। अन्त में थककर हाँफते हुए बोली, "तुमने कुछ नहीं खरीदा ?"[34]

"सर्वेश्वर जी की कहानी में कल्पना के सूक्ष्म चित्रण के कारण जो आनंद पाठक को मिलता है वह सामान्य कथानक से प्राप्त नहीं होता।

यद्यपि सर्वेश्वर जी की कहानियों की कथावस्तु संघर्षरत मानव की गाथा है, लेकिन उनकी कहानियों में मनुष्य के वर्ग चरित्र और जीवन के वस्तुगत यथार्थ को समझने में मदद नहीं मिलती। इनकी कहानियों के संबंध में हरिहर प्रसाद ने कहा है कि – "मनुष्य

को केंद्र में रखकर लिखी गई इन कहानियों में मनुष्य बिल्कुल अस्तित्वहीन हो जाता है। उसका बिल्कुल लघु रूप वह भी मुहावरों की शक्ल में वहाँ विद्यमान दिखता है जो अपने गरिमामय अस्तित्व के लिए कहीं पिस रहा होता है, कहीं छटपटा रहा तो कहीं दिखता जिसके लिए आज चौतरफा संघर्ष छिड़ा हुआ है। यह चिन्ता का विषय है कि सर्वेश्वर जी ने जिस मनुष्य को कहानी का विषय बनाया और उसे वहाँ अधूरा छोड़ा उसका विकास उसकी सन् 1970 के बाद की कविताओं में दिखता है।''[35]

सर्वेश्वर की कहानियों की कथावस्तु सत्य पर आधारित है, लेकिन उन्होंने इन कहानियों की प्रमाणिकता की जरूरत महसूस नहीं की। स्वयं विजय देव नारायण साही ने सर्वेश्वर की कहानियों के संबंध में कहा है – ''अनुभव की स्थापना के आधार पर – उसकी प्रमाणिकता की जरूरत उन्होंने महसूस नहीं की। नहीं तो, इतने सुंदर शिल्प में गढ़ी ये कहानियाँ बकवास नहीं होतीं।''[36] इसी तरह हरिहर प्रसाद ने इनकी कहानियों के संबंध में कहा है – ''सर्वेश्वर जी की कहानियों के द्वारा नये मुहावरे गढ़ने की बात कही जाती रही है, लेकिन वे मुहावरे यदि जीवनोपयोगी और जीवन के अनुभूत क्षणों को प्रमाणिक न करार करें तो फिर वह किस काम के।''[37]

(ड) साम्य-वैषम्य

रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में उनके अपने अनुभव संसार का व्यापक यथार्थ परिलक्षित होता है। दोनों कथाकारों की कथावस्तु में समाज में व्याप्त विसंगतियों चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक क्यों न हो उनमें अनुभूति की सघनता पाई जाती है। अनेक विवादों एवं चमत्कारों के बावजूद दोनों कथाकारों की कहानियों की कथावस्तु में अनेक वैषम्य भी देखने को मिलते है।

रघुवीर सहाय जी कुछ कहानियाँ मनोविश्लेषण एवं क्षद्मविश्वास का उद्घाटन करती हैं तो वही सर्वेश्वर दयाल सक्सेना मनोविज्ञान के रूप में उतना यथार्थ विश्लेषण एवं विवेचन अपनी कहानियों की कथावस्तु में उतना नहीं कर पाते जितना रघुवीर सहाय अपनी कहानियों में कर देते हैं। मेरी और नंगी औरत के बीच और एक जीता जागता व्यक्ति इसके जीवंत उदाहरण हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपनी कहानियों की कथावस्तु में अक्सर एक समस्या को कथानक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। व्यवस्था के भ्रष्टाचार के साथ–साथ और

एक निश्चित उद्देश्य पर सर्वेश्वर जी ने अनेक प्रकार की समस्याओं को उभारा है। जैसे – नारी शोषण आदि। कहानी को समाप्त करते हैं। सफलता एवं पराजय का क्षण इसके उदाहरण है जब कि रघुवीर सहाय की कहानियों में ऐसे समस्या प्रधान कथानकों का लगभग अभाव ही झलकता हैं।

□□□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक साहित्य – नन्दुलारे बाजपेयी, पृ. 212
2. काव्य के रूप – बाबू गुलाब राय, पृ. 163
3. साहित्य का साथी – डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 90
4. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 50
5. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 49
6. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 50
7. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 63
8. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 64
9. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 77
10. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 46
11. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 80
12. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 155
13. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 68
14. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 69
15. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 68
16. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 61–62
17. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 62
18. अभिनव भारती – पृ. 173 प्रकाशन हिन्दी विभाग
19. अभिनव भारती – पृ. 173 प्रकाशन हिन्दी विभाग
20. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 11
21. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 9
22. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 9
23. रघुवीर सहाय, रचनावली–2, पृ. 26
24. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 11
25. रघुवीर सहाय, रचनावली–2, पृ. 10
26. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 11
27. काठ की घण्टियाँ – भूमिका से, लक्ष्मी चन्द्र जैन, पृ. 5, 6
28. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 89
29. अन्धेरे पर अन्धेरा (सूटकेस) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 68
30. कच्ची सड़क (डूबता हुआ चाँद) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 40
31. अन्धेरे पर अन्धेरा (लड़ाई) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 24

32. अन्धेरे पर अन्धेरा (सफलता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 60
33. अन्धेरे पर अन्धेरा (तोता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 63
34. अन्धेरे पर अन्धेरा (धूप) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 37
35. सर्वेश्वर का रचना संसार : प्रदीप सौरभ (निष्ठा और सामर्थ्य के द्वन्द्व की कहानियाँ) : हरिहर प्रसाद, पृ. 41
36. सर्वेश्वर का रचना संसार : प्रदीप सौरभ (निष्ठा और सामर्थ्य के द्वन्द्व की कहानियाँ) : हरिहर प्रसाद, पृ. 40
37. सर्वेश्वर का रचना संसार : प्रदीप सौरभ (निष्ठा और सामर्थ्य के द्वन्द्व की कहानियाँ) : हरिहर प्रसाद, पृ. 43

❑❑❑

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

आलोच्य कहानियों में पात्र-योजना

(क) पात्र, चरित्र एवं व्यक्तित्व की अवधारणायें

रघुवीर सहाय जी के पात्र विषय के अनुकूल यथार्थ जीवन से जुड़े हुए हैं, उनमें दिखावा कहीं भी दिखाई नहीं देता। मानसिक वेदना और गरीबी से जूझते पात्र अपने चरित्र से कहानी को उत्कृष्टता प्रदान करते हैं। चाहे वे स्त्रीपात्र हों या पुरुष पात्र हों या अन्य पात्र सभी अपनी अपनी जगह श्रेष्ठ हैं।

हिन्दी के समसामयिक लेखन में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना किसी परिचय के मोहताज नहीं है। पिछले तीन दशक की हिन्दी कहानी का जहाँ भी उल्लेख होगा सर्वेश्वर जी की चर्चा के बिना यह अधूरा होगा। सर्वेश्वर जी की कहानियाँ उनके अपने अनुभव संसार का अभिन्न अंग है। शिल्प की नवीनता के बावजूद सर्वेश्वर की कहानियों में जो महत्वपूर्ण विषय वस्तु है वह अनुभूति की सघनता है। सर्वेश्वर जी की कहानियों में भाषा और संवेदना का एक विशिष्ट रूप उभरकर सामने आना कोई बहुत आश्चर्य की बात नहीं है वरन् आश्चर्य की बात तो यह है कि अपनी चुनी हुई कहानियों के बल पर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हिन्दी के उन कहानीकारों में आ जाते हैं जो कविता लिखने के साथ कहानी लिख देने की मजबूरी से नहीं वरन् कहानी विधा में अपना कुछ विशिष्ट जोड़ने के लिए कहानियाँ लिखने की जरूरत महसूस करते रहे हैं। नयी कविता के आंदोलन से जुड़े हुए अनेक प्रमुख कवियों ने हिन्दी कहानी को समृद्ध किया है प्रथम कड़ी के रूप में – सर्वेश्वर जी उनमें एक हैं।

भारतीय सामाजिक परिवेश से सर्वेश्वर का परिचय ऐसा कभी नहीं रहा कि उनकी कहानी महानगरीय संत्रास की नकली दुनिया में आ जाए। भारतीय गाँव और कस्बे की जिन्दगी के अनुभवों को वह एक प्रौढ़ कला में भी बदलते हैं और इस जिन्दगी में नये मूल्यों के प्रवेश की रचनात्मक कोशिश भी सर्वेश्वर के यहाँ हमें आसानी से मिल जाती है। उनके पात्रों के प्यार और उनकी लड़ाई में भारतीय परिवेश के कई गहरे स्तर पर छूने वाले चित्र हमें मिलेंगे।

रघुवीर सहाय के अनुसार "कहानी अन्य विधाओं की तरह जीवन की एक समझ पैदा करती है और जब नहीं कर पाती तो कहानी नहीं होती है। मगर जब कर पाती है तो उस पर यह बंधन भी नहीं रहता कि वह कहानी ही रहे .... यह दो कहानीनुमा रचनायें जीवन की एक समझ तो पैदा करती है लेकिन कहानी के पारम्परिक तत्वों का उनमें अभाव है। सहाय जी अपनी कहानियों में इन तत्वों की परवाह नहीं करते। उनके लिये तो पाठक या श्रोता मनुष्यों के बीच जिस रिश्ते को जानते है। उसके बदलने और बदलकर नया रूप लेने की प्रक्रिया ही कहानी है।"[1] कहानी में उनका उद्देश्य है बदलती परिस्थितियों के बीच बदलते मानव सम्बन्धों की पहचान। अपनी कहानियों में वह इस पहचान को प्राथमिकता देते है। कहानी के अन्य तत्व उनके लिये ज्यादा महत्व नहीं रखते। इसलिये कुछ लोगों को उनकी कहानियाँ कहानी नहीं भी लग सकती हैं। लेकिन रचना की बुनियादी संबद्धता की दृष्टि से देखेंगे तो उनकी कहानियों में भरपूर कहानी है। उनके कथाकार ने कहानी को बिल्कुल नया ढ़ाचा देने की कोशिश की है।[2]

एक दूसरे स्तर पर अवलोकन करें तो सर्वेश्वर की कहानियों को सामान्य जन की कहानी कहा जा सकता है जिसमें मानव जीवन का यथार्थ चित्र अवतरित हुआ है। इसीलिए उसमें सामान्य मानव की तरह भूख, प्यास, पीड़ा, छटपटाहट और विवशता आदि सभी कुछ है। अपनी कहानियों में सर्वेश्वर दयाल जी ने समसामयिक परिवेश से यथार्थ रिश्ता जोड़ते हुए बड़ी ही शिद्दत के साथ समाज की राजनीतिक और नैतिक स्थिति पर गहरी चोट की है। यह आत्मदया और आत्मपीड़न का प्रत्यय नहीं है बल्कि मानवीय संवेदना के आधार पर निरन्तर जूझने की ताकत का प्रतिफल है। समसामयिकता पर दृष्टि केन्द्रित करते हुए बृहद् मानवीय संदर्भों से निरन्तर जूझते रहने की खासियत सर्वेश्वर जी में मौजूद है। सर्वेश्वर दयाल जी में सामयिक परिदृश्य पूर्ण तन्मयता के साथ प्रस्तुत हैं। समाजवादी और समानता के नाम की ईटें पकाने वाला राजनीतिक परिवेश, सत्ता द्वारा दमन, सामाजिक विकृत परिदृश्य, मानवीय बेबसी बुद्धिजीवियों की अकर्मण्यता, नैतिक दारिद्रय, घुटन और उदासीनता को सर्वेश्वर जी सदैव महसूस करते हैं, आपका मानना है कि अन्धेरे को सूँघ कर मैंने देखा है कि उसमें सूरज की गंध आती है। मेरी कहानियाँ जन आक्रोश को उकसाने में भले ही समर्थ न हो किन्तु सत्ता के खोखलेपन और पीड़ित की आत्मा को देखने की क्षमता उनमें जरूर है। मेरा लेखन आदमी की फौलादी ताकत, संकल्प आस्था, स्वाभिमान और आजाद चेतना का लेख है।

सर्वेश्वर जी की कहानियों के कई पक्ष उजागर हुए हैं जैसे – व्यवस्था के प्रति विद्रोही व्यक्तित्व, नारी की स्थिति, प्रेम रूप और ईश्वर का पारस्परिक संघर्ष, जमींदारी व्यवस्था, विघटित पतनशील मूल्यों, प्रवृत्तियों से मुक्ति और मानवीय गुणों की मुक्ति में संघर्षरत मनुष्य की गाथा आदि अनेक प्रश्न उठाये गए हैं। सर्वेश्वर दयाल जी कहानियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह भाषा के एक नये मुहावरे की दुनिया में प्रविष्ट हुई है। इनके लेखन में हमें टूटती हुई मर्यादाओं तथा निखरती निष्ठाओं के बीच मानवीय मूल्यों के प्रति जो नई आस्था पनप रही है, सामाजिक रूढ़ियों और राजनीतिक भ्रांतियों को चीर कर मनुष्य की आंतरिकता पर आधारित जिस नई मर्यादा का उदय हो रहा है उसी ओर लेखक ने संकेत किया है। एक ओर जहाँ बलात समायोजन, संस्कार और बुद्धि के सतत् संघर्ष की परिणति व्यक्ति के पागलपन में होती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक संघर्ष व जड़ता से बालमन कितना उदासीन हो जाता है इन सब समस्याओं को कहानियों में स्थान दिया गया है। वास्तव में देखा जाए तो समकालीन व्यवस्था की धज्जियां उधेड़ने में सर्वेश्वर दयाल जी मार्मिक एवं ओजस्वी व्यंग्यकार सिद्ध हुए हैं।

सर्वेश्वर जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे आपने कहानी ही नहीं वरन् साहित्य की अन्यान्य विधाओं पर भी अपनी लेखनी को तराशा है। उन्होंने कविता, उपन्यास, नाटक को भी एक नई जमीन दी है और इसके माध्यम से आपने सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में फैले जंजाल व क्रूर व्यवस्था एवं स्वतंत्रता के बाद हमारी शक्तियों के विघटन को उजागर किया है।

क्रमशः सर्वेश्वर जी ने साहित्य की अधिकांश विधाओं का स्पर्श किया है आपके संपूर्ण साहित्य में मानवीय, सामाजिक व राजनीतिक विसंगतियों की मुखर अभिव्यक्ति हुई है। सर्वेश्वर जी व्यवस्था में परिवर्तन के सदैव आकांक्षी दिखते हैं। वे एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जो राम राज्य से भिन्न नहीं है।

(ख) पात्रों का वर्गीकरण

रघुवीर सहाय जी की कहानियों में पात्र योजना विषय के अनुसार अपनी भूमिका निभाते है। चाहे वे पुरुष पात्रों का चित्रण हो या स्त्री पात्रों का या पशु पक्षियों का हो सभी को ध्यान में रखते हुए रघुवीर सहाय जी ने कहानियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए

चित्रण किया है। कहानीकार का मानना है कि समाज में अब कोई शक्ति न्याय और समता के लिये संघर्ष नही कर सकती। इस भ्रान्ति के साथ मिलकर कि नायक कहानी में अपने संघर्ष को सिद्ध करके समाज का परिवर्तन कर ले रहा है। वास्तविक संघर्षशील शक्तियों के लिये भटकने और बिखरने का घातक सामान जुटा सकता है। इसलिये और भी गहरी खोज के साथ यथार्थ के विकृत रूप के कारणों की ओर उसकी अभिव्यक्त की शैलियों की पहचान लेखक को स्वयं करनी है और पाठक को करानी हैं ताकि हर बार यह पहचान दोनों में बने और परिवर्तन की इच्छा और सामर्थ्य पाठकों में पैदा कर सके। जो आदमी हम बना रहे है वहीं परिवर्तन करेगा, हमारी कहानी का नायक उसके जगह उसका काम करने के लिये इस्तेमल नहीं किया जायेगा। यही आज के समाज की राजनीतिक परिस्थिति का रचना द्वारा उत्तर है। कई स्थानों पर लेखक स्वयं भी पात्र बन जाते हैं। सर्वप्रथम मैं पुरुष पात्रों की चर्चा करूँगी।

'कहानी की कला' कहानी में लेखक ट्रेन में स्वयं सफर करते हुए आत्मलाप करते है, और ट्रेन में सफर कर रहे यात्रियों की मनोदशा का चित्रण किया है बैठे हुए यात्री स्वयं सीट पर बैठकर अपने को भाग्यशाली समझते हैं और खड़े हुए यात्री अपने को मजबूर और विवश पाकर अपने दुर्भाग्य को कोसते हैं – "एक यात्री ने एक बैंच पर दो आदमियों भर की जगह पर अपना बिस्तर बन्द बँधा–बँधाया रख छोड़ा था, और उस पर जमकर बैठा हुआ था। आगंतुक ने उससे पूछा भाई, इससे आप दो आदमियों की जगह नहीं निकाल सकते क्या ?"[3]

प्रस्तुत कहानी में बैठे और खड़े दोनों पुरुष यात्रियों की मनोदशा का वर्णन सहजता से किया है। रघुवीर सहाय जी की कहानी में पात्र या चरित्र जड़ या जानवर कुछ भी हो सकते हैं पर वे कुछ ऐसा करते हैं जो मानवीय होता है और निरपेक्ष मानवीय होता है। जैसे उसने एक बार फिर चारों ओर देखा कि कोई कहीं जरा सी जगह दे दे, पर सभी या तो सिकुड़कर बैठे थे या लेटकर जगह कहाँ से होती। फिर उसने एक लंबी सांस ली और सोचा कि खड़ा रहूँगा। तो क्या गाड़ी तो चलती रहेगी अपनी माँ के अंत समय तक उसके पास पहुँच तो जाऊँगा।"[4]

"खड़े–खड़े उसे पाँच मिनट बीत गए, दस, पंद्रह, बीस मिनट बीत गए। आधा घंटे बाद बैठे हुए आदमी से जरा सी हरकत हुई उसने आसन बदला और राल घूँटी। जरा देर बाद उसने खड़े हुए आदमी के मुँह की ओर देखा पर वह दूसरी ओर देख रहा था इसलिए वह ओंठ काटने लगा। फिर उसने आसन बदला और इस बार जो उसकी आँखें आगंतुक से चार हुईं तो वह डब्बे के बाहर झाँकने लगा। खड़ा हुआ आदमी खड़ा रहा। गरमी बढ़ रही थी। वह पसीने से नहाता गया। पांच मिनट और बीत गए। अचानक बैठे हुए आदमी ने पांव समेट लिए और गला साफ करके कहा, "अब मुझसे बरदाश्त नहीं होता, आप यहाँ बैठ जाइए।"[5]

वास्तव में सभी आनंददायिनी मानवीय घटनाएँ स्वाभाविक है, यदि एक व्यक्ति श्रेष्ठ है तो उसकी श्रेष्ठता स्वयं महत्वपूर्ण है किसी की क्षुद्रता उसे महत्व नहीं देती। यदि कोई दया करता है तो वह दयालु है, क्या यह बताया जाए कि वह पहले बड़ा नृशंस दस्यु था फिर बदलकर साधु हो गया, तभी दया का श्रेय उसे मिलेगा ?

'इन्द्रधनुष' कहानी आत्मालाप शैली में लिखी गयी है लेखक सड़क पर विचरण करते–करते सामने नजर आ रहे नजारों पर भाव व्यक्त करता है, और अपने जीवन से जुड़ी घटना याद करके जीवन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है पात्र का चरित्र निभाता है – "तब मैंने एक बार फिर देखा कि मैं कितना अकेला हूँ पर कितना सुखी। ये लोग सुखी हैं, मैंने कहा, जो मेरे पास से गुजरते जा रहे हैं और मुझे नहीं देखते, और यह इन्द्रधनुष सुंदर है जिसके नीचे से ये लोग गुजर जाएँगे। यही मैं हूँ जैसा कि उस हवा ने मुझे परिभाषित कर दिया है, मैं बच गया हूँ और मैं टूटा नहीं हूँ मैं वापस आ गया हूँ सुरक्षित और सुंदर और नए सिरे से संपूर्ण, मैंने कहा, और मैं कृतज्ञ हूँ इस अनुभव के लिए किसके प्रति, इसका प्रश्न नहीं है क्योंकि और किसी का इस अनुभव में मेरे साथ हिस्सा ही नहीं है।"[6]

इसके विपरीत मेरे और नंगी औरत के बीच कहानी अकृतज्ञ और कृतज्ञ के बीच कशमकश के द्वंद्व का चित्रण है जैसे – "अकृतज्ञ की तरह मैंने पूछना शुरू किया – मैं इसे कम्बल क्यों देना चाह रहा हूँ ? क्या मुझे इस पर दया आ रही है, क्योंकि इसके पास नहीं है और मेरे पास है ? सावधान, मैंने अपने को अपनी पिछली कहानियों की याद दिलाई – एक मानव को दूसरे पर दया करने का क्या अधिकार है ? प्यार में कर सकता हूँ, पर क्या मैं सचमुच प्यार कर रहा हूँ, दया बिलकुल नहीं ? क्या मैं विश्वास से कह सकता हूँ।"[7]

इससे स्पष्ट है कि रघुवीर सहाय जी की इस आत्मसजगता और करूणा के प्रदर्शन करने या न करने की अहापोह के पीछे सम्वेदनशीलता भी है जो हर मनुष्य को समानता के स्तर पर देखना चाहती है। रघुवीर सहाय जी के समग्र साहित्य में ही संघर्ष करते देखते हैं। वे अपनी करूणा को शंका की दृष्टि से देखते हैं कि कहीं एक दूसरे आदमी की स्वतंत्रता को कम करके खुद उन्हें श्रेष्ठ होने के बोध में तो नहीं भर रही हैं। इसीलिए मुक्ति का एक क्षण एवं एक जीता जागता व्यक्ति कहानी में पक्षियों के प्रति गहरी संवेदना का चित्रण है। जहां वे एक ओर कबूतर के प्रति स्नेह भाव जाग्रत होता है और वे उसका मनोविश्लेषण करते हैं "चुगते–चुगते वह हाथ के बहुत पास आ गया। पकड़ लूँ ? पकड़ लूँ तो अभी सिमट जाएगा और गरदन कंधों में धँसाकर टुकुर–टुकुर दाएँ–बाएँ देखने लगेगा। उसका स्पर्श। चिकने परों के अंदर सिमटा हुआ स्पंदित एक परम पिंड। जैसे हाथ में उसके प्राणों की ही उष्णता अनुभव हो रही हो। कितना सुंदर पक्षी है यह, जिसका धकड़ता हुआ प्राण उसके शरीर के इतने संतुलित अनुपात में है।"[8]

रघुवीर सहाय जी इस कहानी में एक लुंज के काम पंजे वाले कबूतर के लिए दाना लाते समय वही अपनी सम्वेदना को बिलकुल साफ करके रख देना चाहता है। एक जीता जागता व्यक्ति, में वह पिछली कोलतार में फंसी एक चिड़िया को देखता है जो छूटने के लिए पंख फड़फड़ा रही है और लगभग मौत के किनारे है। उनके मन में आता है कि वह उसे छुड़ा दें, क्योंकि हर व्यक्ति की संघर्षशीलता में उसकी दृढ़ आस्था है। यही वह बिन्दु भी है जहाँ वह अपनी कहानियों में करूणासिक्कता को नकार गैर रूमानी यथार्थ के नजदीक पहुँचता है तड़फती हुई चिड़िया की मनोदशा का वर्णन करते हुए – "जिस तरह वह अभी तक नहीं करना चाह रही थी, वैसे पंख फड़फड़ाकर अपने को हुमसाने लगी। एक कदम मैं और आगे बढ़ा और मन में कहा, "बस क्षण भर में सब हो जाएगा।" चिड़िया ने कातर आँखों से मुझे देखा। उनमें केवल अविश्वास था। उसने चोंच खोल दी और बुरी तरह डरकर वह छटपटाई। मैंने कहा, मैं तुम्हें छुड़ाने आ रहा हूँ। जकड़े हुए पंजों पर उसका शरीर दाएँ से बाएँ पागल की तरह डोलने लगा, जैसे कह रहा हो, नहीं, नहीं। मैंने कहा, मैं तुम्हें आहिस्ते से छुड़ा दूँगा। उसने हाँफकर चोंच बंद की और फिर खोली, कहा, नहीं, नहीं, मैं खुद छुटने को बेकरार हूँ।"[9]

इससे स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय जी की मनोवैज्ञानिक कहानियों में चाहे पुरुष पात्र हों या पक्षी सभी का महत्वपूर्ण स्थान है। सभी अपनी भूमिकाओं से कहानियों को सार्थकता प्रदान करते हैं इन कहानियों में स्त्री पात्रों की कमी है। या यूं कहें कि उनके लिए स्थान नहीं है इस विषय पर जो भी कहानियाँ हैं फिर भी कहानियाँ सफल हैं।

(ग) प्रमुख पुरुष एवं नारी पात्र

(1) पुरुष पात्र

सेब कहानी का लाचार और बेबस पिता है, जो शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी बीमार बच्ची के इलाज के लिए दिन–रात मेहनत करता है पर अपने स्वाभिमान को जिन्दा रखता है। जैसे–बाप का मुँह दाढ़ी से भरा था और जबड़ा चौड़ा था। उसने गाड़ी के नीचे मुँह डाले–डाले खुरदुरी आवाज में जबाव दिया, चले जाएँगे। और लड़की से कहा बेटे तू तनिक उतर तो आ।''[10]

लेखक का मन बार–बार उनकी दशा देखकर द्रवित हो उठता है वे बार–बार उनकी मदद करने की कोशिश करते हैं लेकिन लड़की और उसका बाप उनकी करूणा और दया को नकार देते हैं – ''मैं अपनी करूणा से परेशान था। फिर मैंने पूछा इसे क्या हुआ है ? और उसके दुखी उत्तर के लिए तैयार हो गया। मैंने सोचा था कि जब वह कहेगा, साहब मर्ज तो कुछ समझ में नहीं आता किसी के, तो डॉक्टर हुक्कू का नाम सुझाऊँगा।

बाप हँसकर बोला, अब तो ठीक है, यह इसे मोतीझाला हुआ था बहुत दिन हुए, तब से कमजोर बहुत हो गई है। सुइयाँ लगती हैं इसे।

अब भी मैं और कुछ पूछना चाहता था क्योंकि मेरा मन कर रहा था कि मेरा काम अभी खतम नहीं हुआ। मगर मैं यह भी देख रहा था कि उस लड़की की व्यथा कितनी सादी थी, मामूली थी, कोई खास बात थी ही नहीं। मैं संवेदना दे सकता था तो अधिक से अधिक देना चाहता था, इसलिए मेरे मुँह से निकला, घबराओ नहीं, ठीक हो जाएगी लड़की। अब सोचता हूँ कि बजाय इसके अगर मैं पूछता, आज कौन सा दिन है तो कोई फरक न पड़ता।

बाप ने मानो मुझे सुना ही नहीं। लड़की ने अपने सेब की तरफ देखा, पूछा बप्पा ? बाप ने बड़े प्यार से मना कर दिया।''[11] इससे स्पष्ट होता है कि लड़की का पिता

स्वाभिमानी होने के साथ अपनी बेबसी का रोना किसी और के सामने रोये, किसी की दया पर आश्रित नहीं होना चाहता।

इसके विपरीत "टूटता तारा" का नायक भी कमजोर बेबस एवं गरीब लाचार वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है – "किन्तु समय और परिस्थितियों के सामने विवश होकर चोरी करके अपने परिवार का भरण पोषण करता है, और बार–बार जेल जाता है। जेल से छूटकर जब आता है तो अपनी पत्नी और बच्चे को भूख से व्याकुल और लड़ते हुए देखता है और उनकी भूख मिटाने के लिये वो फिर छेनी, बरमा हथौड़ा लेकर निकल पड़ता है, किन्तु जीवन से हारकर खाली हाथ लौट आता है और अपनी पत्नी से कहता है – "वह भूखा प्राणी, अभागा, चोर आज खाली हाथ घर लौटा था। इस रात कहीं भी अवसर नहीं लगा। बड़ी मनहूस रात थी वह। कोठरी में घुसकर उसने एक बार निरीह बच्चे की उन आँखों में देखा जो कह रही थीं मैं कुछ नहीं जानता फिर निर्लिप्त होकर बैठी पत्नी की ओर। बरबस दृष्टि को दूसरी ओर फेंककर वह बोला जान पड़ता है अपनी किस्मत का तारा टूट गया है।"[12]

एक छोटी सी यात्रा में कहानीकार स्वयं एक पात्र है। कहानी के पात्र करूणा से आप्लावित होकर उसमें बह जाते हैं, अखबार वाले छोटे लड़के से अखबार लेकर वे उसे अधन्ने के स्थान पर इकन्नी दे दी और मन में सोचा कि अच्छा हो ये पैसे वापस न लौटाए – "बस चल दी। कृपा के एक चरम वैभव में मैं मुस्कुराया कितना शालीन होगा वह क्षण जब मैं न पैसे माँगूगा न वह दे पाएगा और मेरे प्रति एक विशिष्ट अनुभव की स्मृति लिए हुए वह वहीं रह जाएगा और मैं चला जाऊँगा प्रतिकृत और अपने में एक बार फिर संपूर्ण।"[13]

दो छोटे बच्चों की ईमानदारी देखकर, जिन पर वे दया करना चाहते थे, लेकिन बच्चों ने बचे हुए पैसे वापस लौटाकर उन्हें जीवन के यथार्थ पर लाकर खड़ा कर दिया। उसका मन करूणा के सागर में डूब जाता है जब लड़का खुल्ले पैसे लाकर वापस लौटाता हैं तो बच्चा मुँह बाएं मुझे देखता रहा गया। मैं सोच ही रहा था कि इस समय मुस्कुराना मेरे गुप्तदान के प्रतिकूल तो नहीं होगा कि किसी ने खिड़की पर हाथ मारकर मुझे बुलाया। वह लंबा वाला लड़का था अब मैंने देखा कि वह दुबला भी बहुत था कह रहा था अपने पैसे लेते जाइए जनाब। हर चार कदम बस के साथ–साथ दौड़ा फिर सहसा निस्तेज होकर मैंने उसके हाथ से एक मैला सा अधन्ना ले लिया। मेरे अंदर कुछ वापस आने लगा। एक क्षण मैंने विरोध

किया पर फिर आने दिया। वह शांतिदायक था। मैंने लंबी साँस ली और धन्यवाद दिया कि मैं बच गया। जब मैं जाना चाह रहा था तो शायद वहाँ नहीं जाना था जहाँ उस अखबार वाले को दो पैसे बख्शते हुए मैं जाने वाला था, अब मैं वापस आ गया था, पर उस उजाड़ एकांत में नहीं जहाँ मनुष्यों से मिलना प्रतीक्षा करने जैसा लगता है।''[14]

किले में औरत कहानी का पुरुष पात्र दरबान में छिपे भिखमंगे को पहचान लेता है। उसके आत्म सम्मान और व्यवस्था के प्रति सोचने पर विवश है। रघुवीर सहाय जी की दृष्टि उस यथार्थ को देखती है जिसने आदमी को इस स्तर पर पहुँचाया है कि वह अपने स्वत्व को बेंचकर जीने पर मजबूर हो और ऐसा करने पर उसे अपना अपमान महसूस होना भी बन्द हो जाय। यही समाज की व्यवस्था की सबसे बड़ी मार है, जैसे गरीबी और गिरावट का एक दिन होता है जब आदमी अपने से जरा से मजबूत आदमी से डरने लगता है। इसी को लोग कर्तव्य और संतुलन कहते हैं। वह दिन उसकी जिंदगी में आ चुका था।''[15]

इसी प्रकार का एक और उदाहरण देखिये – ''लिफ्टवाले ने सलाम किया। जिसका मतलब था कि मैं उसे एक रुपया दूँ जिसका मतलब था कि वह वरदी होटल से पाएगा और गुजरा सलाम करके। मैंने उसे रुपया नहीं दिया। मैं उस गरीबी में शामिल नहीं था जो उसकी थी। होता तो रुपया देना और भी बदसलूक होता। मैं उस अमीरी में शामिल नहीं था जो इस तरह रुपया देने वालों की होती है। होता तो मैं न होता। पर मैं कितनी चालाकी से छुट्टी पा रहा था यहाँ होकर भी और यह जानकर भी कि मुझे यहाँ नहीं होना चाहिए था। लिफ्टवाले ने यह सब कुछ नहीं भांपा। उसने यही समझा कि फिर कभी देंगे। बख्शीश न देने से मेरे और उसके बीच कोई अपनापा उपजा है यह भी उसने नहीं जताया। जो मैं यह जताता तो यह मेरी चालाकी की हद होती और वह मैं उसके गांव का भी होता तो भी न मानता कि मैं उसकी जमात का हूँ।''[16]

ठीक इसी प्रकार रास्ता इधर से है कहानी के पुरुष पात्र भी नौकरी के लिये यहाँ वहां भटकता रहता है, बेरोजगार युवक को अंत में नौकरी मिल जाती है। लेकिन वो समाज में खुशामद और जी हुजूरी के वर्चस्व पर विजय नही मिल पाती अपनी निर्धनता को दूर करने के लिए वर्तमान परिवेश में वो जी हुजूरी करने को तैयार हो जाता है – दो एक से नौकरी क्यों करना चाहते है, इसका कारण बताया कि उन्हें अपने बूढ़े बाप का हाथ बँटाना है। तीनों

लड़कों ने कहा कि सीधी बात यह है कि हमें भी तो कोई रोजी चाहिए, नहीं तो भाई के मत्थे कब तक खाते रहेंगे। ये सब कारण काफी नहीं थे। इनसे यह सिद्ध होता था कि ये लोग कमाल दिखाएंगे।(17)

उसके विपरीत विजेता कहानी का नायक अशोक एक ऐसे पुरुष समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जो औरत को अपने हाथ का खिलौना समझते हैं। अपने पैरों के नीचे दबाकर रखना चाहते हैं और अपनी हर बात मनवाने में ही अपनी मर्दानिगी समझते हैं जैसे – यह मैंने किया है और यह स्त्री मेरी स्त्री है, वह इसे नहीं चाहती है और मैं जो कि उससे ज्यादा ताकतवर हूँ इसका कारण हूँ। सब ठीक हो जाएगा, हँसकर उसने कहा। एक भयंकर सी बोतल उसने निकाली कत्थई सी तीखी गंधवाली चीज भी सूँघा और आँखें आधी बंद कर बोला, तबियत खुश हो जाएगी और छुटी मिल जाएगी।''(18)

पर अशोक के तमाम दबाव और दवाओं के बाद भी उसकी पत्नी माँ बन जाती है, नितांत अमानवीयता कैसे एक अपरिहार्य सी प्रतीत होने वाली मानवीयता पर हावी हो जाती है, सभी कहानियों के पुरुष पात्रों की तरह अशोक भी परिस्थितियों से हार कर विवश हो जाता है। यथार्थ को अपनाने के लिए जैसे कहानी का एक अंश देखिये ''अशोक का दिल बुरी तरह धड़कने लगा। वह कैसे होगा ? प्रसन्न ? या याद रखें मुझे क्षमा कर दो उसने कहा और उसका चेहरा खिल उठा।''(19)

(2) नारी पात्र

रघुवीर सहाय जी की कहानियों में स्त्रियों की भूमिका उतनी ही है जितनी आटे में नमक की मात्रा। लेकिन फिर भी रघुवीर सहाय जी के स्त्री–पात्र समाज की असमानता के सामने सिर उठाकर खड़ा होने की क्षमता रखती हैं। जैसे विजेता कहानी में अशोक की पत्नी जो अपने पति की इच्छा के विरूद्ध सन्तान को जन्म देती है और अपने पति के अहम को तोड़कर स्वतंत्र नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

जैसे – ''सचमुच क्या यह सब कष्ट उसी ने उठाया था ? कामिनी सोचने लगी, अकेले वह निश्चय ही नहीं उठा सकती थी। ''मैं मरूँगी नहीं'', उसने कहा, ''मैं नहीं जाऊँगी।''

"सिर्फ एक बार थोड़ा कष्ट होगा और सब ठीक हो जाएगा।" "नहीं, नहीं" कामिनी ने कहा, "अपने लिए मैं कह सकती हूँ कि कष्ट हो पर किसी दूसरे के लिए कैसे यह तय कर सकती हूँ ? मैं अब तुम्हें कुछ न करने दूँगी" वह बोली।

"बेवकूफ, अभी तो उसमें जान भी नहीं पड़ी।"

"पर वह है" कामिनी ने कहा, "एक चीज थी जिसे तुम नष्ट कर देना चाहते थे और वह नष्ट नहीं हुई, यह प्रमाणित करते हुए कि वह है। मैं जानती हूँ कि वह है और दो बार तुम उस पर आक्रमण कर चुके हो और यह उन्हें बचा गया है। कितना विरोध किया होगा उसने, कामिनी ने सोचा और तरस खाकर अपने पति की ओर देखा। मैं जानती हूँ कि तुम उससे ज्यादा ताकतवर हो, पर तुम हार गए हो। अब तुम उसे रहने दो", उसने कहा "क्योंकि उसका होना आरंभ हो गया है," और मन में जोड़ा वह होगा और तुम्हें क्षमा कर देगा।"[20]

इससे स्पष्ट होता है कि कामिनी अपने पति के दबाव के बावजूद स्वयं कष्ट सहते हुए अपनी संतान को जन्म देती है, और पति को विवश कर देती है, परिस्थितियों से समझौता करने के लिए। जबकि आधी रात का तारा की स्त्री पति की विवशता के सामने विवश और निरूपाय है – "उसकी माँ गिरती पड़ती, अंधकार के किसी कोने से निकलकर आई, कुछ न खाए हुए उसे आज तीसरा दिन है। शायद तब तो कुछ विशेष चिंता की बात नहीं, सुनते हैं बिना खाए मनुष्य सात दिन तक जीवित रह सकता है।"[21]

चोर पति, बीमार बच्चा एवं घोर गरीबी के चलते कहानी की स्त्री पात्र सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों में जकड़ी स्त्री की भूमिका निभाती है। पुरुष की कमाई पर पूर्णतया आश्रित होने के कारण उनकी यह दशा है। जबकि किले में औरत कहानी की स्त्री पात्र गरीबी की सीमा रेखा पार कर गई है, जिसके पास तन ढकने को भी वस्त्र नहीं है, पर समाज की पूंजीवादी व्यवस्था की मारी यह एक औरत इतनी वस्त्रहीन हो गई है कि उसका अपना कोई शहर या गांव ही न बचा, जैसे उदाहरण देखिये – वह एक औरत थी। वह समझ रही थी कि वह सुंदर है। यह उसकी चाल ढाल से प्रकट था। मैंने सोचा गाना गाएगी मगर उसने पहले एक बाँह उठाई फिर एक टांग उठाई जैसे इन हरकतों से उसके किसी रहस्य का द्वार आधा खुलकर रह जाएगा। बाकी खोलने के लिए लोग व्याकुल हो उठेंगे। फिर उसने सीने पर हाथ रखा जैसे उसकी पोशाक वहीं से अटकी हुई है और वह हाथ हटा लेगी तो गिर

पड़ेगी। वह नई पोशाक थोड़ी सी इधर उधर की आदतों के बाद उसने अपने साये से हाथ डालकर उसे, साये को नहीं हाथ को, ऐसे हिलाना शुरू किया जैसे देखने वाला अपने हाथ को उसके साये में हिलाना चाहता।

अगले दस मिनट में औरत ने एक–एक करके सब कपड़े उतारे। अंतिम कपड़ा एक लँगोट उतारने के साथ लाल पीली रोशनियाँ बुझ गई। धुंधले उजास में वह नंगी खड़ी थी।''[22]

इससे स्पष्ट होता है कि जीवन यापन करने के लिए औरत अपनी शर्म तक बेच देती है और खरीदने वाले खरीदकर उसे शर्मसार करते रहते हैं। जबकि गुब्बारे कहानी की स्त्री पात्र मानवीय संवेदना से परे सिर्फ आधुनिक समाज के रंग ढंग को महत्व देती है, और हर सुन्दर दिखने वाली चीज को पैसे के बल पर खरीदना चाहती है। जैसे –

''अचानक स्त्री ने उसकी डलिया में से एक चप्पल उठा ली।''

''अरे'' उसने पुरुष से कहा ''हाऊ लवली इट्स थिंग्स।''

''लेकिन यह किस काम आएँगी ?'' पुरुष बोला – यह इतनी छोटी है कि बिलकुल बेकार है।''

स्त्री ने उत्तर दिया – ''ऊँह, इसी से कहती हूँ ब्यूटी को एप्रीशिएट हर शख्स नहीं करना जानता।''

पुरुष ने झेंपकर बात काटी – आप लेना चाहती हो तो ले लीजिए मिसेज कौशल मैं जानता हूँ आपको इन खिलौनों ने फैसिनेट कर लिया है।''[23]

एक और उदाहरण देखिये इसी कहानी से – ''मिसेज कौशल ने इस समय उन सब चप्पलों को आर्ट की दृष्टि से आठ आने में खरीद लिया था और अपनी पतली–पतली गोरी ऊँगलियों में फँसी एक चपली की सुंदरता को वे अजंता आर्ट के किसी विशेषज्ञ पारखी की भाँति गंभीर होकर परख रहीं थीं। जैसे केवल कविताओं में ग्रामों के सूर्यास्त का वर्णन पढ़ने वाला नागरिक, अपने तिमंजिले की छत पर से सीमेंट की हवेलियों से पीछे अस्त होते सूर्य को देख सराह रहा हो।''[24]

इससे स्पष्ट होता है कि मिसेज कौशल एक आधुनिक स्त्री है जो सिर्फ अपने सुख के साधन खोजती है। उन्हें अपनी बच्ची या पति की भावनाओं से कोई लेना देना नहीं है।

(1) आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य

साहित्यकार युगदृष्टा इसी अर्थ में होता है कि वह युग के परिवर्तन को सर्वप्रथम एवं सबसे सूक्ष्म रूप से देखता परखता है। उसके कंधों पर दोहरा दायित्व होता है। एक तो उसे सामाजिक जनचेतना को बिम्बित कर मानवीय भावनाओं को परिष्कृत और सांस्कारित करना होता है तो दूसरी ओर उस युग और समाज में निर्मित मूल्यों के संत्रास को उद्घाटित करना होता है। किसी भी रचनाकार के निर्माण के पीछे उसके परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति के निर्माण में जितना योगदान आन्तरिक सौन्दर्य का होता है। उतना ही बाह्य सौन्दर्य का भी होता है। आलोच्य कथाकारों के प्रमुख पुरूष एवं स्त्री पात्रों में इसी आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य की विशेष चर्चा उनकी कई कहानियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

(2) वैशिष्ट्य

आलोच्य कहानीकारों रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के स्त्री एवं पुरूष पात्रों में कुछ विशिष्ट योग्यतायें देखने को मिलती है। इनके पात्रों में व्यक्तिवादिता मनोवैज्ञानिक अनुभूति का वैचित्र चमत्कार एवं इनके जीवन में घटित होने वाली छोटी–छोटी घटनाओं का विवेचन तथा चित्रण की विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है।

(घ) अन्य पात्र

आलोच्य कथाकारों की कहानियों में पात्र योजना के अन्तर्गत कुछ अन्य पात्रों की परिकल्पना रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में देखने को मिलता है। परम्परागत स्त्री एवं पुरूष पात्रों के अलावा कुछ पशु–पक्षियों तथा प्रकृति को पात्र मानकर आलोच्य कथाकारों ने ऐसे सजीव पात्रों का अपनी कहानियों में विवेचन एवं विश्लेषण किया है। जिससे स्थूल होते हुये भी वह सजीव से पात्र लगने लगते है।

(ङ) चरित्र-चित्रण की विभिन्न शैलियाँ

रघुवीर सहाय अपनी कहानियों में अपने समय के यथार्थबोध के कारण अपनी करूणा का निर्मम विश्लेषण करते है। विश्लेषण के लिये वह बाध्य भी है क्योंकि रघुवीर सहाय में लोकतांत्रिक संवेदना है उससे उनकी कहानियों में असमानता की विभिन्न परतें खुलती हैं। रघुवीर सहाय की गहरी जनतांत्रिक संवेदना ने स्वांत्रयोत्तर भारत में पूँजीवादी ढ़ाचे और पश्चिमी आधुनिकता के नकल के कारण पनपती असमानताओं को भी उनके विभिन्न रूपों और परतों में सूक्ष्मता से देखा है। गैर बराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को तो खत्म कर ही दिया है। साथ ही अपने को नीचा और हेय मानकर बिना प्रतिवाद के अपनी स्थिति को स्वीकार कर जीने वाला जो आदमी बनाया है उसे उनकी कहानियों में औरत तथा रास्ता इधर से है हमारे सामने लाकर खड़ा करती है।[25] हिन्दी कहानी क्षेत्र में अवतीर्ण होने वाली अन्य नयी प्रतिभाओं में अपनी चुनी हुई कहानियों के बल पर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हिन्दी के उन कहानीकारों में आ जाते हैं, जो कविता लिखने के साथ–साथ कहानी लिख देने की मजबूरी से नहीं, बल्कि कहानी विधा में अपना कुछ विशेष जोड़ने के लिए कहानियाँ लिखने की जरूरत महसूस करते रहे हैं। नई कविता के आंदोलन से जुड़े अनेक कवियों ने हिन्दी कहानी को समृद्ध किया है। सर्वेश्वर उनमें से एक प्रमुख नाम है। सर्वेश्वर जी के मुख्यतः दो कहानी संग्रह ''कच्ची सड़क'' व अंधेरे पर अंधेरा'' संग्रहों में संकलित कहानियों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

कच्ची सड़क कहानी संग्रह

''कच्ची सड़क'' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का प्रथम कहानी संग्रह है। जिसका नामकरण उक्त संग्रह की अन्तिम कहानी के नाम पर किया गया है। इस संग्रह की कहानियों में सर्वेश्वर जी की 1942 से 1958 तक की कहानियाँ संग्रहीत हैं। इसका प्रथम संस्करण सितम्बर 1978 में लिपि प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। जो सर्वेश्वर जी की माँ को समर्पित कर लिखा गया है। 148 पेज के इस कहानी संग्रह में कुल 17 कहानियाँ संग्रहीत हैं। इन कहानियों में सर्वेश्वर दयाल जी ने प्रमुख रूप से मानव मन के अंदर कुलबुलाती हुई विभिन्न भावनाओं की जीवंत अभिव्यक्ति की है।

बरसात अब भी आती है

कहानी "बरसात अब भी आती है" में सर्वेश्वर जी ने एक किशोरी बालिका की भीषण बाढ़ में रक्षा न करने वाले, बाँध के सिपाही की मानसिकता का वर्णन है।

जीवन में कुछ ऐसी स्मृतियाँ मानव पटल पर अंकित हो जाती हैं। जिसे मनुष्य चाहकर भी अपने से अलग नहीं कर पाता। वह उन स्मृतियों को किसी तरह विस्मृत भी करना चाहता है, किन्तु वही दृश्य, वही परिवेश उस घटना को कैसे सजीव कर देते हैं। हमेशा खुशी देने वाले दृश्य, प्रकृति उसे पुनः वह खुशी नहीं दे पाते।

"यह अभागी बरसात मेरे लिए अब भी आती है, लेकिन मेरे मन की क्यारियों में अब फूल नहीं खिलते और न अब हरी–भरी लताएँ ही झूलती हैं, मेरे प्राणों में संगीत की एक भी लहर नहीं उठती और न मेरी आँखों में जवानी के सपनों के दीप ही झिलमिलाते हैं। मेरी ड्यूटी अब भी बाँध पर पड़ती है, बरसात जब भी आती है, बाढ़ अब भी आती है लेकिन ....।"[26]

नारी चरित्र के अनेक पहलू हैं जहाँ एक ओर वह दया, ममता, स्वामी भक्ति, स्नेह की जीती जागती प्रतिमा नजर आती है वहीं दूसरी ओर ऐश्वर्य, सम्पन्नता में आकंठ, निर्मम तथा इतनी निष्ठुर व निर्मम हो जाती है कि उसकी आसक्ति मानव से ज्यादा जानवरों में हो जाती है और उसके पीछे वह एक जान की कुर्बानी देने में भी नहीं हिचकती – "मुझे लगा जैसे मेरा कुत्ता भाग गया है; क्योंकि वह घर में कहीं नहीं मिलता या। मैंने उस खड्ड की तरफ खोजने के लिए भेजा था। वह गई तो, लेकिन लौटी नहीं।"[27]

इस कहानी में सर्वेश्वर जी ने कर्तव्य के प्रति जागरूक गरीब जाहिल सिपाही द्वारा बाढ़ में एक किशोरी बालिका की रक्षा न कर पाने की विवशता व धनाढ्य अकेली बुढ़िया फूआ द्वारा किशोरी को अपने घर में शरण न देने की धृष्टता का बखूबी चित्रण किया है।

पुलिया वाला आदमी

वर्तमान व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचारिता, चाटुकारिता, झूठ, डाट–डपट का विरोधी व्यक्तित्व संघर्षों को झेलकर किस तरह जाहिल, स्वाभिमानहीन हो जाता है, इसका सजीव अंकन "पुलिया वाला आदमी" कहानी में हुआ है।

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र का अंग है। वह पूर्णतया समाज के ऊपर अवलम्बित है। जहाँ रहकर उसके नैतिक गुणों का विकास होता है। व उसके गुणों को आदर की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन जब समाज में रहकर ही उसे सम्मान, स्वाभिमान, चारित्रिक उदारता त्यागने पर विवश होना पड़ता है तथा समाज व व्यवस्था की नीतियाँ उसके अंतर्मन को झकझोर देती हैं, और उसका स्वाभिमानी व्यक्तित्व विरोध कर उठता है।

"नौकरी पचासों की साहब। जो नौकर रखता है वह धोंस जमाता है। मुझसे झगड़ा हो जाता। होटल में रेस्टंरा में कहाँ नहीं की। सब जगह छोड़ना पड़ा। पेट के लिए इज्जत नहीं बेची जाती, धौंस नहीं सही जाती। कहाँ–कहाँ झगड़ू। सब जगह से हटना पड़ता है।"[28]

मानव समझौतावादी प्राणी है। वह सामंजस्य स्थापित करता हुआ गतिशील रहता है, लेकिन कभी–कभी वह अस्वीकार्य को सहज ही स्वीकार्य नहीं कर पाता, फलस्वरूप स्वयं को प्रताड़ित कर वह अपने अहं की तुष्टि करता है। उसमें तटस्थ भाव पैदा हो जाता है। जीवन रक्षा के आवश्यक उपादानों की प्राप्ति के प्रति भी वह उदासीनता बरतने लगता है। अपने आपको परिस्थितियों के हवाले कर देता है –

"दो रोटी की फिक्र तो करनी ही चाहिए।"

"वह फिक्र भी बहुत की साहब। अब तो यहीं बैठा रहता हूँ। जब तक जिन्दगी है चलता जा रहा है, चलता जाएगा। रोटी भी मिल ही जाती है।"[29]

कृतज्ञता ज्ञापन मानव स्वभाव का अंग है। अपने ऊपर की गई सहायता के प्रतिकार में हम स्वतः ही कृतज्ञ हो उठते हैं। लेकिन जिस तरह कसाई निरन्तर निरीह पशुओं को मारते–मारते क्रूर व निष्ठुर हो जाता है। दया, ममता, करूणा से उसका नाता टूट जाता है। उसी प्रकार मानव स्वभाव भी विषम परिस्थितियों के हाथों का खिलौना बन अपने नैसर्गिक गुणों से दूर हो जाता है। अपनी सहायता करने वाले के प्रति भी वह कृतज्ञता ज्ञापित नहीं कर पाता –

"दो–एक बार उसे बड़ा सुस्त और मुरझाया हुआ देखकर मैं उसके लिए घर से रोटियाँ ले गया। चाय, बीड़ी, बगैरह भी समय–समय पर ले जाकर देता रहा, कभी दो–एक

अपने पहने हुए कपड़े भी उसको दे दिए पर इन सबके बावजूद मुझे गुजरता देख पहचानने से इंकार करता। मुझे देखकर कृतज्ञता की मुस्कान भी उसके ओठों पर न आती।''(30)

प्रस्तुत कहानी में सर्वत्र खड़ी बोली का प्रयोग किया है। यथार्थ परिवेश कहानी में जीवित हो उठा है।

सीमाएं

''सीमाएं कहानी में सर्वेश्वर जी ने हर बात की सीमा की महत्ता को प्रतिष्ठित किया है हर बात की सीमा स्नेह की भी और कृतज्ञता की भी – विश्वास की भी।''(31)

सृष्टि के विभिन्न प्राणी नियमों में आबद्ध हैं। उच्छृखंलता अशांति का कारण बनती है। निश्चित परिधि में किए गए कार्य प्रभावशाली होते हैं कहते हैं – समुद्र की भी सीमा निश्चित है, समुद्र की सीमा उल्लंघन भयंकर विनाश को निमंत्रण दे सकती है। वहीं जीवों के द्वारा निश्चित परिधि का मूल्यांकन मानसिक यातना का कारण बन जाता है।

''मैंने आपसे कहा या इस मनहूस को परचाइए नहीं। देखिए इसने स्वेटर की इतनी ऊन ही काट दी।''(32)

स्नेह निर्भीकता को जन्म देता है। जीवों के प्रति अत्यधिक स्नेह उन्हें स्वतंत्र व निर्भीक बना देता है। उनकी निर्भीकता सीमातीत हो जाती है।

तुम मुझसे डरते नहीं ? तुम्हारी जाति के जीव तो मुझे देखते ही भाग जाते हैं। तुम इतने निडर क्यों हो ?

इस कहानी में बिल्ली के नन्हें बच्चे के उपद्रव एक सीमा तक तो सहन किए गए, फिर उसे सीमा तोड़ते देख घर से बाहर छुड़वाना पड़ा। प्रस्तुत कहानी अपना अक्षुण्य प्रभाव बनाने में समर्थ है।

डूबता हुआ चाँद

''डूबता हुआ चाँद'' सर्वेश्वर की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। जिसमें पुरुष द्वारा नारी की प्रताड़ना व मृत्यु को प्राप्त होने का सजीव अंकन किया गया है।

सृष्टि की सुन्दर कृतियों में नारी सर्वोत्कृष्ट है। रूप सौंदर्य विधाता की देन है। जहाँ नारी के अप्रतिम सौंदर्य पर पुरुष भंवरा बन मंडराता है। वहीं सौंदर्य साधनों में किंचित कमी नारी जीवन को अभिशप्त कर देती है। संसार में मुख्यतः गौरवर्ण और श्यामवर्ण मुख्य है। आवश्यक नहीं कि गौरवर्ण ही आकर्षण व सौंदर्य का पुँज हो, लेकिन कभी–कभी सिर्फ श्यामवर्ण के कारण नारी को नारकीय जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। स्वयं सर्वेश्वर जी ने इस बात की पुष्टि अपनी कहानी में की हैं –

"कोई विश्वास करे या न करे, लेकिन मैं सच कहता हूँ कि उसका कुल इतना ही दोष था कि वह गौरी न थी। वह किसी अभिशाप की बदली की छाह से साँवली थी।"[33]

सुख की सच्ची अनुभूति के लिए दुःखों का सन्निकिट आना आवश्यक है। श्री सम्पन्नता – वैभव से प्राप्त आल्हाद के लिए अभावों की मध्यस्थता अनिवार्य है। जैसे वियोग–प्रेम की कसौटी है। वैसे ही अभाव सत्य मूल्यांकन का। स्नेह से वंचित व्यक्ति ही स्नेह की सही कीमत आंक सकता है –

"स्नेह और सहानुभूति की कीमत वही समझ सकते हैं, उनसे ही मिल सकती है, जो इससे जीवन में वंचित हों।"[34]

नर और नारी गाड़ी के दो पहियों के समान हैं। नारी का अवलम्ब नर है। नारी पुरुष को सर्वस्व मान पति को परमेश्वर मान अभ्यर्थना करती है। निरन्तर शोषित होने पर भी पति के अक्षम्य अपराधों को सहजता से विस्मृत कर देती हैं व पति के विरोध में एक शब्द भी कहने के लिए तैयार नहीं होती।

"कोई औरत अपने पति की बुराई कर सकती है नहीं पति देवता होता है। दुनिया में निगाह में बुरा होने पर भी औरत की निगाह में वह बुरा नहीं होता। औरत को उसे बुरा कहने या समझने का कोई हक नहीं है।"[35]

नारी की अतिशय स्वामिभक्ति ही उसके विनाश का कारण है। उसकी सहनशीलता अत्याचारी को बढ़ावा देती है। कहानीकार स्वयं इस बात को स्वीकार करता है – "नारी की यही अंधभक्ति उसे तबाह कर रही है। सब कुछ उसका होने पर भी उसे कुछ नहीं मिलता। सब कुछ देने पर भी वह कुछ नहीं पाती, एक हल्का–सा प्यार तक नहीं।"[36]

"डूबता चाँद" कहानी में सर्वेश्वर जी ने स्पष्ट किया है कि ऐसे एक ही नहीं न जाने कितने घरों में चाँद डूब जाते होंगे और उनकी चाँदनी किसी अंधेरे कोने में अंधभक्ति और अत्याचार की परतों में घुट–घुट कर दफन हो जाती होगी।

प्रस्तुत कहानी में खड़ी बोली व उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है।

सोने के पूर्व

छोटी सी चाह भी आदमी की पूर्ण न होने पर मन में होने वाली व्यथा को "सोने के पूर्व" शीर्षक कहानी में सर्वेश्वर जी ने स्पष्ट किया है। जीवन–यापन के आवश्यक विविध उपकरण खाना–पीना के साथ–साथ निद्रा का भी अपना महत्व है। दिन–भर जागरण के पश्चात सांसारिक कलह से मुक्ति निद्रा के आगोश में ही मिलती है। चैतन्य जगत से जैसे मानव का तारतम्य टूट जाता है। नींद में वह लौकिक बंधनों से मुक्त हो अलौकिक सुख को प्राप्त करता है, लेकिन जब उसकी यह छोटी सी कामना पूर्ण नहीं होती, तब न केवल प्रकृति के ऊपर बल्कि अपने ऊपर भी उसका क्रोध प्रकट होने लगता है –

"मैं चाहती हूँ कि मुझे नींद आ जाए, लेकिन इतनी हल्की सी चाह भी आदमी की यहाँ पूरी नहीं होती। मुझे अपने ऊपर गुस्सा आता है, उन हवा के अल्लाएँ हुए झोंकों पर गुस्सा आता है जो रह रह कर बाहर बरसात की रंगीन नशीली फुहार चुराकर कभी–कभी मेरे ऊपर डाल मुझे गुदगुदा जाते हैं।"(37)

मानव मन अनन्त आकांक्षाओं का भंडार है। आकांक्षायें असीमित हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि सभी को अपना इच्छित – अभिलषित मिल जाये। कहते हैं हम जिन परिस्थितियों या वस्तुओं से किनारा काटते हैं, वे स्वयंमेव हमें सुलभ हो जाती हैं। उनसे पलायन हमारे लिए असंभव हो जाता है। अनिच्छत के मध्य ही हमें सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। सोने के पूर्व मानव मन शांति चाहता है, लेकिन जब अनिच्छत का उससे सामना होता है तब वह खीझ उठता है –

"जिस रेस्तरा में मैं आज से काम करने लगी हूँ, उसमें मालिक का चेहरा भी मेरी आँखों के आगे बनने लगता है। मुझे यह बुरा लगता है, क्योंकि मैं सोना चाहती हूँ, इसलिये कुछ खींझकर मैं पलके खूब जोर से दबाती जाती हूँ।"(38)

प्रशंसा नारी जाति की कमजोरी है। अपने व्यक्तित्व की उपेक्षा नारी अन्तर्मन को विद्रोही बना देती है। पुरुष द्वारा उसकी कमजोरी का संकेत उसे तिलमिला देता है –

"तुम मुस्कराना नहीं जानती, कल सीखकर आना अगर काम करना हो। मैं तिलमिला उठी हूँ नीच कुत्ता। मुस्कराना सीखकर आओ। मैं नहीं आऊँगी। नहीं काम करूँगी।"[39]

वही प्रशंसा नारी मन को प्रफुल्लित कर देती है। वह अपने प्रशंसक के प्रति सर्वस्व समर्पित करने को उत्सुक हो उठती है। अधिक से अधिक उसके साहचर्य की अभिलाषा करती है।

"तुम्हारी मुस्कान में बड़ी कला है।' इतना कहते–कहते उसकी मुखाकृति मिट चली है मैं नहीं चाहती कि यह आकृति मिटे, पर वह मिटती जा रही है।"[40]

चिन्ता मानव को मृत्योन्मुख करती है। कहा भी गया है – चिन्ता चिता से बढ़कर है, धुन के समान लग जाती है।

चिन्ता जीते को खाती है, मुर्दे की चिता जलाती हैं। निरन्तर चिन्तन मनन व क्षुद्र अभिलाषा की आपूर्ति मानव को असहाय बना देती है –

"शायद आज की रात मैं सो नहीं सकूँगी, मर सकूँगी या नहीं यह भी नहीं कह सकती इतना तो लगता है जैसे मैं अधमरी हो गई हूँ।"[41]

यथार्थवादी शैली पर आधारित सर्वेश्वर जी की यह कहानी अत्यंत प्रभावोत्पादक है।

मौत की छाया

मृत्यु एक यथार्थ सत्य है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। जन्म जीवन का प्रथम सोपान है, व मृत्यु अन्तिम। जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी हुई है। संसार में आने वाला हर प्राणी मौत से साक्षात्कार किए बगैर इस नश्वर संसार से छुटकारा सहज में ही नहीं प्राप्त कर सकता। पारलौकिक सुख मृत्यु की नौका पर बैठकर ही प्राप्त हो सकता है।

मृत्यु की आशंका मात्र दिल–दिमाग में हलचल मचा देती है। सांसारिक प्राणी इस सत्य को झुठलाने के लिए ही भौतिक सुख सुविधाओं में डूबा रहता है। फिर भी जिन्दगी के किसी न किसी मोड़ पर मौत की अनिवार्यता अनुभव होने लगती है। तब हर घड़ी, हर क्षण अपने ऊपर मौत का साया अनुभव होता है।

मानव सामाजिक प्राणी है। समाज के प्रति हर मनुष्य का कुछ उत्तरदायित्व है। वह नियमों में आबद्ध जीवन के कारण शंकालु रहता है। यही कारण है कि एकान्त में सोलह–सत्रह वर्ष की नवयौवना की शीत–क्षुधा से पीड़ित देख भी उनकी सहायतार्थ प्रस्तुत नहीं हो पाता। उसकी निर्बलता आड़े आती है। व्यर्थ की निर्बलता लादकर एक जीवन नष्ट करना कहाँ तक उचित है ?

"दूसरों का जीवन इस प्रकार की निरर्थक निर्बलता का दास बन कर भ्रष्ट करना पाप है।"[42]

विकृत मस्तिष्क संवेदनहीन होता है। मानसिक असन्तुलन अच्छा–बुरा सुख–दुःख की पहचान खो बैठता है। अत्यधिक कष्ट में भी वह निर्वस्त्र बाला चिन्ताओं, कष्टों से मुक्त थी। इतने कष्ट के समय में वह अपने विकृत मस्तिष्क के कारण कितनी सुखी है। "वह ऐसे ढंग से खिलखिलाती है, मानो उसे कोई गुदगुदा रहा हो, उसे खीर याद आ रही है, मानो वह कोई दावत खा रही हो।"[43]

लज्जा नारी का आभूषण है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी स्त्री–पुरुष से ज्यादा लज्जाशील होती है –

"पागल स्त्री के अंदर पागल पुरुष से भी अधिक लज्जा रहती है।"[44]

प्रस्तुत कहानी में सर्वेश्वर जी ने पागल स्त्री की असामयिक मौत पर, मौत की छाया के अहसास का चित्रण किया है। कहानी प्रभावोत्पादक है।

मौत की आँखें

"मौत की आँखे" प्रेम पर उत्सर्ग होने वाली प्रेमी की कहानी है।

प्रेम मानवीय आत्मा का स्वाभाविक गुण है। प्रेम उत्पत्ति में किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं महसूस करता है। वह तो हमारे अंतस में स्वयंमेव जागृत हो जाता है। प्रेम के लिए जाति बंधन नहीं है। वह पशु–पक्षी सभी में विद्यमान है। मोहब्बत जिन्दगी की नैसर्गिक आवश्यकता है। प्रेम का संबंध नश्वर शरीर से न होकर अनश्वर आत्मा से होता है।

"मोहब्बत का ताल्लुक जिस्म से नहीं, बल्कि रूह से होता है।"[45] सृष्टि परस्पर सहयोग पर आश्रित है। बिना आश्रय के विस्तृत जीवन की कल्पना संभव नहीं। स्त्री–पुरुष का आश्रय खोजी है, कपोत–कपोती का आश्रय खोजता है। आश्रय से समर्पण की भावना जन्म लेती है। समर्पित ह्रदय अनन्त ऊँचाईयों पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

"संसार का हर एक प्राणी किसी न किसी का आश्रय खोजता है। किसी के आगे वह मौन होकर अपना सब कुछ समर्पित कर देता है। यह समर्पण ही जीवन है। जिन्दगी के इस समर्पण को ही दुनियाँ मोहब्बत और प्रेम के नाम से पुकारती है।"[46]

कहानी में उर्दू–फारसी के शब्दों का प्रयोग किया गया है। मुहावरों का प्रयोग व वाक्य विन्यास उत्कृष्ट है।

क्षितिज के पार

बचपन में प्रस्फुटित प्रेम का अंकुर अमीरी गरीबी की दीवार में दबकर नष्ट हो जाता है, लेकिन बचपन की सौगात सहज ही विस्मृत नहीं होती। फलस्वरूप एकतरफा प्रेम प्रेमी को मृत्यु की ओर उन्मुख कर देता है। "क्षितिज के पार" कहानी में सर्वेश्वर जी ने गरीब मल्लाह का जमींदार की पुत्री के प्रति एकतरफा प्रेम व बलिद्रान को प्रकट किया है।

मनुष्य अपने जीवन में कितने कोमल कल्पनाएँ लेकर प्रवेश करता है। भविष्य के सुखमय चित्र उसकी आँखों में सदा ही मंडराया करते हैं। गरीब मंगल व धनी इंदु के मन भी इन सुखमय दिनों की कल्पना करते रहते।

"काश ! तुम जीवन नैया के मल्लह होते।"[47]

सच्चा प्रेम जीवन के पार्थिव सुखों में विस्मृत नहीं होता। गरीबी में प्रस्फुटित प्रेम का अंकुर शनै–शनै लघु पौधे में परिणित हो जाता है, जिसके अस्तित्व को जीवन रहते नहीं नकारा जा सकता।

"मंगल ने सोचा, इन्दु उसे भूल गई, अच्छा ही हुआ। अपने हृदय को लाख तसल्ली देती पर उसका हृदय न मानता। उसे इन्दु की याद हर घड़ी घेरे रहती। आँखें उसके एक दर्शन के लिये तरसती रहती।"[48]

आशा ही जीवन है और निराशा मृत्यु। आशा जीवन के प्रति लालसा जागृत करती है। आशा की डोर टूटने पर जीवन–भार–स्वरूप लगने लगता है। मनुष्य निराश हो जीवन संग्राम से किनारा कर जाता है। उसे मृत्यु की गोद में ही अपूर्व सुख व शांति दृष्टिगोचर होती है। प्रेम की असफलता प्रेमी के हृदय को विदीर्ण कर देती है। फलस्वरूप यह मृत्यु की गोद में जाने को उत्सुक हो उठता है – "परन्तु मंगल की नाव धार के साथ जल्दी–जल्दी बढ़ती चली जा रही थी। जीवन के तंग मंगल शक्ति भर डॉडू चला रहा था। .... और मंगल की नाव भागती हुई चली जा रही थी दूर .... क्षितिज के पार ....।"[49] सर्वेश्वर जी की इस कहानी में भाषा प्रवाहपूर्ण है। सर्वत्र खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है।

भगत जी

इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर जी ने अनूठे व्यक्तित्व के प्रति लोगों की जिज्ञासा को प्रकट किया है। व्यक्तित्व के विविध पहलू होते हैं। कई व्यक्तियों का जीवन खुली किताब की तरह होता है, जिसे जो चाहे पढ़ सकता है। ऐसा व्यक्तित्व सभी के लिए सहज सुलभ होता है, लेकिन कुछ व्यक्ति अन्तर्मुखी होते हैं, जिन्हें जानने के लिए उनके निकटस्थ जाना जरूरी है। ऐसी विभूति समाज के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु होती है। उसके प्रति जिज्ञासा स्वाभाविक है। कहानीकार भी उनके प्रति जिज्ञासु हो उठता है – "यह भगत जी क्या बला है ? रास्ते भर उनका चमत्कार देखता आया हूँ।"[50]

शरणागत की रक्षा करना मानव का पुनीत कर्तव्य है। स्वयं प्रभु राम ने भी शत्रु पक्ष के विभीषण को शरण दे उसकी रक्षा का बीड़ा उठाया था। शरण देकर फिर उसे दुत्कारना निन्दनीय है :–

"किसी को शरण देकर फिर दुत्कार देना सबसे ज्यादा बुरा है। पहले शरण ही न दिया होता।"[51]

संतोष, सीमित आकांक्षाएं सुखों की खान हैं। कहा भी गया है – "गोधन, गजधन, खाधनन और रतनधन खान, जब आवे संतोष धन सब धन क्षुरि समान।" संतोषी जीवन अल्प साधनों से ही संतुष्ट रहता है।

घर पर जो कुछ बच कर आता था ये मोहल्ले की लड़कियाँ छीना–झपटी कर साफ कर देती थीं। लेकिन भगत जी बुरा नहीं मानते, बल्कि उन्हें अच्छा लगता।

सर्वेश्वर जी ने "भगत जी" कहानी के माध्यम से "महलिया" में बाजे ताधिर धिन्ना; नेहरवा हमका न भावे, ऋतु फागुन नियरानी, जैसे कबीर के पदों की योजना की है।

रूप और ईश्वर

इस कहानी में सर्वेश्वर जी ने रूप और ईश्वर के अपूर्व संयोग को प्रकट किया है।

सुन्दरता की ओर आकृष्ट होना मानव की सहज प्रवृत्ति है। नारी–सौंदर्य के आकर्षण से तो महर्षि वशिष्ठ भगवान शिव जैसे योगेश्वर नहीं बच पाये, साधारण मानव तो फिर भी इंद्रियों का गुलाम है। अप्रतिम सौंदर्य ईश्वरोन्मुख करता है, लेकिन जब रूप ही ईश्वर को खोजे तब विस्मय होना स्वाभाविक है –

"रूप के सात्विक आकर्षण में ही ईश्वर की झलक दिखाई देती है। रूप को ईश्वर की खोज आश्चर्य है।"[52]

रूप के आकर्षण से ईश्वर की आनंदमय अनुभूति होती है। संस्कारी सबल इंद्रियों को भी रूप की तृष्णा रही है और उसी रूप से उसका ईश्वर छनकर बरसता है। रूप का आवेग मन व इंद्रियों को विदीर्ण कर देता है। रूप ईश्वर प्राप्ति में स्वयं को बाधक देख कृत संकल्प हो उठता है –

"अब कभी न आऊँगी। देव, अपनी निर्बलता से तुम्हें निर्बल नहीं कर सकती।"[53]

मानव के लिए रूप का आकर्षण प्रेरणादायक है। रूप मन को अनन्त गहराईयों तक स्पर्श कर उच्चादर्शों को जन्म देता है। जो रूप इंद्रियों का पतन, इच्छाओं की दासता, आत्मा का पराभव करे। उसको सत् का लेशमात्र भी नहीं होता।

"सात्विक रूप हमें इन क्षणिक ऐन्द्रिय लिप्साओं से मुक्त स्वर्ग के पवित्र नन्दन–निकुंज में आत्म विस्मृति के मलयानिल की लहरों पर झूल, सत् चिद् आनन्द की रसवृष्टि करता है। रूप वासना की सृष्टि नहीं करता, अपितु ईश्वर को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।"(54)

साधारण मानव का मोहपाश में बंधना सहज है तब इन्द्रियजित ऋषि पथभ्रष्ट हो, रूप का साहचर्य चाहते हैं, तब अनिष्ट की आशंका बनी रहती है।

रूप की सात्विकता मन और इन्द्रियों की सात्विक़ता पर निर्भर है। निर्बल इन्द्रियाँ सात्विक रूप की कल्पना नहीं कर सकतीं। इन्द्रियजित आत्मा ही रूप के चिर सात्विक आनन्द में विभोर हो सकती है। रूप का दर्शन ऋषि वेदमित्र का संयम तोड़ देता है। पारलौकिक आनंद भौतिक आकर्षण में परिवर्तित हो जाता है।

"आज ऋषि होकर इस रूप और यौवन के नश्वर बन्धन में बंध गए। ऋषि मैं तुम्हारी साधना नहीं नष्ट कर सकती, मुक्ति मार्ग के राही, इन भौतिक आकर्षणों में पड़कर अपनी तपस्या नष्ट न करो। तुम अमर हो।"(55)

उक्त कहानी प्रेरणादायक व मर्मस्पर्शी है। आद्यन्त भाषा का सौन्दर्य दर्शनीय हैं।

जिन्दगी और मौत

"जिन्दगी और मौत" कहानी में कहानीकार ने स्पष्ट करना चाहा है, कि जिस प्रकार लोहा, लोहे को काटता है, उसी प्रकार नारी ही नारी के लिए जटिल पहेली बन जाती है।

यह कहानी एक ऐसी नारी की कथा है जो अपने प्रेम का प्रतिशोध दो प्रेमियों को मौत की गोद में सुला स्वयं अपने पति से मौत को प्राप्त करती है।

प्रेम की उत्पत्ति स्वाभाविक है। प्रेम का विरवा तो स्वतः अंकुरित होता है। जर्बदस्ती किसी के हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं किया जा सकता –

"झूठा दोषारोपण ठीक नहीं। मैं आज पन्द्रह दिनों से तुम्हारे कथनानुसार ही पहाड़ की तलहटी के ग्रामों में दवाईयाँ बाँटती फिर रही हूँ, केवल इसलिए कि तुम्हें अपना

सम्बन्ध बढ़ाने का अवकाश मिल जाए। फिर भी तुम सफल न हो सकीं इसमें मेरा क्या दोष ?''(55)

युगों–युगों से यह संसार दो प्रेमियों के मार्ग में रूकावट बनता आया है। ''लैला मजनू'', ''शीरी–फरियाद'', ''रोमियो–जूलियट'' जैसे प्रेम दीवानें अपने प्रेम पर समर्पित हो गये। ''प्यार की शिक्षा पर सृष्टि के प्रारम्भ से ही अत्याचार होते आए हैं। दीपक की ज्योति पर पतंगे जलते हैं, यही ईश्वर का विधान है।''(56)

सरल ह्रदय कपट नहीं समझता कुटिलता के जाल में फँस मृत्यु को हँसते–हँसते गले लगाने को उत्सुक हो जाता है। प्रेम ह्रदय की पवित्र भावना है। जो पवित्रता की ओर स्वभावतः आकर्षित हो उठता है –

''पत्थरों के सामने रक्त से अर्चना करना व्यर्थ है लता। ये पाषाण अपनी ही जलन समझते हैं, दूसरों को नहीं। अपने स्वार्थ की तुष्टि के लिए समस्त संसार की बलि कर सकते हैं। .... शक्ति और छल से प्यार नहीं खरीदा जा सकता। अबोध स्त्री, प्यार स्वयं बिक जाता है, जिधर पवित्रता और सफाई होती है।''(57)

एक बार की जली हुई प्रतिशोध की आग, जीवन भर नहीं बुझती और मूर्ख मनुष्य दूसरों को जलाने की आशा में स्वयं भस्म हो जाता है। जिन प्रेमियों को एक दूसरे की बाहों में बाहें डाले मरने का अवसर मिलता है, भला उनसे ज्यादा भाग्यशाली कौन होगा –

''डरती है तू, पगली, हम तुम साथ–साथ मर रहे हैं, इससे बढ़कर और कौन सुख हो सकता है ? यह मौत नहीं है लता – इसे जिन्दगी कहते हैं। हँस–हँस, रोती क्या है।''(58)

सर्वेश्वर जी की यह कहानी प्रेमियों की अर्न्तव्यथा का सही आंकलन करने में समर्थ हैं। **छिलके के भीतर** : इस कहानी में सर्वेश्वर जी ने एक–दूसरे की घात में बैठे हुए दो मित्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों को उजागर किया है।

आज दोस्ती के मायने बदल गये हैं। ढोंग–फरेब, असत्य आचरण अपनी चरम सीमा पर हैं। पैसा इन्सानी जज्बातों को दबा देता है। प्रभू और ठाकुर दो दोस्त पैसे के पीछे ही एक दूसरे से कपटाचार करते हैं –

आधी रात को ठाकुर चुपचाप उठा। प्रभू बेहोश सो रहा था। अंगूठी के रुपये उसकी जेब में हो सकते हैं ? लालटेन की फीकी–फीकी रोशनी में वह कुछ देर दैत्य – सा खड़ा सोचता रहा। .... औंधे लेटे होने के कारण परभू के कोट के भीतर की जेब दबी हुई थी उसने सावधानी से उसे करवट कर दिया, जेब में हाथ डाला पर वहाँ रुपये नहीं थे। एक पिस्तौल थी। .... उसकी निगाह अपनी अंगुली में पड़ी अंगूठी पर पड़ी, जिसका हीरा चमक रहा था। एक–दूसरे की घात में बैठे हुए दोनों मित्रों के छिलके उतर चुके थे और भीतर की छिपी वास्तविकता उभर आयी थी।

"छिलके के भीतर" कहानी में वास्तविकता का चित्रण किया गया है।

<u>**मास्टर श्याम लाल गुप्ता**</u> : इस कहानी में सर्वेश्वर जी ने गांधी के सिद्धांतों पर जीवन–यापन करने वाले देश सेवक की दुर्दशा को प्रस्तुत किया है।

भारत वर्षों तक गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा रहा। भारत की आजादी अनन्त संघर्षों का परिणाम है। आज जिन देश सेवकों द्वारा हमें आजादी मिली है, हम स्वतंत्रता के वातावरण में सांस ले रहे हैं, उन्हीं का अनादर हो रहा है। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी मास्टर श्याम लाल गुप्ता भी इससे बच नहीं पाते।

"यह तो पूरा पागल है, मियां।" किसी ने जोर से, लेकिन आवाज दबाकर कहा।

"सरकार कम्बख्त भी तो पागलों को पेंशन देती है।" किसी ने तीखा रिमार्क किया।

"वह किस पागल से कम है .... "दूसरा रिमार्क छूटा। .... "चुप रहो, चुप रहो, जानते नहीं हो, देश सेवक हैं, इन्हें सब माफ है।"[59]

मानव स्वार्थी है, उसके सोचने का दृष्टिकोण बदल गया है। वर्षों तक अत्याचार सहकर अपने अतीत को भुला बैठा है। हम उन्हें भूल गये हैं, जिन्होंने हमें नया जीवन, नयी सांसें दी हैं। जिन्हें हमें सहेज कर रखना चाहिए। काम निकल जाने पर हमारे लिए उनकी उपयोगिता समाप्त हो गई है। आज उनका मूल्य हमारे सामने टूटी तलवारों से ज्यादा नहीं है।

"ये टूटी तलवारें हैं, जिन्हें युद्ध के बाद संजोकर रखने की जरूरत नहीं होती, उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है, क्योंकि युद्ध जीता जा चुका है।"(60)

"मास्टर श्याम लाल गुप्ता" कहानी स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की उपेक्षा को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं।

<u>स्नेह और स्वाभिमान</u> : "स्नेह और स्वाभिमान" कहानी में सर्वेश्वर ने पंजाबी बालिका के स्नेह और स्वाभिमान को अभिव्यक्त किया है। जाति का प्रभाव उस नन्हीं बालिका में भी था।

स्वाभिमान प्रकृति की देन है। हर जाति का अपना–अपना स्वाभिमान होता है। स्वाभिमान की झलक बड़े–बूढ़ों से लेकर बच्चों तक में समान रूप से देखने को मिलता है। आर्थिक विपन्नता भी उन्हें उनके स्वाभिमान से विमुख नहीं करती।

"आज शरणार्थी को भिखारी समझते हैं, वह अपने को भिखारी नहीं समझने देना चाहता यह उसका जातीय स्वाभिमान है। यह उसके उज्जवल अतीत की उस पर मुहर है।"(61)

व्यक्तित्व को स्थापित करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। व्यक्ति अपने ही भावों के अनुसार दूसरों को आंकता है। स्वाभिमान उग्र के बंधनों में नहीं बंधता।

"उनकी आँखों में स्वाभिमान था। हवा के कारण उसके बाल और उसकी गन्दी ओढ़नी उड़ रही थी। उसके पतले–पतले अधरों पर एक स्नेह से भींगी हुई मुस्कान। मैंने स्नेह और स्वाभिमान के प्रतीक उस सन्तरे की ओर एक क्षण को देखा और दूसरे क्षण उस बालिका की ओर।"(62)

उक्त कहानी में पंजाबी भाषा का प्रयोग किया गया है।

<u>पत्थर के फूल</u> : "पत्थर के फूल कहानी में सर्वेश्वर जी ने धन की चमक में डूबी प्रेमिका द्वारा निर्धन प्रेमी के भावों की उपेक्षा को दर्शाया है।

आभूषण प्रेम नारी जाति का स्वाभाविक गुण है। जो बचपन से ही उनमें दिखाई देता है। नन्हीं मानू भी आभूषणों के प्रति लालायित है –

"देखो न, मेरे कानों के ये फूल – मानू, कितने अच्छे हैं,

.... ये सोने के हैं मानू।" ....[63]

विरला व्यक्ति ही प्यार की कीमत समझ सकता है। सिक्कों की खनखनाहट में प्रेमी के अन्तस्थल में प्रवाहित भावों की सरिता की कल–कल ध्वनि नहीं सुनी जा सकती।

उक्त कहानी में संक्षिप्त वाक्यों का प्रयोग किया गया है।

कच्ची सड़क : "कच्ची सड़क" कहानी में गाँव के सरपंच ठाकुर द्वारा भोले–भोले ग्रामीणों को झूठा आश्वासन दे उनसे काम करवाकर व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति को अभिव्यक्त किया गया है।

भारत गाँवों का देश है। यहाँ की 80 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। देश की प्रगति के लिए ग्रामीण अंचलों की प्रगति अति आवश्यक है। गाँव की उन्नति कुटीर–लघु उद्योगों से ही सम्भव है। इसके लिए ग्रामीणों को स्वयं कार्य करना होगा। उनका सतत् प्रयास न केवल गांव को आगे ले जा सकता है, बल्कि देश को भी गौरवान्वित कर सकता है। सर्वेश्वर जी ने स्वयं इसको स्पष्ट किया है –

"महात्मा जी कह गए हैं, ग्रामोद्योग से ही देश का कल्याण होगा। गाँव वालों को हर काम अपने पैरों पर खड़ा होकर करना चाहिए। अपने गाँव को स्वर्ग बनाओ, सारा देश स्वर्ग हो जाएगा।"[64]

प्रत्येक वस्तु आसानी से उपलब्ध नहीं होती, उसे प्राप्त करने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ता है। जिस प्रकार रत्नों की खोज करने के लिए व्यक्ति को गहरे पानी में प्रवेश करना पड़ता है। उसी प्रकार अपना अभीष्ट प्राप्त करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। श्रम का जीवन में बहुत महत्व है। श्रम से ही, स्वयं की, गाँव की व देश की प्रगति सम्भव है। आज विश्व में जापान कलाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसका प्रमुख कारण है, वहाँ की जनता द्वारा स्वयं श्रम करना। धन–धान्य से सहायता करना हालाँकि सभी के लिए सम्भव नहीं, लेकिन श्रम सर्वथा सुलभ है –

"पैसा हर आदमी नहीं दे सकता है, उसके लिए गरीब अमीर का कोई प्रश्न नहीं। इसलिए श्रमदान सबसे बड़ा दान है ...."[65]

दुनिया में असम्भव कुछ भी नहीं है। मानव पुरुषार्थ के बल पर असम्भव को भी सम्भव बना सकता है, पुरुष अपने पुरुषार्थ से मिट्टी को भी सोना में परिवर्तित कर सकता है –

"आदमी का पौरुष ही पारस है, जिसे चाहे सोंना बना दे।"[66]

उक्त कहानी में ग्रामीण परिवेश जीवित हो उठा है। कहानी नग्न यथार्थ की ओर संकेत करती है।

अन्धेरे पर अन्धेरा : सर्वेश्वर जी का दूसरा कहानी संग्रह अन्धेरे पर अन्धेरा अपनी पत्नी विमला को समर्पित कर लिखा गया है। इसका प्रथम संस्करण 1980 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में निहित कहानियों के सम्बन्ध में कहा गया है – "भारतीय जिन्दगी से सर्वेश्वर का परिचय ऐसा कभी नहीं रहा कि उनकी कहानी महानगरीय संत्रास की नकली दुनिया में आ जाए। भारतीय गाँव और कस्बे की जिन्दगी के अनुभवों को सर्वेश्वर एक प्रौढ़ कला में भी बदलते हैं और इस जिन्दगी में नये मूल्यों के प्रवेश की रचनात्मक कोशिश भी सर्वेश्वर के यहाँ हमें आसानी से मिल जाएगी। उनके पात्रों के प्यार और उनकी लड़ाई में भारतीय जिन्दगी के कई गहरे स्तर पर छूने वाले चित्र हमें मिलेंगे। अपनी भाषा के प्रति एक कवि की दृष्टि तो उनके केन्द्र में है ही।"[67]

सर्वेश्वर जी की इस संग्रह की प्रमुख कहानियाँ – लड़ाई, धूप, तीन लड़कियाँ एक मेंढक, प्रेमी, टाइमपीस, मरी मछली का स्पर्श, सफलता, तोता, सूटकेस, सो जाओ दोस्त, नयी कहानी के नायक और नायिका, छाता, पराजय का क्षण, एक बेवकूफ चिड़िया, पुलोवर, लपटें, अन्धेरे पर अन्धेरा आदि है। इस संग्रह की कहानियाँ – अंग्रेजी, इतालवी, पोल, रुसी तथा सोवियत संघ की बहुत सी भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं। उक्त कहानियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

लड़ाई : "राममनोहर लोहिया को समर्पित लड़ाई सर्वेश्वर की प्रसिद्ध कहानियों में से है, जिसका विकसित रूप "लड़ाई" नाटक में है। स्वतंत्रता के बाद हमारी शक्तियों का विघटन हुआ है और हम अपने–अपने स्वार्थों में बंधकर बहुत से मोर्चों से लड़ रहे हैं। लेकिन हमारी लड़ाई में शक्ति नहीं है – शक्ति बिखर रही है, टूट रही है। सारा सामाजिक–राजनैतिक वातावरण इसके मूल में है वे संस्थायें, वे दल भी हैं जो लड़ाई की ताकत को, लड़ने वाले

को छिन्न–भिन्न कर रहे हैं, निश्चय ही व्यक्ति के लिये देश की यह स्थिति बड़ी त्रासद है। इसी स्थिति का चित्रण लड़ाई कहानी में हुआ है।

प्रजातंत्र जनता का जनता के लिए, जनता द्वारा शासन है, लेकिन आज व्यवस्था इतनी चरमरा रही है कि असन्तोष, विद्रोह मानव मन में घर करता जा रहा है। शासन–व्यवस्था में भ्रष्टाचार, घूसखोरी का निदान प्रत्यक्ष न कर शिकायत पेटियों के माध्यम से करने की अपेक्षा की जाती है लेकिन ये शिकायत पेटियाँ सिर्फ काम टालने क़ा एक बहाना है –

"शिकायत की पेटी एक ताबूत की तरह की है जिसमें हर चीज जाकर दफनाने के लिए लाश में बदल जाती है।"[68]

सत्य की सदैव विजय होती है, लेकिन आधुनिक युग में असत्य का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है। स्वयं सर्वेश्वर जी भी इस बात को स्वीकार करते हैं –

"सत्य वह ढाल है, जिसे लेकर हर झूठ की लड़ाई लड़ते हैं। आजादी के बाद यही हमने सीखा है, यही सिखाया गया है।"[69]

दुनिया की बढ़ती रफ्तार से आज व्यक्ति अतिव्यस्त हो गया है। वह किसी कार्य की जड़ तक पहुँचना चाहता है उसे सिर्फ अपने काम से मतलब है – "दुनियाँ एक बहुत बड़ा पेट हो गयी है, जिसमें सभी कुछ समाता जा रहा है।"[70]

आज सत्य जीवन से कटा हुआ है और जहाँ सत्य को जीवन से जोड़ने की आवश्यकता महसूस की जाती है वहाँ व्यवस्था उसे कामयाब नहीं होने देती। सत्यव्रत के माध्यम से इस यथार्थ का सजीव अंकन किया गया है।

<u>धूप</u> : धूप कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर जी ने आदमी की वास्तविक कमजोरी को अभिव्यक्त किया है।

प्रकृति मानव की सहचरी है। जन्म के साथ ही मानव को प्रकृति का सानिध्य प्राप्त होता है। कभी–कभी प्रकृति मानवीय क्रिया–कलाप करती दृष्टिगोचर होने लगती है –

"धूप भी मेरे समीप ही हथेलियों में उदास चेहरा टिकाए बैठी है। तेज हवा के झोंकों से जब पीपल की डाल हिलती है वह थके भरी पगों से उठती है, सीढ़ियाँ उतरकर नदी के जल तक जाती है, फिर कुछ सोचकर वापस लौट आती है और पास बैठ जाती है।"[71]

मानव मन जिज्ञासु होता है। जिज्ञासा ज्ञान की सीढ़ी है। जीवन–मृत्यु इहलोक–परलोक की जिज्ञासा मानव मन को मथती रहती है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण इंसान ईश्वरदत्त व्यवस्था को उसी रूप में ग्रहण नहीं कर पाता। वह उसमें परिवर्तन का इच्छुक रहता है –

"तुम आदमी लोग जो चीज जैसी है, उसे उसी रूप में ग्रहण करना नहीं जानते।"(72)

जल, हवा, धूप जैसे प्रकृति तत्व सांसारिक वृत्तियों को उनके यथारूप में स्वीकार करते हुए उन पर समान रूप से अपना वरद–हस्त लुटाते हैं। इसकी स्पष्ट व्यंजना "धूप" कहानी में की गई है।

<u>**तीन लड़कियाँ एक मेंढक**</u> : इस कहानी में सर्वेश्वर जी ने तीन लड़कियों के प्रेम का हास्यास्पद ढंग से चित्रण किया है –

हम प्रायः अपने दिल का गुबार निकाल देने पर शान्ति का अनुभव करते हैं। फलस्वरूप संवेदना का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और एक–दूसरे के सुख से सुखी व दुःख से दुःखी होने का नियम व्यापक रूप धारण कर लेता है – उक्त उदाहरण में इसकी स्पष्ट व्यंजना की गई है –

"फिर तीनों चुप हो गयीं, संवेदना से भरी एक–दूसरे से सटने लगीं इतनी कि एक दिखाई देने लगीं। उसी समय एक मेंढक बाहर से उछलता हुआ कमरे में आया। वह आकार में बड़ा था और काफी ऊँची छलांग लगा रहा था। उन्हें लगा जैसे वह उन्हें देख रहा हो और पास आना चाहता हो। यह जानकर तीनों हँस पड़ी, इतनी हँसी कि लोट–पोट हो गयीं।"(73)

कभी–कभी छोटी सी घटना हमारे किसी बहुत बड़े कृत्य का परिणाम स्पष्ट कर देती है –

"एक पराजय के बोध से वह तीनों फिर एक–दूसरे से सट गयीं, जैसे अपनी–अपनी प्रेम कहानी की सुखद परिणति के उपाय सोचने की विवशता से भर गयीं हो।"(74)

मनुष्य की आशा आकांक्षाओं का, हार को, अपनी जीत की लय में कबूल करने की यह समझदारी कहानीकार ने की है।

प्रेमी : इस कहानी में एक प्रेमी का कीड़ा के रूप में चित्रण और उसके सर्मपण को विकृत और हास्यास्पद रूप में चित्रित किया गया है।

नारी अपने प्रथम प्रेम को सहज ही विस्मृत नहीं कर पाती। वह अपने प्रेमी के प्यार भरे मादक स्पर्श के लिए कृतज्ञ होती है। जब उसके कौमार्य को प्रथम बार पुरुष स्पर्श की सुखद अनुभूति मिलती है तब उसे बार–बार कई दिनों तक उसकी उपस्थिति का सुखद अहसास होता रहता है।

आज अभिजात्य प्रभाव ने मनुष्य को पतनशील स्थिति में पहुँचा दिया है। नारी अपने प्रेमी कीड़े की मृत्यु पर दुःखी नहीं होती, बल्कि अपनी विवशता ही जाहिर करती है –

''मैं जानती हूँ कि तुम्हारी .... नहीं मेरी प्रेमी की मेरे वियोग में मृत्यु हो गयी है। मेरी आँखें भर आयी हैं, लेकिन मैं आँसू पोंछ नहीं पा रही हूँ, क्योंकि हाथ धूल से गन्दे हो रहे हैं कितनी विवश हूँ मैं।''[75]

कथाकार सर्वेश्वर जी ने मनुष्य के प्रेम की गरिमा को विकृत करने में अधिक रुचि ली है। ''पूरी कहानी इस प्रकार कीड़े के सम्पर्क संसर्ग से बाधित नव–यौवना की किशोराचित आकांक्षाओं एवं सपनों को प्रकट करती है।''[76]

टाइमपीस : ''टाइमपीस'' कहानी में मनुष्य की उस अपरिमित शक्ति का बोध कराया गया है, जो काल की गति पर विजय पाने के सपने संजोता है।

समय से बड़ा तानाशाह कोई नहीं है। हर तानाशाह समय के आगे आखिरकार झुकता है। समय की चाल को समझना आसान नहीं है। शक्तिवान व स्वयं को परिस्थितियों में ढालते जाने वाला व्यक्ति ही समय की आवाज को सुन सकता है –

''समय की आवाज वही सुन सकता है, जिसमें शक्ति होती है, जिसे किसी सहारे की जरूरत नहीं होती। जो मरता नहीं, स्वयं को परिवर्तित करता निरन्तर जीता है।''[77]

समय को बाँधना सहज नहीं है। अपूर्व विश्वास ही समय को बांधने में समर्थ हो सकता है। सम्पूर्ण कहानी में इसी भाव को अभिव्यक्ति मिली है।

मरी मछली का स्पर्श : वस्तु का वांछित व्यवहार दर्शाने वाली स्थिति का चित्रण "मरी मछली का स्पर्श" कहानी में हुआ है।

हम किन्हीं अन्य प्रेरणा केन्द्रों से संचालित व्यवहारों को अपना इच्छित व्यवहार मान बैठते हैं। इसी मनःस्थिति का अच्छा चित्रण कहानीकार ने अपना लक्ष्य बनाया है।

निरन्तर एक ही तरह का गतिशील जीवन, जीवन में नीरसता ला देता है। चिन्तनशील मन इंसानी रुह और जल जीव के मध्य कोई अन्तर नहीं स्थापित कर पाता।

"उस बुड्ढे के ठंडे जिस्म का स्पर्श याद आया – मरी मछली का स्पर्श। उस स्पर्श से उसे अपने चारों जवान बेटों के शवों का स्पर्श याद आया, अपनी तीन बीबीयों की ठंडी लाशों का स्पर्श। उसे लगा – वह बासी मरी मछलियों को उठा–उठाकर रख रहा है।"(78)

उक्त कहानी में व्यक्ति की मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।

सफलता : सफलता कहानी में एक ऐसे पात्र की परिकल्पना की गयी है जिसका बेटा मर गया होता है और शव को दफनाने के पूर्व नहलाने की रस्म पूरी करने हेतु, उसके अकड़े बदन से कमीज निकालना आवश्यक है और वह इस प्रयत्न में सक्रिय हो जाता है, लेकिन कमीज जिस्म में इस तरह फँसी हुई थी कि निकल ही नहीं रही थी, अन्त में कपड़े के फटने की सम्भावना न देख वह ऊब गया था। तब उसने चारों तरफ देखा और ऐसे कोण पर खड़ा हो गया जहाँ से दूसरों की निगाहें यह न देख सके कि वह क्या कर रहा है। उसने मोह छोड़ा और अकड़ी बाहों को खींचकर निर्ममतापूर्वक कमीज उतारने में सफल हो गया। इस पर भी उसे दुःख नहीं हुआ, बल्कि सन्तोष ही हुआ। स्वयं लेखक ने लिखा है – "निर्जीव शरीर के प्रति क्रूर व्यवहार का तनिक भी क्षोभ उसमें नहीं था, बल्कि अपनी सफलता पर संतोष था।"(79)

व्यक्ति की इस अमानवीयता पर हरिहर प्रसाद ने कहा भी है – "अमानवीय होने की स्थिति से संतोष की यही स्थिति आज समाज में व्याप्त है। मनुष्य की गरिमा नष्ट हो इसकी चिन्ता नहीं, लेकिन अपने झूठे शौर्य से खुश हैं लोग, एक झूठी और अर्थहीन परम्परा का निर्वाह और इसके निर्वाह में अपने असली चेहरे की नकाबपोशी। आज हर कोई एक ऐसे

कोण पर खड़ा है जहाँ से उसका असली चेहरा किसी को दिखता नहीं और वह अपनी तात्कालिक लोकप्रियता के लिए एक स्वस्थ और सुन्दर गरिमामयी परम्परा के प्रति निर्मम हो जाता है।''(80)

तोता : इस कहानी के माध्यम से नारी जाति के हृदय की कोमलता को अभिव्यक्त किया गया है।

निर्भीकता सौन्दर्य का एक विशेष अंग है। किन्तु शान्तिपूर्ण जीवन के लिये नियमबद्धता अति आवश्यक है। अन्यथा उच्छृंखलता को बढ़ावा मिलेगा। नियमों के कारण मानव, पशु, पक्षियों में भय व्याप्त रहता है। अत्यधिक निर्भयता समाज को संशकित कर देती हैं।

''निर्भीकता के हम कितने अभ्यस्त हो गये हैं कि बिना किसी कारण उसे स्वीकार नहीं कर सकते, जैसे यह आचरण का एक स्वाभाविक अंग नहीं है।''(81)

''जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है, मुर्दा दिल क्या खाक जिया करते हैं।'' जीवन को दिलेरी के साथ जीना चाहिए। कायरों की जिंदगी से मौत ज्यादा श्रेयष्कर है। यह दिलेरी पशु–पक्षी में भी देखी जाती है, फिर उन्हें कैद करना कहाँ तक उचित है ?

''दिलेरी कैद करने के लिए नहीं होती। कौन पालतू बनना पसंद करता है ?''(82)

संसार के समस्त जीवों में से, मृत्यु के प्रति भय सर्वाधिक मानव जाति में देखा जाता है। वास्तव में जो निर्भय नहीं है। वह अपना व दूसरों का जीवन अनेक सीमाओं में बाँध लेता है –

''जो भय से मुक्त नहीं होता, वही अपने लिए और दूसरों के लिए सीमाएँ बनाता है।''(83)

उक्त कहानी में नारी के करूणापूर्ण स्वभाव को चित्रित किया गया है। वह अपने घर में किसी जीव–पक्षी की हत्या जान–बूझकर नहीं करवा सकती।

सूटकेस : ''नये और पुराने के बीच की पीढ़ी अनिश्चय और तनावग्रस्त है। नये और पुराने के द्वन्द्व से उबर नहीं पा रही पर नई पीढ़ी को पुराने को छोड़कर नये के वरुण में संकोच नहीं।''(84) इसी का उदाहरण सूटकेस कहानी में देखने को मिलता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तनों के साथ ही अपने आपको ढालते जाना जिन्दगी की खूबी हैं। बिना विचलित हुए इस परिवर्तन को स्वीकार करना चाहिए। कभी–कभी निर्जीव तत्व भी बाल मन को प्रेरणा देते हैं। वे अपने प्रति हुए प्रेम–स्नेह को छोड़ परिवर्तन को सहज स्वीकार करने की सलाह देते हैं –

"परिवर्तन से डरो मत। यह परिवर्तन अनिवार्य है, अकृतज्ञता नहीं। मुझे छोड़ दो। मेरा मोह मत करो।"(85)

सक्रांति के कगार पर खड़ा व्यक्ति न पुराने को अपना पाता है न नये को छोड़ पाता है। जिस "सूटकेस" को पिता आत्मीय, सजचर, बन्धु, सखा सब कुछ मानता आया, उसे "बिटिया" अपने खिलौने रखने के लिए अनुपयुक्त पाकर देखती तक नहीं और वह कर दिखाती है जो पिता आज तक नहीं कर सका था –

"अभी कल बिटिया के सामने वह सूटकेस रखते हुए मैंने कहा –

"बेटे इसमें तुम अपने खिलौने रखो।

"नहीं पापा यह गन्दा है उसने तुरन्त बेधड़क कहा और आँख उठाकर देखने से भी अस्वीकार कर दिया .... मैं सोचने लगा कितनी आसानी से उसने वह कर दिखाया जो मैं आज तक नहीं कर सका था।"(86)

"सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की नयी कहानी "सूटकेस" सांकेतिकता के श्रेष्ठ और सार्थक उपयोग का उदाहरण है।"(87)

<u>सो जाओ दोस्त</u> : इस कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर जी ने प्रतिभा के बल पर लेखक बनने की नाकामयाब कोशिश को उजागर किया है।

आज के युग में शराफत से जीवन–यापन करना मुश्किल है जहाँ चारों और धूर्तता, बेईमानी का साम्राज्य है, वहाँ सत्यता का मूल्य नगण्य है। जिन्दगी जीने के लिए व्यक्ति को न चाहते हुए भी अपने नैसर्गिक गुणों को त्यागने पर विवश होना पड़ता है –

"शराफत आज के जमाने में नहीं चलती, सीधे का मुँह कुत्ता चाटता है ......।"(88)

व्यक्ति भले ही प्रतिभा के बल पर लेखक होने का सुख न प्राप्त कर सके, लेकिन संघर्ष करके आदमी होने का संतोष तो पा ही लेता है।

इस प्रकार उक्त कहानी अपने मूल सत्य को उद्‌घाटित करने में सक्षम है, कहानी में संस्कृत व अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

<u>नयी कहानी के नायक और नायिका</u> : इस कहानी में सर्वेश्वर जी ने नयी कहानी के नायक और नायिका की मनःस्थिति का चित्रण किया है। वक्त के साथ–साथ इंसान के सोचने का ढंग बदल गया है। कहानीकार व पुरानी कहानी के विषय भी भिन्न–भिन्न थे। आधुनिक कहानी यथार्थता से युक्त है। कहानी एक निश्चित परिपाटी पर न चल एक नया रूख इख्तियार कर रही है – प्रेम दो आत्माओं का मिलन है। सच्चा प्रेमी अथवा प्रेमिका अपने प्रिय पात्र की मनःस्थिति को समझने में सक्षम होती है। सच्चे प्रेम में न केवल प्रिय पात्र की मनःस्थिति का अवलोकन हो जाता है, बल्कि उनकी पीड़ा की भी अनुभूति होती है। यह स्थिति सभी के जीवन में आती हैं। "ऐसी स्थिति सबके जीवन में आती हैं और उसका यह कुछ सोचना और हर कार्य धीरे–धीरे करना, इस बात का स्वयं संकेत बन जाता है कि नायक की मनःस्थिति वह समझ ही नहीं रही है, उसकी पीड़ा भी वह अनुभव कर रही है।"(89) इस प्रकार इस कहानी में अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। कहानी अपने मूल भाव को सम्प्रेषित करने में समर्थ है।

<u>छाता</u> : हर वस्तु अपनी निश्चित सामर्थ्य में ही प्रभावशाली होती है। "छाता" कहानी में इसी सामर्थ्य का चित्रण किया गया है। सत्य आवेशमय होता है। आवेश के साथ ही सत्य का प्रकटीकरण होता है। "अगर आवेश में हम सत्य बोल जाते हैं। मैं जानता हूँ, मेरी तीलियाँ टूटी हुई हैं। यह भाव जो हर क्षण मुझमें बनता है, तन नहीं पाता।"(90)

"छाता" अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक को ही भींगने से बचा सकता है, लेकिन दूसरे के भींगने पर उस एक का बचना कोई अर्थ नहीं रखता। उक्त कहानी में एक निर्जीव वस्तु को कथानक का केन्द्र बना कहानीकार ने अपने मूल भाव का सजीव अंकन किया है।

<u>पराजय का क्षण</u> : "पराजय का क्षण" कहानी में जीवन की स्थितियों से आदमी को इतना छोटा दिखाया गया है कि एक सही निष्कर्ष भी उसें झूठा लगने लगता है। हर क्षण वह टूटता है, हारता है, सही निष्कर्षों की तलाश में वह नानाविध प्रयत्नों, तर्कों के बावजूद पछाड़ खाकर गिर जाता है। कहानी का "मैं" स्वयं कहता है –

"मेरे भीतर बहुत साधारण आदमी रहता है, जिससे मैं घृणा करता हूँ, लेकिन जो मेरे साथ रहता है, जिससे हर क्षण लड़ता हूँ, लेकिन हर क्षण पराजित होता हूँ।"[91]

यह नहीं उसे उपकार कर सकने की भावना झूठी लगती है। दूसरे को खुश करने का पवित्र आदर्श भी झूठा लगता है – क्योंकि दुनियावी तर्कों के आगे वह खुद को झूठा समझता है। यहाँ तक कि एक श्रमिक द्वारा भदेस भाषा में कही गयी बात भी उसे प्रमाणिक नहीं लगती – "जो जहाँ खुश, वहाँ खुश "एक स्थिति तो यह है, लेकिन उस वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस जंगल में मनुष्य ही वह पुन्ज है जो हर स्थितियों से बड़ा है, क्योंकि वह श्रमिक और उद्यमी है।

सर्वेश्वर जी की यह कहानी व्यक्ति की मानसिक स्थिति का जीता जागता प्रतिबिम्ब है।

<u>एक बेवकूफ चिड़िया</u> : जहाँ जीवन में अन्याय का प्रतिकार करने के लिए हम सत्य की आवश्यकता महसूस करते हैं, लेकिन वहाँ वह उपलब्ध नहीं होता और जहाँ सत्य की रक्षा के लिये जीवन की आवश्यकता महसूस करते हैं, वहाँ उससे उसके सरोकार की निर्थकता की सीख दी जाती है। निष्ठा और सामर्थ्य का यह द्वन्द्व भीतर भी है और बाहर भी। इसका एक उदाहरण "एक बेवकूफ चिड़िया" कहानी में देखा जा सकता है। जहाँ सर्वेश्वर जी का कहानीकार पत्नी को समझाते हुए कहता है –

मैं चाहता हूँ तुम निष्ठा ही नहीं सामर्थ्य को भी मानो। इसकी खोज खत्म हो गयी है – निष्ठा सामर्थ्य का विराम बन गयी है। एक फैली जगह पा लेने की सामर्थ्य उसमें है, पर निष्ठा के नाम पर वह अपने सामर्थ्य को पहचानने की शक्ति खो चुकी है। यह मैं समझ नहीं पाता।"[92] और यही नहीं समझ पाने के कारण पत्नी की मृत्यु के 19 वर्ष बाद एक तरह की बेवकूफी से छुटकारा पाने का सुख या सन्तोष नहीं मिल पाता है और कहानीकार का "मैं" बिस्तर पर औंधे मुँह गिरकर फफककर रो पड़ता है।

"एक बेवकूफ चिड़िया" कहानी में सर्वेश्वर जी ने निष्ठा और सामर्थ्य के द्वन्द्व का बखूबी निर्वाह किया है।

<u>पुलोवर</u> : "पुलोवर" कहानी में कहानीकार ने अन्तरात्मा की आवाज के महत्व को स्वीकार करने पर बल दिया है।

"जो स्वर सम्पूर्ण अस्तित्व को मथकर निकलता है, उससे बड़ा संसार में कुछ नहीं है और जो उससे बड़ा कुछ मानता है, वह अपने साथ धोखा करता है, आदमी के साथ छल करता है।"(93)

स्मृति चिन्ह पुरानी स्मृतियों को ताजा कर देते हैं। सुखद और पुनीत स्मृतियों को सहेजकर रखने की कला सभी में नहीं होती। "और अब भी मैं किसी को एक बड़ा पुलोवर पहने हुए देखता हूँ, मुझे अपनी माँ की याद आती है। और मैं सोचने लगता हूँ, मैं एक भावनाहीन व्यक्ति हूँ। सुखद और पुनीत स्मृतियों को सहेजकर रखने की कला मुझे नहीं आती।"(94) यह कहानी स्वयं कहानीकार की मानसिक स्थिति को प्रस्तुत करने में समर्थ है।

लपटें : "लपटें" कहानी में नारी मनोविज्ञान का सूक्ष्म अंकन किया गया है।

"एक मित्र और उसकी बहन अपना इलाज कराने टपक पड़ते हैं और इलाज तब से शुरू हो जाता है, जब से भाई बाहर चला जाता है। बहन के पुराने संस्कारों को तोड़ा जाता है, और उसे घूरा जाता है, उसे यह सीख भी दी जाती है कि समय के बीतने पर पूनम का चाँद ढलने लग जाएगा। इससे उसकी आँखों से लपटें निकलने लगती हैं .... आदमी के बजाय औरत दोनों बाहों में आदमी को कस लेती है और बहुत देर तक रोती रहती है जो नारी मनोविज्ञान की साक्षी है।"(95)

इस कहानी के सम्बन्ध में रघुवीर सहाय ने कहा है – "सर्वेश्वर की कहानी में, मैं पात्र मित्र की बहन से सम्बन्ध बनता है, यदि धीर को बीच में लाया गया होता तो घटना में जटिलता आ जाती और कहानी अपनी "आदिम सादगी" से वंचित हो जाती।"(96)

अन्धेरे पर अन्धेरा : सर्वेश्वर जी "अन्धेरे पर अन्धेरा" कहानी में जीवन की ऐसी विचित्र अवस्था का जिक्र है जहाँ प्रेम भी आतंक का रूप ग्रहण कर लेता है और मनुष्य को अपनी हर इच्छा कृत्रिम और व्यवहार यांत्रिक लगने लगता है। यहाँ तक कि मृत्यु के कगार पर भी वह अपने ही संस्कारों से आतंकित रहता है। जो न उसे चैन से मरने देते हैं और न जिन्दा रहने की प्रेरणा ही देते। वह इतना जड़ हो जाता है कि जीवन के सौन्दर्य की पहचान भी खो देता है, और यही कारण है कि इन सारी स्थितियों से संघर्ष करता हुआ मनुष्य आवेश में सामने आता है।

आत्मविश्वास जीवन जीने की एक नयी दिशा होता है। कहते भी हैं – "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। वास्तव में हार–जीत मन से ही होती है। मन के अस्तित्व के सामने शरीर गौण हो जाता है। "मन की मार, आत्मा की मार, कहीं बड़ी होती है। शरीर की मार उसके सामने गौण है, कुछ नहीं। असली जीत और हार मन की होती है, शरीर की नहीं"[97] जिन्दगी जीने का एक मकसद होना चाहिए, बिना लक्ष्य के सही ढंग से जीना सहज नहीं है। मानव सामाजिक प्राणी होने के नाते, मानव समाज से कटकर नहीं जी सकता। मानवीय संसर्ग के अभाव में जीवन दुष्कर हो जाता है – "अक्सर लगता, आदमी और समाज न सही, इस सुन्दर प्रकृति के लिए ही जिया जा सकता है – नदियों, पहाड़ों, फूलों, सुन्दर वृक्षों, सुन्दर आकाश सभी के लिए जिया जा सकता है। कुछ दिनों तक हर स्थान, हर दृश्य अच्छा लगता था, पर अन्त में आदमी के बिना अधूरा लगने लगता था।"[98] बिना किसी साथी के जिन्दगी में नीरसता आ जाती है। एक–दूसरे का साथ जीवन के लिये प्रेरणादायक होता है। इसी का जीता जागता उदाहरण "अन्धेरे पर अन्धेरा" कहानी है।

(च) साम्य-वैषम्य

रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में पात्र–योजना की दृष्टि से अनेक समानताएं देखने को मिलती हैं। मानसिक वेदना और गरीबी से जूझते पात्र चाहे स्त्री पात्र हों या पुरूष पात्र हों सभी अपने विषय के अनुकूल यथार्थ जीवन से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। स्त्री पात्रों को दोनों कथाकारों ने उचित स्थान (आटे में नमक की मात्रा भर) दिया है। रघुवीर सहाय ने अपनी कहानियों में पशु–पक्षियों को भी स्थान दिया है जबकि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में ऐसे पात्रों का प्रायः अभाव सा है। रघुवीर सहाय अपनी कहानियों में कभी–कभी स्वयं पात्र के रूप में (लेखक स्वयं पात्र) बन जाते हैं। कहानी की कला में इसका यथार्थ रूप देखा जा सकता है। जबकि सर्वेश्वर दयाल की कहानियों में ऐसा नहीं मिलता है। सर्वेश्वर दयाल की कहानियों में ऐतिहासिक तत्व एवं सत्य के रूप में कहानियों के पात्र मिलते हैं जबकि सर्वेश्वर दयाल की कहानियों में ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है। ईश्वर के रूप एवं चरित्र का वर्णन जहाँ सर्वेश्वर दयाल की कुछ कहानियों में देखने को मिलते हैं वहीं रघुवीर सहाय की कहानियों में इसका अभाव सा दिखता है।

□□□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जो आदमी हम बना रहे है की भूमिका से
2. रघुवीर सहाय, रचनावली भाग–2, पृ. 9
3. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 48
4. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 49
5. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 50
6. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 65
7. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 77
8. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 68
9. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 62
10. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 54
11. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 54
12. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 33
13. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 70
14. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 70–71
15. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 21
16. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 123
17. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 106
18. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 80
19. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 82
20. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 81
21. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 32
22. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 122–123
23. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 35
24. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 35
25. विष्णु नागर, असद जैदी (सम्पा.) रघुवीर सहाय, पृ. 156–57
26. कच्ची सड़क – बरसात अब भी आती है – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 12
27. कच्ची सड़क – बरसात अब भी आती है – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 11
28. कच्ची सड़क (पुलिया वाला आदमी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 18
29. कच्ची सड़क (पुलिया वाला आदमी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 15
30. कच्ची सड़क (पुलिया वाला आदमी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 19
31. कच्ची सड़क (सीमाएं) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 27

32. कच्ची सड़क (सीमाएं) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 25
33. कच्ची सड़क (डूबता हुआ चाँद) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 28
34. कच्ची सड़क (डूबता हुआ चाँद) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 34
35. कच्ची सड़क (डूबता हुआ चाँद) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 35
36. कच्ची सड़क (डूबता हुआ चाँद) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 36–37
37. कच्ची सड़क (सोने के पूर्व) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 42
38. कच्ची सड़क (सोने के पूर्व) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 43
39. कच्ची सड़क (सोने के पूर्व) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 46
40. कच्ची सड़क (सोने के पूर्व) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 47
41. कच्ची सड़क (सोने के पूर्व) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 48
42. कच्ची सड़क (मौत की छाया) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 52
43. कच्ची सड़क (मौत की छाया) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 53
44. कच्ची सड़क (मौत की छाया) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 57
45. कच्ची सड़क (मौत की आँखें) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 78
46. कच्ची सड़क (मौत की आँखें) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 75
47. कच्ची सड़क (क्षितिज के पार) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 84
48. कच्ची सड़क (क्षितिज के पार) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 86
49. कच्ची सड़क (क्षितिज के पार) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 89
50. कच्ची सड़क (भगत जी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 92
51. कच्ची सड़क (भगत जी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 92
52. कच्ची सड़क (रूप और ईश्वर) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 99
53. कच्ची सड़क (रूप और ईश्वर) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 100
54. कच्ची सड़क (रूप और ईश्वर) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 102
55. कच्ची सड़क (रूप और ईश्वर) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 104
55. कच्ची सड़क (जिन्दगी और मौत) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 107
56. कच्ची सड़क (जिन्दगी और मौत) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 108
57. कच्ची सड़क (जिन्दगी और मौत) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 109
58. कच्ची सड़क (जिन्दगी और मौत) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 112
59. कच्ची सड़क (मास्टर श्यामल लाल गुप्ता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 120–121
60. कच्ची सड़क (मास्टर श्यामल लाल गुप्ता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 127
61. कच्ची सड़क (स्नेह और स्वाभिमान) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 130–131
62. कच्ची सड़क (स्नेह और स्वाभिमान) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 133
63. कच्ची सड़क (पत्थर के फूल) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 137–38

64. कच्ची सड़क – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 145
65. कच्ची सड़क – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 146
66. कच्ची सड़क – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 147
67. अन्धेरे पर अन्धेरा – (कहानी संग्रह) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, आमुख पृष्ठ
68. अन्धेरे पर अन्धेरा (लड़ाई) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 18
69. अन्धेरे पर अन्धेरा (लड़ाई) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 19
70. अन्धेरे पर अन्धेरा (लड़ाई) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 27–28
71. अन्धेरे पर अन्धेरा (धूप) – सव्रेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 37
72. अन्धेरे पर अन्धेरा (धूप) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 37
73. अन्धेरे पर अन्धेरा (तीन लड़कियाँ एक मेंढक) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 40
74. अन्धेरे पर अन्धेरा (तीन लड़कियाँ एक मेंढक) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 42
75. अन्धेरे पर अन्धेरा (प्रेमी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ 49
76. स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी, वस्तु विकास एवं शिल्प विधान – डॉ. एम. एल. मेहता, 138–39
77. अन्धेरे पर अन्धेरा (टाइमपीस) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 52
78. अन्धेरे पर अन्धेरा (मरी मछली का स्पर्श) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 57
79. अन्धेरे पर अन्धेरा (सफलता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 64
80. सर्वेश्वर का रचना संसार, प्रदीप सौरभ (निष्ठा और सामर्थ्य के द्वन्द्व की कहानियां, हरिहर प्रसाद), पृ. 44
81. अन्धेरे पर अन्धेरा (तोता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 63–64
82. अन्धेरे पर अन्धेरा (तोता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 64
83. अन्धेरे पर अन्धेरा (तोता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 66
84. हिन्दी की नई क्हानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – मिथलेश रोहतगी, पृ. 97
85. अन्धेरे पर अन्धेरा (सूटकेस) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 71
86. सूटकेस : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मयुग : 4 नवम्बर 1962
87. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया : डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, पृ. 279
88. अन्धेरे पर अन्धेरा (सो जाओ दोस्त) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 76
89. अन्धेरे पर अन्धेरा (नयी कहानी के नायक और नायिका) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 79
90. अन्धेरे पर अन्धेरा (छाता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 85
91. अन्धेरे पर अन्धेरा (पराजय का क्षण) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 89
92. अन्धेरे पर अन्धेरा (एक बेवकूफ चिड़िया) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 94
93. अन्धेरे पर अन्धेरा (पुलोवर) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 101
94. अन्धेरे पर अन्धेरा (पुलोवर) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 101

95. धर्मयुग : 5 अप्रैल 1964

96. हिन्दी कहानी : एक नयी दृष्टि, इन्द्रनाथ मदान, पृ. 153—54

97. अन्धेरे पर अन्धेरा — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 123

98. अन्धेरे पर अन्धेरा — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 121

❑❑❑

चतुर्थ अध्याय

आलोच्य कहानियों में अभिव्यंजना शिल्प

(क) भाविक प्रतिमान

कहानी में शैली का संबंध रचनाविधान और भाषा से आता है, जहाँ रचनाकार की अभिव्यक्ति संक्षिप्त एवं सांकेतिक होगी, वहाँ उसकी रचना शैली भी समास–प्रधान होगी।

"लिखने व बोलने का ढंग लेखक के मस्तिष्क की विषय–वस्तु एवं रुचि वैचित्रय का प्रदर्शन करता है। इसलिये शैली मनुष्य की प्रतिच्छाया है। मनुष्य का मस्तिष्क ही उसका व्यक्तित्व है और जिस प्रकार उसका मस्तिष्क विविध गुणों एवं विशेषताओं से युक्त होता है, वैसी ही उसकी भाषा एवं भाषण होंगे। अपने स्व की अन्तर्मुखी अनुभूति उसके मस्तिष्क की वह सामग्री है, जिससे वह बना है और भाषण की विधि उसकी स्वानुभूति का ताना–बाना है।"(1)

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि कहानीकार का व्यक्तित्व हमें अभिभूत किए रहे। अच्छी शैली वही है जो अपनी, अपने राष्ट्र की जान पड़े। जिसमें देशी शब्दों का अधिक समन्वय हो और जिसके द्वारा उचित प्रभाव डाला जा सके।

रघुवीर सहाय की कहानियों का नया शिल्प और विशिष्ट आतंरिक संरचना और उनके बहुमुखी रचनाकार होने की वजह से है। उनकी सृजनात्मकता सबसे पहले एक कवि की सृजनात्मकता है इसलिये उनकी दूसरी विधाओं की रचनाशीलता इससे अक्सर निर्धारित होती है। रास्ता इधर से है कथा संग्रह की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है "और कुछ न लिख पाने पर मैंने यह कहानियां लिखी है आपके लिये निश्चय ही इनका कोई महत्व न है न होना चाहिये कि मैंने यह कहानियां क्यों और कैसे लिखी पर यह जानकर मुझे एक रचनाकार को संतोष मिलता है कि इनमें से प्रत्येक रचना एक न एक विधा का विकल्प है।(2)

(1) शब्द भण्डार, मुहावरे

शब्द भण्डार की दृष्टि से रघुवीर सहाय का चिंतन, उनकी रचनायें और अभिव्यक्ति पक्ष कहानियों के माध्यम से सशक्त बनकर प्रकट हुआ है। कथाकार ने अपनी

कहानियों के माध्यम से भाषा का पारम्परिक मोह त्यागकर सरल और बोलचाल की भाषा जो आम आदमी के समीप होती है का उपयोग अपनी कहानियों में बखूबी किया है। रघुवीर सहाय की कहानियां हमें यह संदेश देती है कि भाषा के विविध स्तरों का यथोचित उपयोग कैसे किया जाये। रघुवीर सहाय ने अपनी अधिकतर कहानियों की विषय–वस्तु के रूप में राजनीति, राष्ट्र, महिलाओं, शोषितों, पीड़ितों, सामाजिक सम्बन्धों एवं जन समस्याओं सम्बन्धी विषयों की प्रकृति को विशेष स्थान दिया है। रघुवीर सहाय की कहानियों में मोटर, फिल्म, चीक, भूख, कुण्ठा, रोटी से लेकर झोपड़ी, आग तथा संस्कृत जैसे शब्दों का उल्लेख किया गया है। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय की कहानियों में शब्द भण्डारों का अथाह सागर समाहित है।

संस्कृत निष्ठ शब्द

संस्कृत का हिन्दी से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। संस्कृत हिन्दी की जननी कहलाती है। इसीलिए शायद सर्वेश्वर जी ने अपने साहित्य में संस्कृत के शब्दों को शामिल किया है। जैसे – अति, प्रति, दुः, दुस, क्रमशः, परि, सम, सु, सं, अधः, उत्, आभि, पुष्प, चतुर्थ, कृतः, मध्य, अग्नि, चतुर्दश, प्रिय, वत्स, वचन इत्यादि अनेक शब्दों का प्रयोग इनके लेखन में देख सकते हैं।

फारसी शब्द

फारस वैसे तो फारसी अर्थात ईरान की भाषा है, किन्तु जहाँ भी मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग रहते हैं वहाँ यह साहित्य की भाषा रही है। मुसलमानों ने भारत पर कई सौ वर्षों तक राज्य किया ऐसे में जो हिन्दू लोग उनके सम्पर्क में आए अथवा जिन्होंने उनके सम्पर्क में लाभ उठाना चाहा उन्होंने फारसी भाषा और साहित्यिक अध्ययन किया। सभी मुसलमान शासकों की राज भाषा फारसी रही है उनका समस्त शासकीय कार्य फारसी में होता था। धीरे–धीरे फारसी भाषा के बहुत सारे शब्द हिन्दी में आ गए हैं।

सर्वेश्वर जी ने भी अपने साहित्य में फारसी भाषा के शब्दों का अनोखा मिश्रण किया है उन्होंने अपने सृजन में पर्याप्त फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। जो इस प्रकार है :–

अफसोस, आतिशबाजी, आराम, आमदनी, चाबुक, सौदागर, हजार, आवारा, आवाज, ताजा, आईना, उम्मीद, खून, गवाह, चेहरा, कमरबन्द, गल्ला, तराशना, खामोश, आफत, तरफ, खुश, सईस, गिरफ्तार, गरम, गुल, नब्ज, चादर, तहखाना, जंग, रोजा, जहर, चूँकि, जागीर, नजला, जुरमाना, तहसील, जोश, रफूगर, तनख्वाह, दस्तूर, बेरहम, नम, मुर्दा, ताक, मुफ्त, चालाक, मोची, यार, लगाम, दर्जी, वर्ना, तीर, वापिस, मुख्तार, शादी, शोर, सरकारी, आबरू, सू, दफ्तरी, कमीज, मुनक्का, कस्बा, कुर्ता, कुर्सी, इत्र, उस्ताद, दफ्तर, दिलेर, बदहजमी, बारीक, बेशक, बीमार, बुखार पजामा, नासूर, सिपाही, हकीम, संगीन, साबुन, साल, शायद, समोसा, हमेशा, हलुआ, हैजा, मेहनत, मुहल्ल, जबरदस्ती, फलाँ, बेहमा।

अंग्रेजी शब्द

अंग्रेजों ने लगभग 200 वर्ष तक भारत पर राज्य किया। स्वतंत्रता के पश्चात् अंग्रेजी का अध्ययन व व्यवहार बहुत बढ़ गया है। आज हिन्दी बोलने वालों की स्थिति यह है कि एक वाक्य भी ऐसा नहीं बोल सकते जिसमें कुछ अंग्रेजी के शब्द न हो। हिन्दी में प्रचलित अंग्रेजी के शब्दों की पूर्ण एवं वास्तविक सूची बनाना संभव नहीं है, क्योंकि अभी भी अंग्रेजी के नये शब्द हिन्दी में आ रहे हैं। अंग्रेजी के कुछ शब्द तो हिन्दी में आकर इतने पुराने हो गए है कि गाँव का अनपढ़ आदमी तक उसका प्रयोग करने लगे हैं।

सर्वेश्वर जी का लेखन भी अंग्रेजी के प्रभाव से अछूता न रह सका, उनकी रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का भरपूर प्रयोग किया गया है। रिजर्वेशन, दे आर मर्डरर्स, स्ट्रांगमैन, एम्बीशन, पावर, रजिस्टर्ड, अक्टूबर, ब्लैकमैल, डिस्ट्रिक्ट, असेम्बली, अफसर, ओनेस्ट, एनानिमिटी, आविडिएंस, हिस्ट्री, फिट, गर्वमेन्ट, यूनिट, इट, सेक्रेटेरियट, मिनिस्ट्री, स्टेट, बैक पाकेट, बैरिस्टर, परमिट, अरेस्ट, पेडिंग, आर्टिकल, कौंसिल, अपील, पोस्टिंग, ड्यूटी, कन्ट्रोलर, एडमिशन, हेड, सोशल, गेदरिंग, ड्रामा, सीन, स्ट्राइक, वीक, पोस्ट आफिस, सेविंग, लेटर, बाक्स, कॉल, सूप, कलर, शूटिंग, क्रीम, सोप, ब्रश, परफ्यूम, गेलरी, साइट, प्लान, डोर, बेडरूम, सीनियर, पॉलिश, फाइन इत्यादि शब्दों को आसानी से उनके साहित्य में देखा जा सकता है।

उर्दू शब्द

वैसे तो उर्दू हिन्दी की एक शैली है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है जो

अरबी, फारसी लिपि के बहुत समीप है। सर्वेश्वर जी ने उर्दू शब्दों का प्रयोग भी काफी किया है। खुराफात, तरजीह, कफन, कौम, जाहिर, तकुल्लुफ, अलबत्ता, इबादत, पोशाक, जन्नत, शुक्रिया, बादशाह, मैयत, तलाश फिरंगी, नफरत, हुकूमत, हकीकत इत्यादि शब्दों का कहीं–कहीं प्रयोग दिखाई देता है।

चीनी व रूसी भाषा

सर्वेश्वर जी ने अपनी रचनाओं में कहीं चीनी व कहीं रूसी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने उनका स्वरूप न बदलकर रूसी व चीनी भाषा के शब्दों का ही प्रयोग किया है। चाउ मिएन, वर्डस, नेस्ट, सूप, सुकिमाकी, चापस्टिक, चाय, लीची जैसे चीनी शब्द एवं बोदका (शराब), कोपक, रूबल, चाइ, पशीबा, (धन्यवाद) रास्ते, दस्यूदानिया (फिर मिलेंगे) जार, जैसे रूसी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

मुहावरे और कहावतें

रघुवीर सहाय ने अपनी कहानियों में मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग किया है। साहित्य में रोचकता एवं सौन्दर्य वृद्धि के लिये इनका बहुत ही महत्व है – न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी, आधा तीतर आधा बटेर, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, "जीवन में मृत्यु नहीं होती, मृत्यु तो ममत्व का दूसरा नाम है, सदैव सत्य बोलो, गाँवों का उजड़ना और शहरों का उखड़ना, गुलामी के मजे और आजादी का भयं, नारी शक्ति की मूर्त्त मूर्ति है, फूल से फूल की शोभा है,"[3]

सर्वेश्वर जी की कहानियों में मुहावरों और कहावतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है इससे शैली स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक बन गई है। सर्वेश्वर जी की चलती हुई मुहावरेदार शैली हिन्दी बेजोड़ हैं। कुछेक उदाहरण दृष्टव्य हैं –

सत्तर नाच नचाना, पानी–पानी होना, शर्म से गड़ना, लोहा मानना, नाक में दम, रोंगेटे खड़े होना, दाने–दाने को मोहताज होना, खाक छानना, ऐड़ी चोटी का पसीना एक करना, रफुचक्कर होना, नौ–दो ग्यारह होना, आखें पत्थराना, कान पर जूँ न रेंगना, छक्के छूटना, उड़ती चिड़िया भॉपना, अपना उल्लू सीधा करना, पौ बारह, चुल्लू भर पानी में डूब मरना, श्री गणेश होना, ढपौर शंख, चोली–दामन का साथ होना, मोहरों की लूट, कोयलों पर छाप, एक तीर से दो शिकार, सूत न कपास जुलाहे से लट्ठम–लट्ठा, जाको राखे साइयाँ

मार सके न कोई, बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा, भैंस के आगे हार्न बजाना, भैंस खड़ी पगुराये, पूत के पाँव पालने में दिखना, पिद्दी न पिद्दी का शोरबा, आम के आम गुठलियों के दाम जैसी अनेक फिट बैठती कहावतों का उनकी कहानी में उल्लेख दिखाई देता है।

प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग

सर्वेश्वर जी ने अपनी शैली में प्रकृति का बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से सफल चित्रण किया है। इसी कारण प्रकृति मानवीय भावनाओं की उत्प्रेरक बन गई है। नवीन भाव–बोधों को व्यक्त करने के लिए अभिव्यक्ति के नये रूपों की आवश्यकता होती है। आचार्य नेमीचन्द्र जैन ने ठीक ही कहा हैं कि प्रत्येक नया भाव – बोध और सौंदर्य बोध अनिवार्य रूप से नये शिल्प की आवश्यकता अनुभव करता है। अपनी अभिव्यक्ति के लिये नये रूपों की खोज करता है और उन्हें जन्म देता है। इस नई आत्मा को पुराने–शिल्प शरीर में धारण करना संभव नहीं होता, क्योंकि कथावस्तु और रूप को अलग करना संभव नहीं है। वे तो एक ही सत्य के दो पक्ष हैं।''[4]

भाषा की सक्षमता को प्रकट करने के लिए सर्वेश्वर जी ने प्राकृतिक उपादानों तथा बिम्ब प्रतीकों का प्रयोग एक सिद्धहस्त शैलीकार के रूप में किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

1. सबसे पहले उनकी बिजली आप पर ही गिरेगी।
2. इतनी जल्दी तो गिरिगट भी रंग नहीं बदलता, जितनी जल्दी देश के नेता रंग बदलते हैं।
3. जाँच कमेटी हाथी का दाँत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा की संरचना में सर्वेश्वर जी सिद्धहस्त हैं। उनकी सभी रचनाओं में भाषा अपने अपूर्व सौंदर्य के साथ परिलक्षित होती है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर जी अपने भावों को भाषा की तरणि से संप्रेषित करने में पूर्ण सफल हुए हैं उनकी भाषा अंग्रेजी, लोकभाषा, रूसी व चीनी भाषा को अपने अंदर आत्मसात किए हुए है।

अलंकार

आचार्य वामन के अनुसार, जो किसी वस्तु को अलंकृत करे, वह अलंकार है –

अलङ्कृतिरलङ्कारः। जिस प्रकार आभूषण स्वर्ण से बनते हैं उसी प्रकार अलंकार भी सुवर्ण (सुन्दर वर्णों) से बनते हैं। "काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं।"[5] काव्य शोभा करान् धर्मानलंकार प्रचक्षते (काव्यादर्श) अर्थात् काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को अलंकार कहा जाता है। अलंकार का शब्दार्थहोता है – आभूषण या गहना, आभूषण द्वारा शरीर को सजाया जाता है जिससे वह अधिक आकर्षक प्रतीत हो। "अलंकारों द्वारा भाषा में लालित्य एवं चमत्कार का समावेश होता है।"[6] गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि "बिधुवदनी सब भाँति संवारी, सोह न जथा बसन बिनु नारी।" आचार्य केशवदास ने तो अलंकार को काव्य की आत्मा, काव्य का सर्वस्व ही माना है। काव्य शरीर अर्थात् भाषा को शब्दार्थ से सुसज्जित तथा सुन्दर बनाने वाले चमत्कारपूर्ण ढंग को अलंकार कहते हैं।"[7]

अलंकार के तीन भेद माने गए हैं :–

1. शब्दालंकार – जहाँ शब्दों के विशिष्ट या चमत्कारिक प्रयोग द्वारा काव्य की शोभा में वृद्धि की जाए।
2. अर्थालंकार – जहाँ अर्थ को सुन्दर और चमत्कारपूर्ण बनाने की चेष्टा की जाए वहाँ अर्थालंकार होते हैं।
3. उभयालंकार – जहाँ शब्दों और अर्थ दोनों का ही चमत्कारपूर्ण मिश्रण हो वहाँ उभयालंकार माने जाते हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने वीप्सा, अनुप्रास तथा रूपक अलंकार के प्रयोग के अतिरिक्त मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग किया है। यह पाश्चात्य अलंकार है। इसमें प्रकृति को सचेतन मानव के रूप में ग्रहण करके मानव के समान उसके क्रियाकलापों का वर्णन किया जाता है। हमारी संस्कृति व व्यवस्था का जीवित और यथार्थ चित्रण किया है, ऐसे जीवंत प्रयोग नये कवियों की विलक्षण प्रतिभा के संकेत हैं। सर्वेश्वर जी के काव्य में मानवीय समस्याओं के अलंकारों के आलम्बन को ही व्यक्त किया गया है, वे इस उद्देश्य में सफल रहे हैं।

(ख) संवाद योजना

मनुष्य के भावों विचारों के प्रकटीकरण और संप्रेषण का सर्वप्रथम माध्यम भाषा है। भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है। जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों

का आदान–प्रदान करता है। लेखक एक संवेदनशील मनुष्य होता है उस पर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव अपेक्षा शीघ्र और अधिक होता है। वह जो कुछ सोचता, समझता, देखता और अनुभव करता है उसको अपने भाषिक संवादों के द्वारा रचनाओं में उभारता रहता है। लेखक अपनी अनुभूतियों तथा विचारों को अपने विशिष्ट संवाद के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। उसकी भाषा में रस, छन्द, अलंकार, प्रतीक बिम्ब, नाटकीयता, व्यंग्य, सुन्दर वर्ण विन्यास संवाद के माध्यम से एक नया आयाम लेते है। संवादों के द्वारा कहीं गयी यह बात साहित्यिक भाषा कहलाती है।

रघुवीर सहाय की कहानियों में संवाद योजना सामान्य बातचीत एवं भाषा की सम्प्रेषणीयता के कारण यथार्थ का बोध कराते हैं। विजेता कहानी के एक उदाहरण द्वारा इसे समझा जा सकता है – "मैं सब ठीक कर दूँगा, तुम डरो नहीं।" तुम कर ही क्या सकते हों ? वह बोली।

"क्यों, जब मैं एक काम कर सकता हूँ तो दूसरा भी कर सकता हूँ।" .... तुम घबराती क्यों हो ? सिर्फ तुम्हें थोड़ी सी तकलीफ होगी।[8] इसी तरह रघुवीर सहाय की एक कहानी 'चालीस के बाद प्रेम' का उदाहरण भी दिया जा सकता है। श्यामलाल जी ने कहा बिल्ली है।"

"आपकी बिल्ली है ?" नौजवान ने पूंछा

श्यामलाल ने कहा "जी हाँ, मेरी बिल्ली है।"

"पुलिया के नीचे चली गई है ?"[9]

सीमा के पार का आदमी कहानी में संवाद योजना को भाषा की सरलता का एक उदाहरण देखा जा सकता है। "तो क्या आपने उन सबको भूखा–प्यासा मार डाला, यानी भूखे–प्यासे को गोली से मार डाला ?" नहीं जनाब, आखिर उनको अकल आई और उन्होंने समर्पण किया मगर इस शर्त पर कि हम शर्त पर कि हम उनकी जान बख्श देंगें–"और आपने उनकी जान बख्श दी ?"

"जी हाँ, हमने उन्हें कत्ल नहीं किया। हम उनकी इज्जत कर रहे थे, क्योंकि वे आखिरी दम तक लड़े थे।"[10]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में संवाद योजना में भाषा की किलिष्टता एवं नीति वाक्यों की अधिकता तथा सलाह के रूप में जीवन का यथार्थ बोध परिलक्षित होता है। डूबता हुआ चाँद कहानी का एक उदाहरण दृष्टव्य है – "स्नेह और सहानुभूति की कीमत वही समझ सकते हैं, उनसे ही मिल सकती है, जो इससे जीवन में वंचित हों।" इसके बाद वे कुछ गम्भीर हो गयीं। बोली – "तुम लोग पढ़ लिखकर भी ऐसी बातें करते हो। कोई किसी पर एहसान नहीं करता। एहसान का बोझ वे मानते है जो स्वार्थी होते हैं, जिनका हृदय उदार नहीं होता। मेरे एहसान का बदला लेने को क्या इतनी बड़ी दुनिया कम है तुम्हारे लिये ? और अगर मुझे ही बदला देना चाहते हो तो मारने पर मेरी लाश फूँक जाना।"(11)

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की एक कहानी सोने के पूर्व में संवाद योजना का एक उदाहरण और भी दृष्टव्य है – "तुम मुस्कराना नहीं जानती, कल सीखकर आना, अगर काम करना हो।"

"मैं तिलमिला उठी हूँ। नीच, कुत्ता। मुस्कराना सीखकर आओ। मैं नहीं आऊँगी। नहीं काम करूँगी। पर यह आवाज गूँज रही है आँधी की तरह, तूफान की तरह मेरे कानों में।"

"तुम बड़ी गम्भीर हो। मुस्कराना तक नहीं जानती।" मेरी आकृति पता नहीं कैसे एक सफेद फ्रांक पहने वहाँ खिंच गई है। मैंने हाथ बढ़ाकर लाल पंखों वाली एक तितली पकड़ ली है, और उसके नाजुक पंखों को कसकर ओठों में दबा लिया है। एलेक की आँखें परेशानी से चमक रही हैं। मुझे हँसी आ रही है – मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी हूँ। अधर खुल गये हैं और तितली उड़ गई है। अपने रूमाल से मेरे ओठों पर तितली के पंख के लगे लाल रंग को पोछता हुआ एलेक कहता है – "तुम्हारी मुस्कान में बड़ी कला है।"(12)

टूटे हुये पंख कहानी का उदाहरण सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों का मर्मभेदी संवाद योजना अपने आप में कई अर्थ लिये हुए है – "तभी न उस दिन शीला से यह पूंछने पर कि जिन्दगी क्या है ? उसने जबाव दिया था "मस्ती और आनन्द" मैं उन्हें बेवकूफ समझती हूँ जो तुम्हारी तरह मुँह बनाये गम्भीर होकर सोचा करते हैं कि जिन्दगी क्या है ? जिन्दगी मस्ती, है, मस्ती–एक गर्म–गर्म चाय का प्याला। खुद पियो; दूसरों को पिलायो।"(13)

सूक्तियाँ

आलोच्य कथाकार अपनी कहानियों में संवाद योजना के माध्यम से कभी–कभी सूक्तियों का प्रयोग भी व्यक्ति के समक्ष प्रभाव डालने के लियें करते है। सूक्तियों का प्रयोग सर्वेश्वर जी की अपनी विशेषता है। इन सूक्तियों में कल्पना और अनुभव के साथ चिन्तन का योग भी है। सूक्ति प्रयोग से शैली की रोचकता और प्रभावात्कता में अभिवृद्धि हुई है। महान् उपन्यासकारों की अनुभव सिद्धवाणी से ही सूक्तियों के स्रोत प्रवाहित होते हैं। सर्वेश्वर जी की कुछ उत्कृष्ट सूक्तियाँ यहाँ उद्धृत की गई हैं –

1. पागल स्त्री के अंदर पागल पुरुष से अधिक लज्जा रहती है।''[14]
2. स्नेह और सहानुभूति की कीमत वही समझ सकते हैं, उनसें ही मिल सकती है जो इससे जीवन में वंचित हो।''[15]
3. मोहब्बत का ताल्लुक जिस्म से नहीं, बल्कि रूह से होता है।''[16]
4. किसी को शरण देकर फिर दुत्कार देना सबसे ज्यादा बुरा है।''[17]
5. शक्ति और छल से प्यार नहीं खरीदा जा सकता। प्यार स्वयं बिक जाता है, जिधर पवित्रता और सफाई होती है।''[18]
6. जो चीज कष्ट उठाकर मिलती है, उसका मूल्य अधिक होता है; वह अधिक सुख देती है।''[19]
7. जो भय से मुक्त नहीं होता, वही अपने लिये और दूसरों के लिये सीमाएँ बनाता है।''[20]
8. मन की मार, आत्मा की मार, कहीं बड़ी होती है। शरीर की मार उसके सामने गौण है, कुछ नहीं। असली जीत और हार मन की होती है, शरीर की नहीं।''[21]
9. नारी का स्वास्थ्य ही उसका सौंदर्य है।''[22]
10. वह सिद्धांत जो कर्म से न जुड़ सके पिरामिड में इसी खूबसूरत ममी की तरह होता है।''[24]
11. कामुकता कमजोरी का लक्षण है।''[25]
12. कवि को सदैव विद्यार्थी की तरह सीखते रहना चाहिए .... अपने सभी पूर्ववर्ती कवियों से।''[26]

(ग) वाक्य विन्यास

वाक्य विन्यास शैली का प्रमुख तथ्य होता है। रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कहानियों में वाक्य विन्यास के रूढ़ नियमों से अपने को दूर रखा। रघुवीर सहाय ने अपने वाक्य विन्यास के माध्यम से अपनी कहानियों को एक नया आयाम दिया। हालांकि उनकी कहानियाँ वैयक्तिक होने के कारण उन्हें पूर्णतया समझ पाना तो कठिन है किन्तु सामान्यतः कहा जा सकता है कि वे सभी प्रयोगों के लिये सभी प्रकार के वाक्यों के प्रयोग को योग्य मानते है। किसी दृश्य को जब वह कृमिक बिम्बों का रूप देना चाहते है तो उनके व्याकरण चिन्हों का प्रयोग द्वारा लम्बे वाक्यों का प्रयोग उन्हें उपर्युक्त लगता है। लगता है जैसे सब कुछ सहज स्वाभाविक रूप से सामने आ रहा है। वास्तव में उनका विषय उसमें आई भावना और विचारधारा तथा उसे प्रकट करने की अत्यन्त संक्षिप्त वाक्य रचना भी पर्याप्त रूप से दिखाई देती है। जो दृढ़ और ठण्डी भंगिमा से शक्ति पाकर नग्न यथार्थ की भयावयता तथा संश्लिष्ट मानव रागों की उत्कटता व्यंजित करता है। सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय के अनुसार अपने छायावादी समवयस्कों के बीच बच्चन की भाषा जैसे एक अलग अस्वाद रखती थी और शिखरों के की ओर न ताककर शहर के चौक की ओर उन्मुक्ति, उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टान पर चढ़ नाटकीय मुद्रा में बैठने का मोह तोड़ साधारण घरों की सीढ़ियों पर धूप में बैठकर प्रसन्न है। सीढ़ियों पर धूप में भूमिका से।[27] यह स्वस्थ भाव उनकी कहानियों को एक स्निग्ध मर्मदर्शिता दे देता है। जाड़ों के घाम की तरह तात्क्षणिक गरमाई भी है और एक उदार खुलापन जिसको हम दे दिये जाते हैं। जैसे वाक्य विन्यास आलोच्य कहानीकारों की कहानियों में जगह–जगह दिखाई देते हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कहानियों में वाक्य संरचना, पात्रानुकूल, वातावरण के अनुकूल तथा अन्य अनेक स्थितियों की विभिन्न विधाओं में शब्दों की एकरूपता को व्याख्यायित किया है। उनके शब्द कहीं भी बिखरे या टूटे से प्रतीत होते है। हाँ यदि वाक्य में से यदि एक भी शब्द हटा दिया जाये तो शब्दरूपी ईंट के गिरने से वाक्यरूपी मकान ढह सकता है। यह सक्सेना जी के शब्द चयन और शब्दों की एकरूपता का ही परिणाम है। जिस कहानी में जैसे कहीं–कहीं भावुक कलाकार की भांति शैली परिवर्तित हो गयी है। परन्तु वाक्य का क्रम नहीं टूटा है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में भाषा और संवेदना का एक अलग रूप उभरकर सामने आता है। सर्वेश्वर जी की कहानियाँ भाषा के एक नये मुहावरे की दुनियाँ में प्रविष्ट कराती है।

शब्द चयन

सर्वेश्वर जी ने अपनी भाषा के लिये शब्द चयन उदारता से किया है। उन्होंने यथास्थान संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, पंजाबी और हिन्दी के ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है। शब्द चयन में विषय की अधिकाधिक अभिव्यक्ति की सामर्थ्य पर कहानीकार की दृष्टि रही है। भाषा की स्वाभाविकता बढ़ाने के लिए सर्वेश्वर जी ने लोक भाषा के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे – नागौरी, गुरियों, के दॉतू, अइ या, भोजाई, रसबुनिया, चुएला, पगिया, होरिलवा, ओंधेला, चमकौआ, सुमच, पोल्ख आदि। अंग्रेजी के कुछ शब्द तो हिन्दी में खप गये हैं। अंग्रेजी के शब्दों का भी कहानियों में यत्र–तत्र प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ – मिल्टिरी, सी. आई. डी., आमलेट, पोलिटिकल, रिमार्क, मिनिस्टर, क्यूरेटर, म्यूजियम, कम्पीटीशन, वी हैप्पी आदि। हिफाजत, वाशिन्दा, गुलिस्ताँ, शख्त, मोहब्बत, ताल्लुक़, जिस्म जैसे उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

पंजाबी भाषा का प्रयोग भी सर्वेश्वर जी की कहानियों में हुआ है। अप्रचलित पंजाबी भाषा केवल हिन्दी से परिचित व्यक्ति के लिये समझना संभव नहीं। कदाचित इसीलिये लेखक ने पंजाबी अभिज्ञ पाठकों की सुविधा के लिये प्रचलित पंजाबी शब्दों का अर्थ कोष्ठक में दिया है – जैसे "की भा दित्ते ने ?" (क्या भाव दिए है ?) "तू मेरी भेन होन्नी एं ना।" (तू मेरी बहिन होती है न) "एदा की है ? (इसका क्या)"[28]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सर्वेश्वर जी की भाषा का शब्द भंडार व्यापक और समृद्ध है। उन्होंने अभिव्यंज़ना को सशक्त करने वाले समस्त शब्दों का यथास्थान प्रयोग किया है उन्होंने कृत्रिमतापूर्ण शब्दों की योजना की अपेक्षा स्वाभाविक भाषा दिखलाने में अपना विश्वास प्रकट किया।

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग

सर्वेश्वर जी की भाषा का आधार पात्रों के सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर के

आधार पर बना। इनकी कहानियों के अधिकांश पात्र बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, कहीं–कहीं ग्रामीण पात्रों के माध्यम से लोक भाषा का भी प्रयोग किया है। लेकिन ऐसे स्थल बहुत कम हैं।

चित्रात्मकता

सर्वेश्वर जी की कहानी की भाषा की एक बड़ी विशेषता चित्रात्मकता है। ये चरित्रों के परिवेश, वातावरण, रहन–सहन और वेश–भूषा आदि का ऐसा चित्रण करते हैं कि पाठक के सम्मुख पात्र वातावरण आदि का चित्र सजीव हो उठता है।

वाक्य विन्यास का भाषा की एकरूपता से सम्बन्धित उदाहरण रघुवीर सहाय की एक कहानी में देखा जा सकता है। "मैं उसे केवल भयभीत कर सका था और मैं कुछ कर भी नहीं सकता था पर उसने अपनी सारी ताकत जुटा ली थी और यह सिर्फ वही कर सकती थी। मैंने मौन रहकर उसे आँख भर देखा जैसे सम्मोहित होकर वह एक पल स्थिर आँखों से मुझे देखती रही फिर काँपकर ऐसे भड़भड़ायी जैसे यह उसका आखिरी फड़फड़ाना हो फिर उसने पंख खोल दिये और उन्हें तान दिया। अचानक वह छूट गयी।"[29]

भाषा शैली

मेरी दृष्टि में रघुवीर सहाय जी की भाषा को गद्य और पद्य में विभाजित करना एक दुष्कर कार्य है। वह परम्परागत रूप से अर्जित किये गये मानक गद्य को गद्य नहीं रहने देते और उनका पद्य–पद्य नहीं रह जाता। भाषा को अपने तरीके से तोड़ना शब्दों को नए अर्थ अनुषंगों से जोड़ना, वाक्य रचना में व्याकरण के मानकों की अवहेलना हर कहीं, उनकी हर विधा में देखी जा सकती है। कहानी के एक अनुच्छेद को अगर पंक्तियों में विभाजित करके शब्दों के क्रम को जरा इधर–उधर टुकड़े–टुकड़े करके लिख दिया जाय तो वह कविता हो जाएगा और कविता को गद्य के धारा प्रवाह रूप में समेंट लिया जाय तो वह किसी कहानी का अनुच्छेद बन जाएगा।

रघुवीर सहाय जी की भाषा इतनी प्रयोगात्मक है कि उसने अपनी विधात्मक अस्मिताओं को बिसरा दिया है। कहानी की भाषा कविता के निकट और कविता की भाषा कहानी के निकट दिखाई देती है, इसीलिए रघुवीर सहाय जी की उन कहानियों में जहाँ जिन्दगी अपने पूरे कद में व्यक्त हुई है भाषा अधिक ठोस, सार्थक और यथार्थ है। जैसे इस

कथात्मक सूक्ति में एक साथ ही कविता, कहानी और निबन्ध की भाषाएँ सिमट गईं हैं – "गरीबी और गिरावट का एक दिन होता है, जब आदमी अपने से जरा मजबूत आदमी से डरने लगता है। इसको लोग कर्तव्य और संतुलन कहते हैं।[30]

कहानियों में काव्य भाषा का प्रयोग

"आकाश नील से धोए भीगे वसन की भांति स्वच्छ है। साड़ी में टँके सितारों की तरह तारे जगमगा रहे हैं। उनमें न कोई क्रम है न कोई शैली। उच्छृंखलता में भी कितना सौन्दर्य है।"[31] मुहावरेदार भाषा का प्रयोग देखिये – मैंने सोचा बस मगर इसे ही काफी अफसोस की बात होनी चाहिए क्योंकि एक तो गाड़ी वैसे ही ठचर–मचर हो रही थी, ऊपर से इस नट के गिर जाने से वह बिल्कुल ठप हो जाएगी, क्या कहावत है वह गरीबी में आटा गीला कितना दर्द है इस कहावत में और कितनी सीधी चोट है। आटा जरूरत से ज्यादा गीला हो गया और अब दुखिया गृहिणी परात लिए बैठी है उसे सुखाने को आटा नहीं है। यानी आटा है मगर रोटियाँ नहीं पक सकती।[32]

भाषा का उत्कृष्ट रूप देखिये – "रूखे सूखे केश क्यों बिखरे हैं ? सफेद आँखे क्यों फटी पड़ रही हैं ? छाती की हड्डियाँ क्यों उभरती आ रही है ? कोई समझेगा ? है कोई पीड़ा का मर्मज्ञ ? विडंबना का महाकाव्य लिखने वाला आदि कवि कहाँ है ?"[33]

रघुवीर सहाय जी की कहानियाँ विशेषकर रास्ता इधर से है कि कहानियाँ उनकी कविताओं से अधिक जीवन के निकट पहुंची है। उनमें जीवन का वैविध्य है जीवन की ऊष्मा है और उसकी रंगत है। किले में औरत कहानी में होटल के कमरों में अभिजात्य एकांत को चित्रित किया गया है। लेखक को लगता है इतने महंगे हैं ये कमरे कि इनमें पहुंचते ही ख्याल दिमाग में घर करने लगता है कि यहां अपना एकदम निजी व्यक्ति व्याभिचार करने लायक आदर्श एकांत है। शीशे को दरवाजा पार करते ही एक बरोठा मिला जिसमें आदमी के शरीर से बड़े आकार की कुछ कुर्सियों पर लोग बैठे हुए थे। ये न जाने क्या समझकर इतने भड़कीले कपड़े पहनकर आए थे। शायद उनके पास पैसा बहुत था जिसे ये कपड़ों पर खर्च कर डालना चाहते थे। शायद इनके पास अपनी अक्ल इतनी कम थी कि ये तय नहीं कर सकते थे कि उन्हें क्या पहनना चाहिए। वे बैठे इस शान से थे जैसे होटल के रहने के सच्चे हकदार नहीं है जिनके पास ज्यादा और अक्ल कम है।"[34]

रघुवीर सहाय जी पहले कवि थे बाद में कहानीकार इसलिए उनकी मूल संवेदना कवि की है। जिस प्रकार वह नितांत भिन्न प्रकार के कवि हैं, उसी प्रकार भिन्न प्रकार के कहानीकार भी थे। रघुवीर सहाय जी ने अपनी कहानियों में गद्य को जगह–जगह तोड़ा है और एक नए किस्म का गद्य लिखने की कोशिश की है। इसमें उनकी कहानी के गद्य की भाषा अधिक अभिव्यक्तिपूर्ण और सर्जनात्मक हो गई है। प्रेमिका कहानी की कुछ पंक्तियां हैं – "क्या दिन थे वह भी या वह भी क्या दिन थे। हम दोनों भागे हुए थे। गनीमत यह थी कि किसी लक्ष्य को लेकर नहीं भागे थे और दोनों के दो घर में जहाँ रात या दिन के किसी समय हम लौट जा सकते थे। वह रोज घर से भागते और रोज घर के लोगों के पास स्वीकृत हो जाते, यहां तक कि अपनी बड़ी बहन के पास भी जो उसके और मेरे प्रेम में सबसे बड़ी बाधा थी। स्कूल के रास्ते से मैं उसे रोज उड़ा ले जाता। सारे दिन उसके साथ निरूद्देश्य खेलकर उसे फिर से वहीं छोड़ आता जहां से शुरू किया था।"(35)

रघुवीर सहाय जी सर्वथा नए शिल्प और नई भाषा में कहानियां लिखते हुए कहानी लिखने के अपने बड़े उद्देश्य को कभी नहीं भूलते। वे अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों में परिवर्तन की इच्छा और सामर्थ्य पैदा करना चाहते हैं। इसीलिए अपनी कहानियों के द्वारा उनकी कोशिश एक संपूर्ण मनुष्य बनाने की होती है। उन्होंने अपने अंतिम कथा संग्रह का नाम ही रखा था, 'जो आदमी हम बना रहे हैं।' इस कहानी संग्रह का समर्पण वाक्य था, किशोर को जो तरूण हो रहे हैं।" तरूण के रूप में निर्मित हो रहे किशोरों से रघुवीर सहाय जी का यह जुड़ाव यों ही नहीं है। वे जानते हैं कि तरूण बनते किशोर को एक ऐसे आदमी के रूप में आसानी से ढाला जा सकता है जो समता, न्याय और अपने अधिकारों के लिए आसानी से जागरूक हो। जो आदमी हम बना रहे हैं कि भूमिका में उन्होंने इन मूल्यों से अपनी कथा रचना के रिश्ते को रेखांकित करने का प्रयास किया है। स्पष्टतः कहानी की रचना प्रक्रिया की यह शल्य क्रिया कोई कोरा बुद्धि विलास या खिलंदड़ापन नहीं था। रचना को जीवन के कितने करीब लाकर उसकी सांस का स्पंदन और उसकी ऊष्मा को अनुभव किया जा सकता है ? आखिर कितने करीब ? 'मेरे और नंगी औरत के बीच' इसी को व्यक्त करती कहानी है। जैसे – "हम दोनों फिर आमने–सामने बैठे हुए थे। इस बार वह घोर जाड़े में बिना किसी दूसरे वस्त्र के ठिठुरी हुई एक स्त्री थी और मैं अपने कोट की गरमाई में लगभग सम्प्रक्त एक पुरूष जिसके हृदय में केवल एक इच्छा थी या कि वह विचार था या

भावना थी नहीं जानता पर जो कुछ थी वह एक भी उसे उड़ा दूँ अपना कम्बल, यह मैंने, बाद में जाना जब देखा कि अपना कम्बल मैं नहीं ओढ़े हूँ। बाद में मैंने यह भी जाना कि जिस इच्छा से समस्त शरीर और संपूर्ण मन एकाकर हो गया है और जो मेरे जीवन के संपूर्ण अनुभवों में से संपूर्णतम है वह स्वयं अमर नहीं है जिस क्षण उसे कार्यरूप मिलेगा वह क्षय हो जाएगी। पर मुझे वह अमर करेगी और मुक्त रखेगी और स्वयं मर जाएगी, मैंने संतोष से कहा।''(36)

(घ) प्रयुक्त विभिन्न शैलियाँ

आवश्यकतानुसार शैली में ओज प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की सत्ता होनी चाहिए। शैली के माध्यम से कहानीकार अपनी कहानी को अधिक आकर्षण एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। कहानीकार की शैली का निश्चिय करते समय शब्द शक्ति का ज्ञान भी अनिवार्य है तभी उसकी शैली प्रभावोत्पादक बन सकती है। जो तत्व कहानीकार के समस्त विचारों, भावों आदि को बाह्य रूप से सजाती–संवारती है उसी को शैली कहते हैं। सरसता, सुबोधता, सरलता, प्रभावपूर्णता आदि इसके विशिष्ट गुण हैं।

शमशेर बहादुर के अनुसार रघुवीर सहाय ने भी शैली को व्यक्तित्व का अंश माना है। व्यक्तित्व के साथ ही शैली का विकास होता है। शैली का विकास होते–होते वह दिन भी आता है कि बिना नाम मुहर के भी लाखों के बीच व्यक्तित्व की ही तरह शैली भी आप से आप पहचानी जा सकती है। छोटे–छोटे वाक्य, चलते फिरते मुहावरें, साफ सुधरे शब्द यहाँ तक कि छोटे से छोटे पैराग्राफ को भी उत्तम उपादान माना है। शैली अभ्यास खोजती है और व्यक्तित्व के निर्माण की तरह शैली का निर्माण भी प्रारम्भ से कुछ पथ प्रदर्शन चाहता है। रघुवीर सहाय की शैली पर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है उपर्युक्त गुण उनकी शैली में मिल जाते है।

रघुवीर सहाय की कहानियों में विभिन्न शैलियों के रूप दृष्टिगोचर होते हैं। भावात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, व्यंग्य विनोद शैली, लाक्षणिक शैली, प्रतीकात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, चित्रात्मक शैली, संस्मरणात्मक शैली, अलंकारिक शैली, मनोवैज्ञानिक शैली, खोजपूर्ण शैली इत्यादि। वर्णनात्मक शैली का एक उदाहरण रघुवीर सहाय की एक रचना में देखा जा सकता है – ''बर्फ सड़कों पर फुटपाथों पर और दरवाजों

के सामने ढ़ेर भी ज्यादातर सफेद कहीं–कहीं धूल से मैली मगर कहीं–कहीं दूध से उज्जवल। मस्क्वा की और सड़कों की तरह वह भी चौड़ी और साफ थी रद्दी या कचड़ा का एक टुकड़ा भी उस पर नहीं था। फुटपाथ पर पत्रहीन वृक्षों के थालों में काली भींगी मिट्टी तक साफ दिखती थी। हवा में धूल का कहीं नाम तक नहीं था। स्कूल से लौटते लड़के लड़कियाँ सौदे के बाज़ार जाती औरतें और नौजवान पुरूष फुटपाथ पर चलते हुये एक अजनबी हिन्दुस्तानी को देखने के लिये क्षण भर ही सिर उठाते, अन्यथा वे अपने में मस्त थे।[37]

प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन जैसे फल पकता है, पूरब की दिशा लाल होने लगी और फिर प्रभात हुआ। रेत में फँसी हुई नौका की भाँति पश्चिमी का चाँद उधर उस कोने में आधे उजले आकाश में धँसा हुआ था।[38]

रघुवीर सहाय की रचनाओं में भावात्मक शैली का एक उदाहरण देखा जा सकता है। भावात्मक शैली रघुवीर सहाय के नाटकों, कहानी, उपन्यास, यात्रा साहित्य आदि सभी विधाओं में देखने को मिल जाते हैं। रूद्ध स्वर पश्चाताप है इस प्रकार भूल मानकर सरल रामू की माँ मैं समझ गया मैं भूल कर रहा था। तुम ठीक कहती हो मैं किसी भी वर्ग समाज से नहीं डरूँगा। मैं तो केवल आदमी हूँ जिसे जीवित रहना है। क्योंकि उसने जीवित रहने के लिये ही जन्म लिया है। यदि मैं स्वयं भूख से मर जाऊँ तो यह खुद मेरे लिये लज्जा की बात होगी। फिर मुझ पर तुम्हारा जिम्मा है, उठो, दिया जलाओ, मुझे घर में अंधेरा अच्छा नहीं लग रहा है।[39]

अन्य प्रयुक्त विभिन्न शैलियाँ

अन्य शैलियों के अन्तर्गत प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है – "अकृतज्ञ की तरह मैंने पूँछना शुरू किया, मैं इसे कम्बल क्यों देना चाह रहा हूँ ? क्या इस पर मुझे दया आ रही है क्योंकि इसके पास नहीं है और मेरे पास है ? सावधान, मैंने अपने को अपनी पिछली कहानियों की तरह याद दिलायी एक मानव को दूसरे पर दया करने का क्या अधिकार है ? प्यार मैं कर सकता हूँ पर क्या मैं सचमुच प्यार कर रहा हूँ दया बिल्कुल नहीं ? क्या मैं विश्वास से कह सकता हूँ।

सजीवता

कहानी की आत्मा को प्रकट करने की कलात्मकता सामर्थ्य शैली में होती है। इस दृष्टि से सर्वेश्वर जी की शैली सर्वगुण सम्पन्न है। सर्वेश्वर जी की सशक्त गद्य शैली उनके शिल्पविधान और कला की देन से कम नहीं है। वह भावना और विचार से परिपूर्ण है। सर्वेश्वर जी की भाषा शैली में सजीवता दृष्टव्य है –

"निर्जन पर्वतीय प्रान्त। दूर–दूर तक पहाड़ियाँ और सौन्दर्य की आभा बिखेरती हुई किसी की प्रतीक्षा में सजी खड़ी थी। चाँदनी रात थी। श्वेत बादलों से बंधी हुई पहाड़ों की चोटियों पर शशि–किरणों की धवल–धारा ऐसी लगती मानो असंख्य परियाँ एक साथ नृत्य प्रारंभ करने के लिए एक विचित्र भंगिमा सजाती हुए थिरक रहीं हों।"[40]

प्रवाहपूर्णता

शैली का प्रवाह रसानुभूति में सहायक होता है। यदि शैली का समतल प्रवाहपूर्ण व परिष्कृत होना आवश्यक है नहीं तो रचना की गाह्य शक्ति क्षीण हो जाती है। सर्वेश्वर की प्रवाहपूर्ण परिष्कृत शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

"गंगा की निर्मल धारा, जल की लहरियों में झूलता हुआ पुल का प्रतिबिम्ब, तट पर बालुकी राशि में अंधकार की लुका–छिपी, पार दूर–दूर पर चित्र सी खिंची हुई गाँवों की झोपड़ियों पर कोहरे का जाल, चारों ओर अखंड नीरवता और निर्जनता।"[41]

इसमें प्रवाहपूर्ण शैली के समतल स्निग्ध रूप के यथेष्ठ प्रभावात्मकता है। शैलीगत ममस्पर्शिता का चरमोत्कर्ष रूप सर्वेश्वर जी के साहित्य में अन्यत्र भी मिलता है।

भावुकता एवं मार्मिकता

लेखक ने अनेक स्थानों पर भावुकतापूर्ण गद्य शैली का उत्कर्ष अंकित किया है। सर्वेश्वर जी की शैली मनोभावों के अनुरूप अपना परिवेश विद्यमान करती है। जहाँ कोमल और मधुर भावों की व्यंजना है, वहाँ शैली उसी के अनुरूप कोमल और मधुर हो गई है। जहाँ उग्र भावों की व्यंजना है, वहाँ शैली का ओज भी देखते बनता है। अभिव्यंजना सम्पन्न शैली के प्रयोग से भाव मूर्तिमान सा हो जाता है। शैली का यह रूप–परिवर्तन और वेश विधान उनकी समस्त कहानियों में दृष्टिगत होता है। शैली की प्रभावात्मकता बढ़ाने के लिये उन्होंने

उपमाएँ प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त की हैं यथा –

1. बिजली का–सा स्पर्श उसके रोम–रोम को झटके दे रहा है।"[42]

2. उसकी मुस्कान कंटिए के हूक में फंसे केंचुए की तरह मेरे अस्तित्व के जल में गहरे डूब रही थी।"[43]

3. गौर मुख – मंडल पर मचलती सी चाँदी भरी श्वेत आभा, नील सिंधु पर उमड़ती हुई जवान खामोशी–सी शराब भरी आँखे और उस छवि के सागर में मूँगियाँ परी–सी तैरती हुई मुस्कान।"[44]

साम्य वैषम्य

रघुवीर दयाल तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में अभिव्यंजना शिल्प में काफी समानता देखने को मिलती है। दोनों कथाकारों ने सर्वथा नये शिल्प और नई भाषा में कहानी लिखने के अपने बड़े उद्देश्य को कभी नहीं भूला। भाषा एवं शिल्प के माध्यम से वह पाठकों में परिवर्तन की इच्छा और सामर्थ्य करना चाहते है। इसलिये इन कथाकारों की कहानियों में यह उनकी कोशिश रहती है कि व्यक्ति एक अच्छा इन्सान बन सके। आलोच्य कथाकारों की संवाद योजना, वाक्य विन्यास एवं इसमें प्रयुक्त विभिन्न शैलियों में मानवीय संवेदना का मनोवैज्ञानिक चित्रण गैररूमानी यथार्थ बोध उन्हें अपनी संवेदनाओं का, अपनी करूणा का निर्मम विश्लेषण करने को बाध्य करता है। आलोच्य कथाकारों की कई कहानियों में यह आत्म परीक्षण का स्वर एक लगातार चलते आत्मालाप की तरह दिखाई पड़ता है।

रघुवीर सहाय ने अपनी कहानियों में देशी–विदेशी और देशज शब्दों का प्रयोग खुलकर किया है। रघुवीर सहाय की भाषा साधारण जनसमूह द्वारा समझे जा सकने वाली हिन्दी है। वह उसके संस्कृतनिष्ठ होने को जनता से अलग कर दिया समझते है। पत्रकार होने के कारण उनकी भाषा लोकभाषा है जनभाषा है या कहें की अखबारी भाषा है। जिसका प्रयोग आपकी कहानियों में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इसलिये अरबी एवं फारसी की शैली आपकी भाषा में घुल मिल गई है। आपकी कहानियों में हिन्दी, अंग्रेजी, बंगाली तथा उर्दू आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। वहीं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कहानियों में विभिन्न शैलियों का प्रयोग वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक तथा मनोवैज्ञानिक, चित्रात्मकता एवं

अलंकृत का प्रयोग किया है। आपके शब्दों का चयन विषयों की विविधता लिये हुये हैं। सक्सेना जी की कहानियों में संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, उर्दू, चीनी व रूसी भाषा के ठेठ शब्दों का प्रयोग स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

□□□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. द आर्ट आव इंग्लिश पोयजा – 1589
2. रघुवीर सहाय रचनावली, पृ. 11
3. रघुवीर सहाय रचनावली–3, पृ. 23
4. बदलते परिप्रेक्ष्य – नेमीचन्द्र जैन, पृ. 77
5. भक्तिकालीन काव्य – डॉ. रामविलास गुप्त, पृ. 296
6. प्रतियोगिता दर्पण – सामान्य हिन्दी विशेषांक – 1.9.1999, पृ. 59
7. आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना – डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद, पृ. 221
8. रघुवीर सहाय रचनावली, पृ. 81
9. रघुवीर सहाय, रचनावली–2, पृ. 113
10. रघुवीर सहाय, रचनावली–2, पृ. 126
11. काठ की घण्टिया, पृ. 23
12. काठ की घण्टियां, पृ. 44, 45
13. काठ की घण्टियां, पृ. 71
14. कच्ची सड़क (मौत की छाया) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 54
15. कच्ची सड़क (डूबता हुआ चाँद) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 31
16. कच्ची सड़क (मौत की आँखें) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 78
17. कच्ची सड़क (भगत जी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 92
18. कच्ची सड़क (जिन्दगी और मौत) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 109
19. कच्ची सड़क (प्रेमी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 44
20. अन्धेरे पर अन्धेरा (तोता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 66
21. अन्धेरे पर अन्धेरा (तोता) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 123
23. कच्ची सड़क (डूबता हुआ चाँद) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 31
24. अन्धेरे पर अन्धेरा (पराजय का क्षण) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 17
25. कच्ची सड़क (मौत की आखें) – ईश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 14
26. अन्धेरे पर अन्धेरा (सो जाओ दोस्त) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 120
27. सम्पादक लक्ष्मी चन्द्र जैन, पृ. 10
28. कच्ची सड़क (स्नेह और स्वाभिमान) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 132–33
29. एक जीता जागता व्यक्ति, रघुवीर सहाय रचनावली–2, पृ. 73
30. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 121
31. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 31
32. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 53

33. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 31
34. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 121
35. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 89
36. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 77
37. रघुवीर सहाय, रचनावली–2, पृ. 284
38. रघुवीर सहाय, रचनावली–2, पृ. 36
39. रघुवीर सहाय, रचनावली–2, पृ. 188
40. कच्ची सड़क (जिन्दगी और मौत) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 106
41. कच्ची सड़क (मौत की छाया) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 53
42. अंधेरे पर अंधेरा (प्रेमी) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 47
43. अंधेरे पर अंधेरा (टाइमपीस) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 50
44. कच्ची सड़क (सोने के पूर्व) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 46

□□□

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

आलोच्य कहानियों में चित्रित राजनीतिक यथार्थ एवं परिवेश

(क) राजनीतिक अधिकारियों के कार्य एवं विडम्बना

आलोच्य कथाकारों ने अपनी कहानियों में राजनीतिक अधिकारियों के कार्यकलाप एवं विडम्बना की चालों को खोलकर रख दिया है। क्योंकि वर्तमान की राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अव्यवस्थाओं के चलते हमारी राजनीति ने एक संक्रमण काल में प्रवेश किया है। रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कुछ कहानियों में इसके नग्न यथार्थ का रूप स्पष्ट रूप से अवलोकित किया जा सकता है।

प्रत्येक जागरूक व्यक्ति अथवा कलाकार अथवा साहित्यकार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र में हो रहे परिवर्तन से निश्चित रूप से प्रभावित होते हैं। राष्ट्र की स्वतंत्रता के पूर्व भारत में राजनीतिक उथल–पुथल हो रही थी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये लोग निरन्तर संघर्ष कर रहे थे। बरसों राजनीतिक लड़ाई लड़ी गई। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राजनीतिक स्तर पर भी परिवर्तन हुये थे। इसी प्रकार हमारे यहाँ मार्क्स की विचारधारा का भी प्रचार–प्रसार भी हुआ था। जिसके कारण यहाँ प्रगतिवादी चेतना प्रकट हुई थी। कई राजनीतिक एवं साहित्यकार इसकी ओर आकृष्ट हुये और उन्होंने राजनीतिक एवं साहित्यिक स्तर पर महत्वपूर्ण योगदान देकर राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किया। भारत छोड़ो आन्दोलन एवं द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई कि भारत को स्वतंत्र कर अंग्रेजों को जाना पड़ा। स्वतंत्रता के बाद जो आशायें बुद्धिजीवियों एवं साहित्यकारों ने पाल रखी थी उसमें राजनीतिक एवं अधिकारी वर्ग खरे नहीं उतरे और उनके कार्य हमेशा जनहित के विपरीत रहे। जो स्वतंत्र भारत की एक विडम्बना ही कहे जायेंगे।

रघुवीर सहाय जी कहानीकार के साथ एक सफल कवि और पत्रकार भी थे। इसीलिए उनकी कविताओं के विषय एवं कहानियों के विषय कुछ–कुछ राजनीति से प्रभावित

हैं – जैसे ग्यारहवीं कहानी शीर्षक कहानी एक रचना न होकर एक दलील है, एक डिबेट है जिसके द्वारा लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि अमरीका और रूस दोनों ही मानव मूल्यों संहार से संलग्न हैं। पूंजीवाद और समाजवाद दोनों ही मानव द्रोही व्यवस्थाएँ हैं। इस कहानी में कदाचित एक धनीभूत यथार्थ की ओर संकेत अवश्य है कि साम्प्रदायिकता और जाति बिरादरी वाले दंगों में आजाद भारत को जो अनुभव प्राप्त हुए हैं वे गुलाम भारत में कहां थे पुलिस को जनता के साथ मिलकर जनता को मारने का एक नया अनुभव हुआ, जोकि अंग्रेजी राज में कभी नहीं हुआ।"[1]

प्रस्तुत कहानी में एक दिन एक जवान आदमी जो न किसी के लेने में या न देने में, एकाएक मर गया। उसने कभी पुलिस का संरक्षण नहीं मांगा था। कोई भीड़ उस पर चढ़ाई करने न आई थी। वह एक साहित्यकार था। वह खूब लिख चुका था और खूब नाम कमा चुका था। कुद दिनों से वह एक नई रचना की उधेड़बुन में था जो उसके अब तक के कृतित्व से एकदम विशिष्ट होती। किसी को नहीं मालूम था कि वह क्या लिखना चाहता है। आलोचक इतना ही जानते थे कि इस बार उसके लिए लिखना और भी कठिन होने वाला है। तभी वह चल बसा, अकस्मात् सामने बैठा लेखक चौंका और कुर्सी पर लुढ़क कर मर गया औरों की तरह वह भी अपनी कीर्ति के शिखर पर खड़े–खड़े साहसा खत्म हो गया था। पूरी कहानी राजनैतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करती प्रतीत होती है।

सीमा के पार का आदमी

रघुवीर सहाय जी की यह एक श्रेष्ठ कहानी है। 1965 में रघुवीर सहाय जी ने भारत–पाक युद्ध के बाद भारत अधिकृत पाकिस्तान के गांवों की यात्रा की। इस यात्रा द्वारा अर्जित अनुभवों का पुनर्सृजन इस कहानी में हुआ है। यह कहानी युद्ध साम्प्रदायिकता जाति और धर्म के गोपनीय तथ्यों को उद्घाटित करती है। युद्ध की समाप्ति के बाद के एक बंदी शिविर और युद्ध से क्षतिग्रस्त एक गांव की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया गया है। एक घर में किसी बच्ची की छोटी सी लाल चप्पल को देखकर वाचक (एक अखबार का संवाददाता) करूणा विगलित हो जाता है। चित्रण द्रवीभूत कर देने वाला हैं। युद्ध में बंदी बनाई गई एक अस्सी साल की बुढ़िया और एक अठारह साल की लड़की है पहली रोती है और दूसरी गुस्से से देखती है। बंदी शिविर में हिन्दू–मुसलमान अलग–अलग रखे गये हैं। लेखक ने तीखा

व्यंग्य किया है कि हिन्दुस्तान की सत्ता के तले बंदी ये पाकिस्तानी हिन्दू–मुसलमान कहीं फिरकापरस्ती के शिकार न हो जाएं। शिविर का दौरा करने आया भारत का उप रक्षा मंत्री एक पाकिस्तानी हिन्दू बंदी से वहां की धार्मिक आजादी के बारे में पूछता है। बंदी पाकिस्तानी हिन्दू बताता है कि वहां हमें न मंदिर में मूर्ति रखने की आजादी है न पूजा करने की तिथि। त्यौहार बाजा कुछ भी नहीं होने दिया जाता है। लेकिन एक पाकिस्तानी मुसलमान इसका प्रतिवाद करता है। कहानी का अंत बड़ा मार्मिक है, जब पत्रकार उसे पुरोहितनुमा पाकिस्तानी हिन्दू से यह पूछता है कि – "अब जब तुम हिन्दुओं के बीच में आ गए हो यहीं कहीं क्यों न रह जाओ, सब कष्ट कहे वह चौंका। अविश्वास से मुझे ताका, दरवाजों की तरफ देखकर उसने अंदाज लगाया कि उसको कोई ताड़ तो नहीं रहा है, नहीं साहेब वहीं चले जायेंगे, तुम तो कहते हो बड़े बंधन है वहां, हाँ साहेब हैं तो पर अपना घर वहीं है। बच्चों को पालने का सहारा है, अपना जो कुछ भी है वही हैं साहेब अब और कहां जाएं। वह यह भी बताता है कि वह 1947 में पाकिस्तान में ही रह गया था। उसने अपना घर नहीं छोड़ा, आखिर में पत्रकार खींजकर कहता है हिन्दू होकर भी तुम वहीं बने रहे ? हिन्दू तो पाकि़स्तान चले गये थे, उसने कहां हम हरिजन हैं।"[2] यह वाक्य एक साथ कितने ही सवालों की बिजलियां गिराता है। हिन्दू धर्म की अमानवीयता, धर्म को गहरी जड़ें, अपनी मिट्टी से प्यार, निर्धनता की विभीषिका, रोजगार से जुड़ा राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रवाद की धार्मिक धारणाएँ आदि सवाल अनुत्तरित होकर भी प्रोदभासित हो उठते हैं।

मुठभेड़

प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु भी राजनैतिक प्रभाव छोड़ती है, सामाजिकता का उद्देश्य लेकर आधुनिक समाज पर राजनैतिक हस्तक्षेप करती है। ये कहानी जैसे किसी एक का मरना लोगों का शमशान में जाना और कहानीकार का यहं दिखलाना कि शमशान में भी जहाँ किसी भी लाश यानी शरीर जल रहा हो लोग दूसरे आदमी के अचानक न होने को कितनी बेरूखी, बेखबरी तथा इस बेसब्री से देखते हैं कि किसी तरह यह अनुष्ठान समाप्त हो, धूप गर्मी, सर्दी या बारिश से छुटकारा मिले और उनका अपना रोज वाला दिन शुरू हो। सबसे उम्दा बात तो यह हो कि एक बढ़िया तेज शराब हो जाये। शायद मुठभेड़ कहानी की थीम यही हो, सारे शहर के अखबार उसमें थे सबको तख्त पर बिछाया। कितनी दयनीय स्थिति भी सारी दुनिया में कुछ आदमियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार चौबीस घंटे के अन्दर

हमारी नियति को जहाँ–तहाँ से मोड़ने की कोशिश की थी। सारे अखबारों की खबरें और उनमें आदमी की स्थिति ? लेकिन मुठभेड़ की जो असली और सबको ताजा खबर थी वह शहर के उन सारे अखबारों में कहीं नहीं थी। उस वक्त तक शिवराम की माँ के मरने की खबर ही ताजी खबर थी। इसे एक कागज पर चींटी जैसे अक्षरों में लिखूं और उसे अखबार में चिपका दूँ ? पर सब में नहीं। और फिर उस एक की हर एक की में शायद 'मुठभेड़' की असली मुठभेड़ रही है। शहर के सारे अखबारों की खबरें शिवराम की माँ का मरना शमशान में लोग शव यात्रा की गाड़ी के ड्राइवर के फायरिंग होने से पहले वहाँ से ओझल हो जाने की कोशिश है।''[3]

आधुनिक समाज में राजनीति का बढ़ता प्रभाव जिसके चलते साधारण लोगों की मौत अखबार में स्थान नहीं पा सकती, ये सामान्य खबरें आम जनता के साथ न एक रिश्ता कायम कर सकती हैं और न ही दया बटोर सकती हैं।

'शिवराम और तीन आदमी लाश को बाहर लाए। तीन, दूसरे आदमी गाड़ी में सरक गए। लाश गाड़ी के आकार के लिहाज से ठीक बड़ी थी। उन्होंने उसे अंदर फर्श पर रख दिया। फिर उन्होंने उसे बाहर निकाला क्योंकि शिवराम को अंदर बैठना था पर शिवराम खुद टिकरी में हाथ लगाए था। मैं देखने लगा कि कैसे करते हैं उन्होंने मुझे नहीं बुलाया। शिवराम की तरफ का हत्था दूसरे ने अपने दूसरे हाथ से थाम लिया। शिवराम खाली हो गया, वह अंदर आ गया, अभी भी वह नंगे बदन था।''[4]

पात्र योजना

रघुवीर सहाय जी कि राजनैतिक कहानियों में पुरूष पात्रों की संख्या अधिक है। कोई विवश निरूपाय मजबूर है तो कोई सत्ता के मद में चूर है। जैसे सीमा के पार का आदमी कहानी में कई पुरूष पात्र हैं उनमें सैनिक भी हैं मंत्री भी हैं, और पत्रकार भी हैं। जैसे "अफसर ने किसी को आवाज दी और उसके जाने पर पूछा कि वह बुड्ढा कहां हैं और क्या कर रहा है ? वह बैठा है, यह सुनकर अफसर मुझे टीले के ऊपर ले गया। वहाँ वह धूप सेंकता बैठा था। या तो वह जमीन को ताक रहा था, या बुढ़ापे से उसकी गर्दन ही झुकी रह गई थी।

"क्यों मियाँ कैसे हो ?" किसी ने पूछा।

उसने बड़ी मेहनत से गर्दन उठाई। यही उसका जवाब था। या तो "अच्छा हूँ आपकी दुआ से" कहते–कहते वह थक चुका था या अपने मिर्जन गांव में अपने ध्वस्त हार के बार शत्रु के बीच लगातार जिंदा रखे जाते–जाते वह जड़ हो चुका था। "यह अकेला यहां क्यों पड़ा है ? "मैंने पूछा।" मूर्खता का प्रश्न था कि नहीं। क्या यह काफी स्पष्ट न था कि वह एक इन्सान वहां न रहा होता तो इन्सानियत के सलूक का अवसर कहाँ से आता ?"[5]

इसके विपरीत 'मुठभेड़' कहानी का पात्र शिवराम राजनीति के कुचक्र के सामने विवश और निरूपाय हो गया है जैसे – "वो आदमी धीरे–धीरे बहुत उदास चेहरा लिए मैदान में दाखिल हुए। वे दबे पांव सीधे शिवराम की तरफ गए। हांडी को लांघने जाएं, मैं डरा। बहरहाल, अब सब कुछ हो चुका था। इतने धीरे चलने की जरूरत न थी, एक मोटा था।

शिवराम और तीन आदमी लाश को बाहर लाए। तीन दूसरे आदमी गाड़ी में सरक गए। लाश गाड़ी के आकार के लिहाज से ठीक बड़ी थी उन्होंने उसे अंदर फर्श पर रख दिया।

फिर उन्होंने उसे बाहर निकाला क्योंकि शिवराम को अंदर बैठना था, पर शिवराम खुद टिकरी में हाथ लगाए था।

मैं देखने लगा कि कैसे करते है, उन्होंने मुझे नहीं बुलाया। शिवराम की तरफ का हत्था दूसरे ने अपने दूसरे हाथ से थाम लिया। शिवराम खाली हो गया, वह अंदर आ गया। अभी भी वह नंगे बदन था।"[6]

ग्यारहवीं कहानी में अपने बच्चे के इलाज के लिये यहां–वहां भटकते बाप की विवशता का चित्रण है। जैसे –

"हरिहर वापस आया। वह नहीं जानता था, क्यों करें। यदि डॉक्टर होता तो लाइलाज मर्ज का इलाज सोचने में लग जाता। एक क्षण के लिए उसे दिल में यह औपन्यासिक विचार आया भी कि वह सब कुछ छोड़कर चिकित्सा विद्या पढ़ें और स्वयं एक नया आविष्कार करके ग्यारहों शोध पीड़ितों को निरोग कर दें। पर अपनी तनख्वाह और पांच की याद आते ही वह फिर किसी ऐसे उपाय की खोज में लग गया जो साधारण आदमियों के करने योग्य होते हैं।"[7]

हिन्दी कहानी के संदर्भ में कहा जा सकता है कि रघुवीर सहायजी की कहानियाँ हिन्दी कहानी की एक विशेष परम्परा में अकहानियां है क्योंकि वे कभी कहानी होने या कहानी बनाने की चिन्ताओं से शुरू ही नहीं होतीं। वे तो एक चीज एक स्थिति, एक व्यक्ति एक रिश्ते को समझने की कोशिश में शुरू होती हैं और धीरे–धीरे उनके चारों ओर कुछ ऐसा सधन गहन और अर्थवान बन जाता है। जिसे हम उसकी कहानी मानने लगते हैं। वे अटूट निष्फल और सूक्ष्म निरीक्षण की कहानियां हैं, जिनमें से क्रमशः एक स्पंदित, चमकता हुआ 'सच' निकल आता है। जैसे कभी–कभी धूल रेत के कणों के मैदान के छोटे–छोटे चक्करदार घेरों में क्रमशः धौंकनी की तरह फूंकते रहने के बाद अचानक जीवित इतने नन्हें कि केवल दिखायी भर पड़ सके आकार वाले कीट निकल आते और वह बच्चों का खेल उनका अपना आविष्कार होता है।

वरना क्या अर्थ है चालीस के बाद प्रेम, इन्द्र धनुष, सेवा सर्कस, विजेता यहां तक कि प्रेमिका और कीर्तन कहानियों का ? ये सब इसी मुठभेड़ की कहानियां हैं। एक ऐसी मुठभेड़ जो लगता है, हिन्दी कहानी में पहली बार हो रही हो या जो शायद जैनेन्द्र की शुरू की कहानियों में हुई दिखती है। यही रघुवीर सहायजी की रचनात्मकता तथा मानवीयता को एक कर देने की अपूर्व क्षमता है।

रघुवीर सहाय जी की कहानियाँ न्याय और समता के आदर्शों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और उनके गैर–रूमानी यथार्थ की धारणा को बहुत स्पष्ट करती हैं। उनकी आत्मसजग जनतांत्रिक संवेदना अपने वैयक्तिक आचरण और रचना में उस करूणा या सहानुभूति के प्रति आशंकित है जो दूसरे को नीचा बना देती है। अपनी इसी संवेदना से समाज और व्यवस्था में व्याप्त गैरबराबरी को रघुवीर सहायजी ने बहुत बारीकी से महसूस किया एवं देखा है। रघुवीर सहाय जी की कहानियों में समवाय सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। निश्चय ही रघुवीर सहाय जी की सभी कहानियां उनको समग्रता से समझने का एक ठोस आधार देती है।

सर्वेश्वर जी की कहानियों में राजनीतिक व्यवस्था का बहुत ही सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार, अव्यवस्थाओं का सजीव चित्रण करके जन–जीवन को प्रभावित किया है जिससे आप जन लेखक बन गए हैं। आज की राजनीति,

राष्ट्रनीति, युद्धनीति और गुटबंदियों में कैद होकर जनमानस अननिगत कुंठाओं का शिकार हो गया है। इन सबके लिए जिम्मेदार राजनैतिक दल हैं। मानव को गुमराह करने वाले राजनीतिक दलों को भी सर्वेश्वर दयाल ने नहीं छोड़ा है।

सर्वेश्वर जी एक समाजवादी लेखक प्रतीत होते हैं। लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था से वे संतुष्ट नहीं हैं। स्वतंत्रता के बाद का उन्होंने सजीव चिंत्रण किया है। वर्तमान परिवेश में एक ओर तो वे लोग हैं जिनकी ईमारतें आलीशान हैं किन्तु दिलों का आकार छोटा है और दूसरी ओर वे मेहनतकश नर–नारी हैं जिनका घर भले ही छोटा हो पर दिल बहुत बड़ा है। आज स्वतंत्रता पश्चात जो हमने पाया है उसमें एक ओर भूख है, खाली पेट सो जाते लोग हैं तो दूसरी ओर आकर्षक झाँकिया हैं। जिनसे ढोंग और विश्वासघात की बदबू आती है क्योंकि जो नहीं हैं वही दिखाया जाता है और जो है उसे छिपाया जाता है।

सर्वेश्वर जी के अनुसार राजनीति का अर्थ आज बदल गया है। इसके नये अर्थ की आवश्यकता है जिससे देश का नागरिक आज की राजनीति को समझ सके। हमारे देश में जितना राजनीतिज्ञों का पतन हुआ है उतना किसी अन्य देश में नहीं हुआ है। अर्नगल बकवास, असत्य भाषण, स्वार्थ, चाटुकारिता विचारों की परिवर्तनशीलता इस देश में नेताओं के संबंध में कहा था – "इतनी जल्दी तो गिरिगट भी रंग नहीं बदलता जितनी जल्दी देश के नेता रंग बदलते हैं। सारा दृश्य किसी सूने कमरे में खाने की मेज पर चूहों की कलाबाजियों जैसा है। किसी का भय नहीं न अपनी आत्मा का न जनता का, बेफिक्र घमाचौकड़ी मची हुई है।"[8] गांधी के नाम पर आज राजनेता खादी पहन कर गरीब जनता का शोषण कर रहा है। चुनावों में लंबे–लंबे घोषणा–पत्रों द्वारा वह जनता जर्नादन को भूल भूलैया में डाल अपना राजनैतिक स्वार्थ पूरा कर रहा है कुर्सी व सत्ता के लिये कुछ भी करने को वह तैयार है। चुनावों में धाँधली करना इनका धर्म बन गया है। लोकतंत्र में मतदान की स्वतंत्रता पर प्रश्नचिन्ह लग गया है।

(ख) विभिन्न राजनीतिक क्रिया-कलाप

समूची सृष्टि प्रेरणा की ही उपज है। हमारी 70 प्रतिशत क्रियायें प्रेरणा पाकर ही पनपती हैं। मनुष्य का सामाजिक जीवन क्रमागत विकास का द्योतक होता है, जो अतीत से रस ग्रहण कर, वर्तमान में प्रतिफलित होता है। प्रेरणा का सम्बन्ध उस व्यक्ति, वस्तु–घटना

या दृश्य से है, जो लेखक को साहित्य–विशेष की रचना में प्रवृत्त करता है। आदि कवि बाल्मीकि के संबंध में कहा जाता है कि उन्हें काव्य रचना की प्रेरणा क्रोंच वध के अवलोकन से प्राप्त हुई। महाकवि कालीदास के मेघदूत का प्रेरणा–स्त्रोत स्वयं कवि का विरह बताया गया है। विद्यापति के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने अपने रस–पूर्ण गीतों की रचना राजा शिवसिंह और रानी लंखिमा देवी की प्रेरणा से की थी। भक्तिकाल के कवियों का मूल प्रेरणा–स्रोत सामान्यतः उसके इष्टदेव का स्वरूप एवं चरित्र ही रहा है। प्रेम–दीवानी मीरा के गीतों का उद्‌गम स्रोत उनकी ह्रदय की प्रणय–वेदना का अजस्त्र प्रवाही स्रोत ही रहा है – "घायल की पीड़ा घायल जाणे" के स्वरों में घायल ह्रदय की छंटपटाहट ही व्यंजित है। जिस प्रकार पत्थर, लकड़ी या धातु पर चोट मारने से स्वतः ही एक ध्वनि निकल पड़ती है, कुछ वैसे ही विरह की चोट से जायसी, घनानन्द, मीरा के गान शत–शत स्वरों में फूट पड़े। प्रसाद जी की प्रेरणा का स्त्रोत प्रायः लौकिक या अलौकिक आलम्बन रहा है, जो आलिंगन में आते–आते मुस्कराकर भाग गया।

रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कहानियों में विभिन्न राजनीतिक क्रियाकलापों एवं समाज में हो रहे इसके प्रभाव को अपनी लेखनी के द्वारा प्रमुख रूप से उकेरा है। आलोच्य कथाकारों ने समाज में व्याप्त अनाचार, अनास्था, असमानता, अमानवीयता उन्हें सदैव भीतर तक कचोटती रही है। इसीलिए आपकी कलम साहित्य के रूप में युग की वास्तविक तस्वीर बनाती है, जिसमें उन दुष्प्रवृत्तियों पर कुठाराघात किया जाता है जो अब समाज को डसती जा रही हैं। जीवन में व्याप्त असंतोष लेखक को "मूक" प्रेरणा देता है। उनकी प्रेरणा के स्त्रोत वे लोग हैं जो मेहनत से मजदूर हैं, जो निरीह लावारिस लाशें, फुटपाथ पर लड़खड़ाती जिन्दगी और सबसे ज्यादा जिन्दगी से जूझती प्यासी अतृप्त असंतुष्ट आत्मायें हैं।

साहित्यकार हर वस्तु, स्थान से अलग–अलग प्रेरणायें ग्रहण करता चलता है। प्रेरणा में रूचि सर्वोपरि होती है, जिसकी जैसी रूचि होती है, वह अपनी रूचि अनुसार अपनी अवधारणा निश्चित करता है वैसे सर्वेश्वर जी को हर चीज़ प्रेरित करती थीं हाँ उनका दृष्टिकोण कुछ अलग था, उन्हें दौड़ती कारें, ऊँची अट्‌टालिकायें, सौन्दर्य बोध का ऐश्वर्य में अवसाद की छाया रूप में ही देखते हैं। सर्वेश्वर जी कहते थे कि यदि लेख व लेखक एक

बहाव है तो मैं उस बहाव का दीप जरूर हूँ। नदी में बहतें दीप की तरह, दीप की तरह नहीं, मैं किनारे के जल में झाँकते वृक्षों, बंधी नौकाओं पर लिट्टियाँ सेंकते मछुआरों, तट पर आरती कीर्तन से गूँजते मन्दिरों, विशाल अट्टालिकाओं में होते राग रंग, अंधेरे गाँवों उनके झोपड़ों, नदी के बहते निर्मल जल के तमाम प्रदूषणों, बहकर आयी लाशों, आत्महत्या के लिए डूबते लोग, भूखे पेट पानी पीकर जीते आदमी, छोटे फटे कपड़े से मछली पकड़ने के ख्वाब देखते नन्हें बच्चे .... सबको अपना परिवेश मानता हूँ। मैं और मेरा लेख न दीप की तरह समय की नदी में बहती जा रही है और उन सब को अपनी नन्हीं लौ और किरणों से अपनाने और गले लगाने की कोशिश करती जा रही है जो समय के बहाव में मेरे बहते रहने से मुझे चारों तरफ दिखते हैं।"[७] सर्वेश्वर सहाय की कुछ कहानियाँ यथार्थ की नयी दुनिया का उद्घाटन करती हैं अपने समय के जो अनुभव हुए थे। रघुवीर सहाय ने उन्हें अपनी कहानियों में अंकित किये। आपकी कुछ कहानियाँ तत्कालीन समय की राजनीति को स्पष्ट करने में सक्षम रही है। राष्ट्र में आजादी के बाद भारतीय जनता के स्वप्न एवं आशायें तिलतिल कर समाप्त होते दिखाई दे रहे थे क्योंकि सामाजिक व्यवस्था में भी अस्थिरता का वातावरण बनने लगा था। राष्ट्र में नेताओं ने जातिवाद को बढ़ावा देने शुरू कर दिया था। जिससे मानव के मन में ऊँची–नीची अर्थात् सवर्ण–गैर सवर्ण के मध्य संघर्ष होने लगे थे। राष्ट्र के कर्णधारों के समक्ष समय आ गया है कि नीति का समय–समय जोर शोर से विज्ञापन किया पर समय आया ही नहीं वह तो चला गया। रघुवीर सहाय ने प्रधानमंत्री से मौका देखकर आखिरकार कहला दिया कि "समय जो गया है मेरे तलुए से छनकर पाताल में वह जानता हूँ मैं।

परिस्थितियों की मारक अनुभूति और उनका प्रभाव

व्यक्ति समाज व राष्ट्र परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। परिस्थितियाँ व्यक्ति को शैतान से भगवान तथा भगवान से शैतान बनाने में समर्थ हैं। संसार के लोग सुखों का स्वागत करते हैं। उनकी प्रतीक्षा में पलकें बिछाये रहते हैं। अनुकूल परिस्थितियों की वे कामना करते हैं। ऐसा करते समय वे भूल जाते हैं कि आपत्तियों और विपदाओं का भी अपना महत्व होता है। वे भी हमारे लिये आवश्यक होती हैं। जब भी कठिनाइयाँ और दुःख हमारे ऊपर जाते हैं। हमारी सहनशीलता और हमारी शक्ति की परख हो जाती है। स्वर्ण आग में तपकर खरा होता है। हमारा चरित्र भी विपत्तियों में पड़कर खरा होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम

राम को वन में अनेक विपत्तियाँ आयीं, किन्तु उनका शौर्य इन्हीं विपत्तियों में चमका। राजा हरिश्चन्द्र पर भी घोर विपत्तियाँ आती रहीं, किन्तु वे सत्य पर अटल रहे। पाँडवों ने भी विपत्तियों का ही स्वागत कर अत्ततोगत्वा विजयश्री का वरण किया। शिवाजी और महारानी लक्ष्मीबाई के संघर्षों और दुःखों की गाथायें भी पवित्र हैं। प्रेरणा की स्त्रोत हैं। दुखों के बिना सुखों का कोई महत्व नहीं। विपत्तियाँ वास्तव में हमारा पथप्रदर्शन करती हैं। हमारी सहायता करती हैं। अतः जीवन में विपत्ति रूपी परिस्थितियों की मारक अनुभूति अति आवश्यक है।

सर्वेश्वर जी तो जीवन पर्यन्त परिस्थितियों की मार सहते रहे। उनको हर परिस्थिति की मारक अनुभूति थी। लेखक का निजी जीवन अस्थिर रहा। उन्हें रोजी रोटी के लिये बार–बार पद परिवर्तन करना पड़ा। मध्यमवर्गी परिवार की स्थितियों–परिस्थितियों से सीधी टक्कर लेनी पड़ी। हर जुल्म, ज्यादती अत्याचार को उन्होंनें समाज में तथा अपने जीवन में निकट से घटते हुये देखा। आपकी संवेदनशीलता वाणी का स्वर पाकर प्रस्फुटित हुई। वे सच्चे अर्थों में जन लेखक थे। उन्होंने सत्य को अपनी आँखों से स्खलित होते हुये देखा। जिसने परिस्थितियों की मार खाई हो, वही शब्दों की खाई की भरपाई कर सकता है। लेखक की दृष्टि गिद्ध दृष्टि होनी चाहिये, अच्छी बुरी सत–असत वस्तु पर उसकी दृष्टि जाना चाहिये। फिर जो विवेक में आये उसे शब्दों का अमलीजामा पहना कर प्रगट करना चाहिये। यह सब सर्वेश्वर जी ने शुरू से शुरू किया और अन्त तक करते रहे। आपका लेखन परिस्थितियों की उपज है। सर्वेश्वर दयाल जी के शब्दों में रोशनी है, चमक है एक ऊर्जा है। ऐसी ऊर्जा जो तन को चीर कर शक्ति तथा रोशनी का अजस्व स्त्रोत बहाती हुई आशा की किरण प्रस्फुटित करती है।

लेखक परिस्थितियों की मार खाकर यह बात भली भाँति जान गया है कि भूखी बिल्ली की तरह गले में हाँड़ी फंसाकर छटपटाए तभी लोगों की दया प्राप्त हो सकती है। बिना छटपटाये यह दुनियाँ किसी को कुछ नहीं देती वह सिर्फ आँसूओं पर ही पिघल सकती है।

विपरीत परिस्थितियों में लेखक हतोत्साहित नहीं होता वह क्षणिक सुखों के बीच सदैव प्रसन्न रहता है। दुःखों को सहने में भी वह प्रसन्न रहता है। दुःख उसे चादर की तरह निर्मल लगता है। जिसे बिछाकर सोने में वह विश्वास रखता है। सर्वेश्वर जी मूलतः

मध्यवर्गीय चेतना के लेखक हैं। वे गांवों से जुड़े हैं। पर महानगर में जीने के लिये अभिशप्त हैं। शहरी भागदौड़, बाह्य आडम्बर तथा चमक–दमक आदि सब दूसरों को आकर्षित करने के साधन जुटाते रहते हैं। जैसे शहरों का अपना निजी आकर्षण समाप्त हो गया है। मिलावट चोरबाजारी कालाबाजारी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही हैं। यहाँ निरन्तर अमानवीय और पाश्विक छद्म और धूर्तता का घटना व्यापार चलता रहता है। सामाजिक चैतन्य की भूमिका पर लेखक जनजीवन की व्यथा, और समाज में निरन्तर बढ़ती कृत्रिम स्थितियों को भोगता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आज संसार में परिवर्तन अन्दर बाहर समान रूप से होना चाहिये। जब युग विकृतियों की ओर से चोट कर रहा हो और जब आन्तरिकता विनष्ट हो रही हो तो उसकी सुरक्षा के लिये संघर्ष जरूरी है। सर्वेश्वर जी ने हमेशा चाहा है कि अन्तर–बाह्य में एकाकारता हो पर हमेशा ऐसा हो नहीं पाया। कहीं आन्तरिक और बाह्य को मिलाने की कोशिश में दो संसार अलग–अलग रचते गये हैं। आन्तरिकता का दबाव और परिवेश का अपरिहार्य संघर्ष जब उन्हें चोट पहुँचाता है तो तनाव पैदा होता है। यह तनाव उस स्थिति में और बढ़ जाता है जब लेखक जटिल युग बोध के भीतर आन्तरिक जीवन मूल्यों की खोज करता है।

चुनौती और आकांक्षा के बीच, आत्मा में संगीत की तलाश को जारी रखते हुये कहानीकार सर्वेश्वर दयाल जी, सम्पूर्ण सृष्टि का सर्वेक्षण करते जान पड़ते हैं। जिजीविषा की उत्कट अभिलाषा रखते हुये भी वे इस जगत से अप्रसन्न ही रहे। उन्हें अपना हर हितैषी छल, फरेब का मंत्र जाप करता दीखता है। वे नकली चेहरों से सावधान हैं, उनका असली चेहरा इन नकली चेहरों से बेहद परेशान है। लेखक को अब स्पष्ट अनुभव हो गया है कि अगर हमें कुछ पाना है तो दुनिया की गति के साथ ही चलना होगा। क्योंकि रूकने से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। आज हर कार्य में शीघ्रता होनी चाहिए। ऐसे वातावरण में लेखक निरन्तर परिस्थितियों की मार सहते–सहते प्रतिकूल परिस्थितियों से सामना करने के लिये तैयार हो जाता है। साहस व संघर्ष के प्रति उसकी आस्था दृढ़ हो जांती है।

आज का विवेकशील मानव भले ही अलग–अलग संदर्भों में अलग–अलग तरह का दिखाई देता हो, किन्तु जागृत विवेक के क्षण उसे यह भी समझा जाते हैं, कि आत्मविश्वास के सहारे बड़ी से बड़ी खाइयों को पार किया जा सकता है। बड़े से बड़े पर्वतों

को भी चूर किया जा सकता है और संकल्पनिष्ठ होकर हर अंधेरे को उजाले में बदला जा सकता है। वैज्ञानिक बोध ने आज मनुष्य के मानस में जमी ईश्वरीय आस्था को निकाल फेंका है। धर्म के दीपक को बुझा दिया है और अन्धश्रद्धा को तर्कणा में बदल दिया है। इसी कारण मनुष्य की परोक्षजीवी वृत्तियाँ पराश्रित मनोभूतियाँ अपने ही अन्दर छिपे विश्वास को बाहर खींच लाई हैं। फलतः मनुष्य को अपनी शक्ति पर आत्मविश्वास हो गया है।

सर्वेश्वर जी की मानव निष्ठा संघर्षों के बाद विकसित हुयी है। उनमें जीवन के प्रति उद्दाम लालसा भी है। वे नये सिरे से बिना किसी सहारे के नयी यात्रायें प्रारम्भ करने में विश्वास रखते थे। सर्वेश्वर जी परिस्थितियों से जूझते रहे। समझौतों से भागते रहे। उन्होंने स्वयं कहा है "मैं जो कभी गरीबी के कारण जूता, कोट पहनने के सुख से वंचित था ......। मेरे बच्चे वह सुख नहीं झेलते जो मैंने झेले हैं।"[10] यह जीवनशैली ही इनकी जिन्दादिली का प्रमाण है। परिस्थितियों का प्रभाव उनकी हर पंक्ति से मुखरित जान पड़ता है। यही जीवन युग का अवसाद सर्वेश्वर दयाल जी का करुण विषाद बन गया। परिस्थितियों की मार उनसे टकराकर स्वयं मर गई और वे उसे सहलाते रहे, बहलाते रहे। यही कारण है कि विपरीत परिस्थितियाँ भी आपके लिये वरदान बनकर सर्वेश्वर के काव्य को निरापद कर गईं। सर्वेश्वर जी को समकालीन स्थिति, परिस्थिति तथा परिवेश की पूरी जानकारी थी। वे सही मायने में युग दृष्टा तथा युग वक्ता थे। इनकी पीड़ा, टीस, घुटन तथा वेदना लेखन के रूप में सर्वत्र बिखर गई।

जीवन की विसंगतियों की पीड़ा का अनुभव व सृजनशीलता में इसका स्थान

जीवन में विषमता, असफलता रूपी पतन की जननी है। जहाँ भी विषमता का जहर फैला अन्ततोगत्वा वही गर्त में जा गिरा। हमारे देश का इतिहास इस तत्व का साक्षी रहा है कि हमारी फूट ही हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता रही है। जिसके आधार पर विदेशी शक्तियों ने आक्रमण किया व हमें परतंत्र बनाया। प्राचीनकाल से ही जमींदारी प्रथा भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग रही है। ये जमींदार अपना जीवन ऐश्वर्य में बिताते थे। आज भी यह विषमता विद्यमान है। आज कहने को तो लोकतंत्रीय शासन प्रणाली है, लेकिन परोक्ष रूप में यहां आज भी शासन की बागडोर कुछ गिने–चुने लोगों के हाथ में है। कुछ चन्द लोग ही बड़े–बड़े उद्योगों, कारखानों के मालिक बने हुए हैं। भू–स्वामित्व भी गिने–चुने जमींदारों को सुलभ हैं, जबकि शेष भारत भूख की ज्वाला में धधक रहा है।

लेखक जब किसी यथार्थ को वास्तविक रूप में देखता है तो उसे न केवल देखता है वरन् भोगता और जीता भी है। वह यथार्थ का हिस्सा बन जाता है। इन्हीं यथार्थ विसंगतियों की गति को पकड़ने में सर्वेश्वर जी सदैव समर्थ रहे हैं। भूख, बेकारी, निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या, मनुष्य के आन्तरिक, बाह्य संघर्ष, उसकी इच्छाएं, शंकाएं, पीड़ा और उससे जन्मी अनेक निरीह स्थितियाँ, भ्रष्ट शासनतंत्र, राजनैतिक प्रपंच, सत्ताधीशों की मनमानी, स्वार्थपरता, अवसरवादिता, शोषकीय वृत्ति, अधिनायकवादी आदतें, मिथ्या–आवासन, उनके फलस्वरूप घटित हत्या–आत्महत्या लूट–खसोट आपाधापी, विवशता, परवशता, कृतिमता, विकृत मनोवृत्तियाँ, सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन, झूठा मान–सम्मान, ईमान बेचकर भी जिन्दा रहने की कोशिश और अनगिनत विसंगतियाँ सर्वेश्वर जी के लेखन में प्रकट हुई हैं जो लेखक को बैचेनी से भर गई हैं। विषमताओं के प्रति यह दृष्टि और जागरूकता यों तो सर्वेश्वर जी में प्रारम्भ से ही मिलती है किन्तु रचनात्मक स्तर पर इसकी अभिव्यंजना ''गर्म हवायें'' से प्रारम्भ होती है।

लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था से सर्वेश्वर जी संतुष्ट नहीं थे। वर्तमान परिवेश में एक ओर तो वे लोग हैं, जिनकी इमारतें आलीशान हैं, किन्तु दिलों का आकार छोटा है। दूसरी ओर वे मेहनतकश नर–नारी हैं जिनका घर भले ही छोटा हो किन्तु दिल बहुत बड़े हैं। आज स्वतंत्रता के पश्चात जो हमने पाया है उसमें एक ओर भूख है, खाली पेट पालते लोग हैं तो दूसरी ओर आकर्षक झाकियाँ, जिनसे ढोंग और विश्वासघात की बदबू आती है, क्योंकि जो नहीं है, उसे दिखाया जाता है, और जो है उसे छिपाया जाता है।

शोषण के इस दौर में एक वर्ग सुबह से शाम तक आँधी से भरे घर की धूल साफ करता रहता है। उनके दुबले हाथों की हड्डियों और नीली नसों पर भी एक चमक, हीरे की अंगूठी की तरह झिलमिलाती है। गरीबी व भूख से समाज का एक बड़ा भाग पीड़ित है। आज भूख व बेकारी, बेरोजगारी व भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है। प्रशासन के सुनहरे व खोखले वायदों ने शोषित वर्ग को पीड़ित कर दिया है। अपने परिवेश के प्रति पूरी तरह ईमानदार सर्वेश्वर जी शासकों की इस प्रवृत्ति को भी खूब पहचानते थे जिनके सहारे जनता का ध्यान कम रखा जाता है व ध्यान देने का प्रचार खूब किया जाता है। स्थिति की यह विषमता तब और बढ़ जाती है जब स्वतंत्र व निष्पक्ष व विवेकी अखबार भी वही लिखते हैं जो शासन चाहता है।

आज मूल्यों का विघटन तीव्र गति से हो रहा है, देश में अराजकता और लाचारी का क्षेत्र इतना विस्तृतं गया है कि कोई भी साहस व निर्भीकता के साथ कुछ भी नहीं कर सकता। सत्ताधारी पाशविक हो गये हैं, किन्तु उनका स्वर बन्धुत्व व करुणा का नहीं है। वे शोषक होकर भी पोषक बने रहने का छल करते हैं। ऐसे परिवेश में जीवित व्यक्ति न तो गुस्सा कर सकता है, न घृणा, क्योंकि आततायी मजबूत और तेज सलाखों वाले पिंजड़े रूपी भवन में बैठा है। सामाजिक विसंगतियों की भयावहता और दमघोंट स्थितियों में मनुष्य का अपना ही चेहरा दिखाई नहीं देता। उसे अपनी ही चीज गैर की मालूम होती है। सर्वेश्वर जी वर्तमान के उस क्षण पर खड़े हैं जहाँ वे सारे समाज की तस्वीर को स्पष्ट देखते हैं और वर्तमान विसंगतियों व तनावों को महसूस करते हैं। जीवन की ये सारी विसंगतियों व दुःखदायी स्थितियाँ सर्वेश्वर जी के कथा लेखन में स्पष्टतः नजर आती हैं।

(ग) व्यंग्य

रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार हैं आपके संग्रह व्यंग्य से परिपूर्ण हैं। जिसमें रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी अधिकतर कहानियों में देश में व्याप्त असमानता, असंतोष, भ्रष्टाचार को व्यंग्मय शैली में चित्रण किया है। एक उदाहरण देखने योग्य है :–

"लखनऊ में गोमती के तट पर एक शहीद स्मारक है। .... उसके प्रवेशद्वार पर एक पत्थर लगा है जिस पर स्वतंत्रता और स्मृति इन दोनों शब्दों को गलत लिखा गया है। .... यह भारतवर्ष में ही हो सकता है .... दुनिया के और किसी देश में ऐसी अशुद्धि एक दिन भी बरदाश्त नहीं की जा सकती थी ....। लेकिन आपका सहनशील देश है। यहाँ सब कुछ सह लिया जाता है – बड़े से बड़ा अपमान भी। फिर यह तो अशुद्धि ही हैं।"[11] रघुवीर सहाय ने अपनी राजनीति की कहानियों में व्यंग्य के माध्यम से समाज एवं सरकार पर करारा प्रहार किया हैं।

खाद्य मंत्री ने कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी के सामने फिर स्पष्ट किया कि पी. एल. 480 के गेहूँ में कोई मिलावट (राजनीति की) नहीं है। अगर होगी तो भारत कभी वैसा गेहूँ न स्वीकार करेगा। कम्युनिस्ट जो माँग करते हैं कि यह मँगाना फौरन बन्द कर दिया जाये वह इसलिये कि वह देश में उथल–पुथल और उपद्रोह पैदा करा चाहता है। उनकी बातों पर कांग्रेस सदस्य कान न दें।"[12]

सर्वेश्वर जी की भाषा व्यंग्य से युक्त है। प्रभावी व्यंग्य वह होता है जो आलंबन को खबरदार करते हुए सही स्थिति का ज्ञान करा सके। ड्राइडन ने लिखा है कि – ''किसी व्यक्ति के निर्ममता से टुकड़े–टुकड़े कर देने में तथा व्यक्ति के सर को सफाई से धड़ से अलग करके लटका देने में बहुत अंतर है। एक सफल व्यंग्यकार अप्रस्तुत एवं प्रच्छन्न विधान की शैली में अपने भावों को व्यक्त कर देता है। वह अपने क्रोध की अभिव्यक्ति आलंकारिक एवं सांकेतिक भाषा में करता है ताकि पाठक अपना स्वतंत्र निष्कर्ष निकाल सके। व्यंग्यकार अपने व्यक्तित्व को व्यंग्य से अलग कर देता है ताकि व्यंग्य कल्पना के सहारे अपने स्वतंत्र रूप में कला और साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश कर सके।''[13]

वस्तुतः सर्वेश्वर जी ने जनभाषा के तहत भाषा की अनेक छिपी शक्तियों को उजागर किया है।

सर्वेश्वर जी की भाषा नयी कहानी की भाषा है। उसमें न केवल जीवन और अनुभव का खुलापन है; अपितु वह आदमी के दर्द व उसकी मामूलीयत में छिपी असाधारणता को उजागर करने वाली सही सार्थक भाषा है। सही अर्थों में उनकी भाषा अपनी तमाम सरलता के बावजूद अनुभवों से उपजी भाषा है। उसमें न तो गलत बयानी के लिए कोई गुंजाइश है और न अभिजात्य के प्रति मोह है।

''एक गलत भाषा में, गलत बयान देने से
मर जाना बेहतर है, यही हमारी टेक है ....
आभिजात्य तोड़ता है, जो मरे शब्द आता है जुबान पर
कहने में नहीं डरता हूँ।''[14]

अपनी इसी मान्यता के कारण सर्वेश्वर जी ने राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश व उससे उत्पन्न संकट तक की भाषा के बोलचाल वाले रूप में व्यक्त किया है। कुल मिलाकर सर्वेश्वर ने भाषा को सत्य के रूप में पाया है, एक आस्था के रूप में इस्तेमाल किया है, एक अनिवार्य और अनुकूल स्थिति के रूप में व्यक्त किया है। सर्वेश्वर जी ने अनुभूत को वही भाषा में कहा है और पिरोया है जिस बोली में वह सीधी–सरल आसानी से समझ में आ जाती है। संप्रेषण की सहजता सर्वेश्वर जी की कहानी का मुख्य गुण रहा है। उनकी कलात्मक साधना सभी जगह साफ–साफ निखरी है। सर्वेश्वर जी की

व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति पर डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी ने भी कहा है – "ये समर्थ व्यंग्य लेखक हैं। इनके व्यंग्य में आक्रोश का आधिक्य है। आज के मानव में कृत्रिमता की मात्रा अधिक है। उनका व्यवहार निश्छल नहीं रहा, वह अन्दर से आपको काटता रहेगा। किन्तु ऊपर से चिकनी चुपड़ी बातें करता रहेगा। आधुनिक मानव के इस दोमुहेपन पर सक्सेना जी ने व्यंग्य किया है।"(15) इसी तरह डॉ. कान्ति कुमार ने इनके व्यंग्य के सम्बन्ध में कहा है – "सर्वेश्वर प्रजातंत्र के सामान्य व्यक्ति हैं सामान्य जीवन की चिन्ताओं के लेखक हैं। ये चिन्ताएँ लेखक को कातर नहीं बनाती, अपितु उसे व्यंग्य करने के लिए बाध्य करती हैं। उनके व्यंग्य का आधार शुद्ध मानवीय है।"(16)

डॉ. सत्येन्द्र कुमार सिंह ने सर्वेश्वर जी के व्यंग्य की शैली पर कहा है कि – "सर्वेश्वर जी का व्यंग्य अत्यंत पैना है और चुभन पैदा करने वाला है। इनके व्यंग्य में व्यक्ति के स्वभाव से लेकर विश्व की बड़ी समस्याएँ भी हैं।"(17)

(घ) परिवेश चित्रण

साहित्य एक ऐसा दर्पण है जिसमें न केवल मनुष्य की अन्तर्रात्मा उभरती है अपितु उसके आस–पास के बिम्ब भी प्रतिविम्बित हो उठते हैं। रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से वही वस्तु, भाव, चित्र उपस्थित करता है जो उसके मस्तिष्क पर किसी न किसी रूप में छाए रहते हैं, यह विषय वस्तु हर रचनाकार के साथ सत्य बनकर जुड़ जाती है फिर भला सर्वेश्वर दयाल जी जैसे स्वच्छन्द लेखक इस सत्य से कैसे भटक सकते हैं। प्रत्येक सृजन किसी न किसी घटना का परिणाम होता है "रचनाकार को हर स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है उसे निरंतर आत्मशोधन भी करते रहना पड़ता है और व्यवस्था पर प्रहार भी अपने आंतरिक और बाहय दोनों दबावों से जूझते हुए अपनी वैयक्तिकता और सामाजिकता को भाषा में ढालते जाना ही रचनाकार का रचना संघ कहलाता है।"(18) साहित्यकार की सही पहचान वहाँ होती है जहाँ वह अपने परिवेश चित्रण की सारी सामाजिक विषमताओं, रूढ़ियों और धर्माडम्बरों पर करारी चोट करता है और अपनी पूरी अस्मिता के साथ सिर ऊँचा किए खड़ा रहता है।

रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कहानियों में अपने परिवेश के प्रति सृजन अनेक कारणों का प्रतिफल है। सर्वेश्वर जी का साहित्य आज की संक्रमण

परिस्थितियों की उपज है। आपका साहित्य एक लाचारी है, यदि यह लाचारी न होती तो वे साहित्यकार के बजाय कुछ और ही होते। सर्वेश्वर जी ने स्वयं लिखा है – "आज की परिस्थिति में साहित्य से अधिक सुखकर और प्रीतिकर कई काम हो सकते हैं और मैं साहित्य न लिखता यदि हिन्दी के आज के प्रतिष्ठित साहित्यकारों में एक भी ऐसा होता जिसके साहित्य में लेखक का एक व्यापक जीवन दर्शन मिलता यदि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारे अधिकतर साहित्यकारों ने बजीफे खाने, कुर्सियों के लिये गोट बैठाने और पदों के लिए साहित्यकार का सम्मान बेचने का धंधा न अपनाया होता ....। यदि अधिकतर प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने नकली जीवन छोड़कर साहित्यकार का अनुभवप्रणव, लोक जीवन अपनाया होता, अपनी शक्ति का प्रयोग ऐसा विराट साहित्य लिखने में किया होता जिसे हम गौरवपूर्वक विश्व के सम्मुख रख सकते।"[19] वहीं दूसरी ओर रघुवीर सहाय ने वर्तमान व्यवस्था में रह रहे लोगों के प्रति शासन तंत्र को नंगा करते हुये जनता के लिये न्याय दिलाने के लिये संघर्ष करते हुये जनता की भागीदारी की वकालत की हैं। इसके साथ ही रघुवीर सहाय ने अपने समय की भ्रष्ट राजनीति पाखण्ड, स्वार्थ, छल–कपट, प्रपंच एवं लूटमार को अपनी कहानियों में बहुत ही ईमानदारी के साथ चित्रण किया है।

सर्वेश्वर जी का साहित्य असह्य पीड़ा की उपज है। आज की तथाकथित सभ्यता के बनेलेपन में आदमी की अमानवीयता उसे बार–बार सोचने को विवश करती है। यहाँ तक कि वह आदमी की बात ही करना नहीं चाहता। संतोष जैसी सद्प्रवृत्ति आज कल्पना मात्र है। सभी जगह असन्तोष, ईर्ष्या, ... का बोलबाला है। "सर्वेश्वर जी के साहित्य में राजनीतिक पाखण्ड, भ्रष्ट व्यवस्था और आज की विसंगतियों का चित्रण तो मिलेगा पर उसमें किसी प्रकार का राजनीतिक मतवाद नहीं है। वस्तुतः सर्वेश्वर जी के साहित्य में सामाजिक–राजनीतिक चेतना तो है पर वह किसी दल विशेष के साथ प्रतिबद्ध नहीं हैं।"[20]

सर्वेश्वर जी किसी पार्टी के सदस्य नहीं थे न वैसा होना उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है और न वे किसी संगठन के चश्में से राजनीतिक और सामाजिक संघर्ष को देखते हैं। उनकी अपनी राह है, अपना ढंग है और प्रत्येक संघर्ष को देखने और उसकी अभिव्यक्ति देने का अपना शिल्प है। ऐसे स्वतन्त्रचेता लेखक को किसी से जोड़कर देखना ठीक नहीं है। इतने पर भी यह सच है कि वे जन साहित्य के सर्जक हैं। उनका साहित्य जीवन से सीधा

साक्षात्कार करके लिखा गया वह साहित्य है जिसमें आम आदमी की जिन्दगी के बाहरी और भीतरी पहलू तथा मानसिक और शारीरिक संदर्भ सभी अनुस्यूत हैं।

यदि सर्वेश्वर जी जीवन से इतनी गहराई से न जुड़े होते तो उसे भोगकर बेचैनी अनुभव करते हुए यह कैसे लिख पाते हैं कि – "शब्द जिन्हें मैं बुनता हूँ, मर चुके हैं, सम्बन्ध जिन्हें मैं जीता हूँ मर चुके हैं।"[21] इनकी पीड़ा भले ही निजी भाव भूमि पर पल्लवित न हुई हो, फिर भी जब घर में लाश पड़ी हो तब ऐसा ह्दयहीन कौन होगा जो चैन की नींद सो सकेगा ? ठीक यही हाल सर्वेश्वर जी का है। उनका सुख, चैन आनन्द–अवसाद, समष्टि के आनन्द–अवसाद के साथ सन्निहित है।

वास्तव में लेखक के अंतःह्रदय में करूणा प्रेम और मानवीयता के भाव भरे पड़े हैं और वह इन्हें ही जीवन् के लिए अपरिहार्य मानता है किन्तु बाहर की दुनिया इसके विपरीत है। आपकी यह कोशिश मात्र कोशिश ही रह जाती है क्योंकि वह तमाम समझदारों की इस दुनिया में अकेला ही ऐसा है, जो इस जमीन पर खड़ा है। उसे बाहर जो दुनिया दिखाई देती है वह मुखौटा लगाये लोगों की दुनिया है, रिक्त और खोखली दुनिया है और है आधुनिक सभ्यता के अमानवीय प्रहरियों की दुनिया, जहाँ कदम–कदम पर आंतरिक मूल्यों को दबा दिया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में मलयज ने कहा है – "सर्वेश्वर की खोज इस जटिल युगबोध के भीतर ही सहज जीवन रूपों की खोज है। उनकी सर्जनात्मक कल्पना उस जटिलता को अपने आन्तरिक सहज राग बोध की उन्मुक्त पावन तरलता में घुलाकर रिक्त शेष नहीं करना चाहती, वरन् उस जटिलता के परिप्रेक्ष्य में ही सहजता की मूल्यवत्ता सिद्ध करना चाहती है।"[22] डॉ. गुरचरण ने सर्वेश्वर जी के सम्बन्ध में कहा है – "लेखक न खुद से काटकर समाज को देखता है, न समाज से काटकर खुद को, इस तरह वह समग्रता में जीता और रचता है।"[23] इसी सम्बन्ध में डॉ. सुखवीर सिंह ने भी कहा है – "लेखक ने जहाँ नेतृत्व की स्वार्थपरता पर तीखे प्रहार किये हैं, वहीं साधारण जनता के दयनीय जीवन के मार्मिक चित्र भी खींचे हैं।"[24] सर्वेश्वर जी का साहित्य कटु यथार्थ का साहित्य है। आपका साहित्य आज की दुनिया की भूख, प्यास, पीड़ा, छटपटाहट, विवशता और मृत्यु की मर्मस्पर्शी और प्राणवान अभिव्यक्ति है। क्योंकि यह साहित्य हर अंधेरे से जूझने की प्रेरणा मानव को देता है।

(ङ) साम्य-वैषम्य

आलोच्य कहानीकारों रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में चित्रित राजनैतिक यथार्थ एवं परिवेश में काफी समानता दिखाई देती है। आपकी कहानियों में राजनैतिक भ्रष्टाचार, विदेश नीति, राष्ट्र नीति, युद्ध नीति और गुटवंथियों में कैद राजनीति का वर्णन किया गया हैं दोनों कथाकारों की कहानियों में राजनैतिक हस्तक्षेप के बावजूद सामाजिकता का उद्देश्य लेकर ऐसी कहानियों का सृजन किया गया है। जो जनमानस में जागरूकता पैदा करती है। जहाँ एक ओर रघुवीर सहाय की राजनैतिक कहानियाँ न्याय और समता के आदर्शों को स्थापित कर जनतांत्रिक संवेदना तथा वैयक्तिक आचरण और रचना में उस करूणा या सहानुभूति के प्रति आशंकित है। वहीं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की राजनीतिक कहानियों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं असंतुष्टि तीव्र गति से दिखती है। आप वर्तमान राजनीति के पतन से असंतुष्ट है। आपका मानना है कि वर्तमान में राजनीति का अर्थ बदल गया है और इसके नये जीवन मूल्य एवं आदर्शों की आज शिद्दत के साथ आवश्यकता है जिससे देश का नागरिक आज की राजनीति को समझ एवं जान सके।

रघुवीर सहाय की कहानियों में जहाँ राजनीति के प्रति केवल सुझात्मक बातें की गई है वहीं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में राजनीति के इस गोरख धन्धे को समाप्त करने की विशेष अपील भी देखने को मिलती है।

□□□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 107
2. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 128
3. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 89
4. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 89
5. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 126
6. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 88–89
7. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 111–112
8. चरखे और चरखे – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 25
9. साहित्य का परिवेश – अज्ञेय – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 85
10. साहित्य का परिवेश – (अज्ञेय) (मेरी कविता और मेरा परिवेश) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 86
11. चरखे और चरखे – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 28
12. रघुवीर सहाय रचनावली–4, पृ. 34
13. आधुनिक हिन्दी कविता में व्यंग्य – डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, पृ. 21
14. गर्म हवाएँ – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 11
15. आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य – डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, पृ. 122
16. नयी कविता – डॉ. कान्ति कुमार, पृ. 109
17. हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवि – डॉ. सत्येन्द्र कुमार सिंह, पृ. 186
18. नये साहित्य का तर्कशास्त्र – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ. 51
19. तीसरा सप्तक – अज्ञेय – (सर्वेश्वर का वक्तव्य) पृष्ठ 209
20. समकालीन हिन्दी कविता – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ. 154
21. नई दुनिया – दैनिक समाचार पत्र – 2 अक्टूबर, 1983
22. कविता से साक्षात्कार – मलयज, पृ. 52
23. समकालीन कविता का मूल्यांकन – डॉ. गुरचरण, पृ. 47
24. हिन्दी कविता की समकालीन चेतना – डॉ. सुखवीर सिंह, पृ. 110

❑❑❑

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय

आलोच्य कहानियों में चित्रित सामाजिक मूल्य तथा परिवेश चित्रण

(क) पारिवारिक सम्बन्ध स्वरूप एवं विकृति

परिवार सामाजिक सम्बन्धों का एक जटिल जाल होता है। इसमें व्यक्ति अपने जीवन की विकास अवस्था में आगे बढ़ता हुआ पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों के ताने–बाने को बुनता हुआ कई वर्गों में विभाजित होकर अपना जीवन व्यतीत करता है। विभिन्न वर्गों में रहकर व्यक्ति एक–दूसरे से सम्बन्धों को नये आयाम देकर अपने स्वरूप एवं विकृतियों को आगे बढ़ाता रहता है। यही नहीं एक विशेष वर्ग द्वारा परिवार–नियोजन का प्रचार साम्प्रदायिकता को भड़काता है जिसमें हिन्दु घट रहे हैं, मुसलमान बढ़ रहे हैं। सरकार तथा जागरूक नागरिक भी इस प्रचार पर चुप्पी साधे रहते हैं। ऐसे चर्चे एक वर्ग में साम्प्रदायिकता का जहर फैलाकर चले जाते हैं। यह जहर फैलता रहता है और कभी–कभी हिंसात्मक रूप धारण कर लेता है। जिसका फायदा अक्सर घटिया राजनीति उठाती है। आज आवश्यकता सिर्फ हिन्दू के जागने की नहीं है, बल्कि देश के सभी नागरिकों को जागना होगा, परिवार नियोजन को समझना होगा – भारतीय जागेगा तो भारत बचेगा। भारतीय में हिन्दू भी शामिल है सभी जागें। यानी सभी मिलकर देश के हित–अहित को पहचानें अर्थात् परिवार नियोजन के महत्व को समझें। आलोच्य कहानियों में चित्रित सामाजिक मूल्य तथा परिवेश चित्रण को रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रघुवीर सहाय जी की कई कहानियों को पढ़कर रचना के स्तर पर यथार्थ और यथास्थिति का अन्तर खुलता है। क्या अन्ततः साहित्य का काम जीवन को बनाते हुए जीवन का सौन्दर्य बढ़ाना नहीं है ? यह सौन्दर्य को एक सीमित अर्थ में न लेकर एक व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए जो जीवन के प्रति एक तरह की आस्था और विश्वास जाग्रत करता है। जिसमें जीवन को बदलने का संकल्प निहित है। रघुवीर सहाय जी की कहानियों में जीवन के प्रति एक अहोभाव दिखाई पड़ता है, जो संघर्ष के लिए शक्ति देता है।

'सेब' कहानी में भी कहानीकार गैरबराबरी पर टिके समाज की विद्रूपताओं को बीमार गरीब, मैले कुचैले कपड़ों वाली लड़की की गोद में पड़े चमकदार, लाल सेब को देखकर ठिठक जाने के माध्यम से चित्रित करता हुआ वह कुछ खोज निकालता है, जो बचाये रखने योग्य है। एक बाप और उसकी बेटी का मानवीय सम्बन्ध जो किसी की करूणा का मोहताज नहीं, यही उस सम्बन्ध का खुलना है जो सेब कहानी को हिन्दी की एक महान कहानी बनाता है।

प्रस्तुत कहानी की संक्षिप्त कथावस्तु यह है कि लेखक स्वयं घूमते टहलते सड़क किनारे पर अचानक एक टूटे हुए परैम्बुलेटर में एक गरीब लड़की को देखता है उसके कपड़े मैले फटे हुए है। बाल बिखरे हुए है, तथा उसके हाथ में एक लाल रंग का सेब है जिसे वो बड़े संभाल कर रखे है। उसका पिता पास ही में कुछ खोज रहा है। पूंछने पर पता लगता है कि उनकी गाड़ी की ढिबरी कहीं गिर गयी है जो बहुत खोजने पर भी नहीं मिली। उसकी लड़की के पिता बताते हैं कि ये छोटी लड़की बहुत बीमार है इसको मोतीझरा हो गया था। बहुत सुईंया लगी हैं पर ठीक नहीं होती, वो लड़की सेब खाना चाहती है पर उसका पिता मना कर देता है। पूरी कहानी उस सेब पर आधारित है लेखक ने मानवीय संवेदना का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है—मैंने सोचा संसार में कितना कष्ट है और मैं कर ही क्या सकता हूँ सिवाय संवेदना देने के। इस गरीब की यह लड़की बीमार है, ऊपर से कुछ पैसे जो अस्पताल की फीस में बचाकर ला रहा होगा, उन्हीं से घर का काम चलेगा, यहाँ गिर गए किसी गाड़ी से टक्कर खा गया होगा। वह तो कहिए कोई चोट नहीं आई वरना बीमार लड़की लावारिस यहाँ पड़ी रहती कोई पूछने भी न आता कि क्या हुआ। मैंने सचमुच उसके बाप को वहीं से आवाज दी क्या ढूँढ रहे हो ? क्या खो गया है'' ?[1] एक और उदाहरण देखिये बीमार लड़की धैर्य से अपने सेबों को पकड़ रही। उसने खाने के लिए जिद नहीं की। चमकती हुई काली सफेद चूड़ियों से उसकी कलाइयाँ खूब ढँकी हुई थी। मुट्ठी में वह लाल चिकना छोटा सा सेब था जो उसे बीमार होने के कारण नसीब हो गया था और इस वक्त उसके निढ़ाल शरीर पर खूब खिल रहा था।''[2]

बस यहीं कहानी समाप्त हो जाती है। पूरी कहानी में लेखक बाप—बेटी के मानवीय सम्बन्ध को चित्रित करता है। जो किसी भी करूणा का मोहताज नहीं, यही बताना रघुवीर सहाय जी का उद्देश्य है।

आधी रात का तारा

प्रस्तुत कहानी रघुवीर सहाय जी की प्रथम कहानी है जो दो तीन शीर्षक से अलग–अलग संशोधित रूप में छपी और यही कहानी टूटता तारा शीर्षक से रेडियो रूपक के रूप में प्रसारित हुई है। प्रस्तुत कहानी के अंतर्गत रोमानी ताने–बाने में सामाजिक असमानता पर गहरी चोट की गई है। कहानी के शिल्प में नयापन है। परंपरित ढंग से कथानक आदि का सुनियोजित निर्वाह की कमी है। पर रोमानीपन के बावजूद कथाकार को सामाजिक विसंगतियों का गहरा अहसास है। कहानी का प्रारंभ रोमानीपन के साथ आकाश के सौन्दर्य वर्णन से होता जैसे – "आकाश नील से धोए भीगे वसन की भाँति स्वच्छ है। साड़ी में टँके सितारे की तरह तारे जगमगा रहे हैं। उनमें न कोई क्रम है, न कोई शैली। उच्छृंखलता में भी कितना सौन्दर्य है।"[3]

ये कहानी प्रतीकात्मक है एक तरफ आसमान एवं तारों को ऐश्वर्य का प्रतीक माना है, दूसरी तरफ एक गरीब परिवार को अंधकार का प्रतीक माना है। "एक तरफ ऐश्वर्य भोग विलास में डूबा पूंजीपति वर्ग है – जैसे नगर एक शहर की रात है। ऐश्वर्य अँगड़ाई ले रहा है। अंधकार की आड़ में उत्सव ने अपने आपको बड़े पक्षपात के साथ वितरित कर रखा है। कोठे पर नवीना के तरल कण्ठ की खिलखिलाहट के साथ वीणा का संगीत और वारूणी का छलछल मिलकर कर रहा है यही मैं हूँ मैं – उत्सव का देवता। इसी मंदिर में मेरा निवास है।"[4]

वहीं दूसरी तरफ घोर गरीबी का चित्रण – शहर की रात है। गलीज से भरी सड़क की सतह के नीचे, एक तहखाने की सीलन के बीच, एक घर है। लुढ़कती हुई हँड़िया, बुझा हुआ चूल्हा और रोता हुआ बच्चा का एक साथ मिलकर कुछ कहना चाह रहे हैं किन्तु उन्हें जो कुछ कहना है उसी की असीम वेदना से उनका कंठ रूद्ध हो गया है। कोठे तक उनका स्वर नहीं पहुँच पाता।"[5]

कहानी में जहाँ रात के अंधकार और टिमटिमाते तारे की बात है वहीं घोर गरीबी में जीवन यापन कर रहे एक परिवार की कथा है जिसमें एक भूखा बच्चा है, बच्चे की कमजोर माँ, जिसने तीन दिन से कुछ खाया पीया नहीं है बच्चे का बाप रुपये लेने गया है। आधी रात को नित्य वह रुपये की खोज में जाता था। जेल से छूटने पर घर आकर उसने देखा जमा

की हुई सम्पत्ति का एक–एक करके खत्म हो गयी है और अब केवल उसकी प्यारी पत्नी और दुलारा बच्चा शेष होने को रह गए हैं। उसने जेब में छेनी और बटमा डाला और चल पड़ा। रात गहरी है। निश्चय ही वह शीघ्र लौटेगा और उसके परिवार का भरण पोषण होगा किन्तु आज रात उसको कुछ नहीं मिला बड़ी मनहूस रात थी वह। कोठरी में घुसकर एक बार उसने अपने बीमार भूखे बच्चे को देखा और अपनी पत्नी से बोला कि लगता है अपनी किस्मत का तारा टूट गया है। उसी समय आसमान से एक तारा टूट जाता है। कहानी अपने आप में सार्थक और उद्देश्यपूर्ण है।

गुब्बारे

गुब्बारे कहानी अपने रूप और अंर्तवस्तु दोनों ही मुकामोंः पर गहरी संवेदनात्मक बुनावट का चित्रण करती है। कहानी में एक गुब्बारे वाले गरीब लड़के की विडंबना चित्रित है। रामू नाम का एक लड़का रंगीन गुब्बारे बेंचता है, और अपना जीवन यापन करता है। जिस जगह वो खड़ा रहता है गुब्बारे लेकर, वहीं पास में एक कार आकर रूकती है, जिसमें एक अमीर पति–पत्नी और उनकी एक छोटी बच्ची भी सवार है। बच्ची कभी गुब्बारे तो कभी चप्पलों के लिए मचलती है, उसको खुश करने के लिए लालीपाप देते हैं पर अन्त में वो गुब्बारे की डोरी उसको पकड़ा दी जाती है जो क्षण भर में उसके हाथों में छूट जाती है। गुब्बारे वाला लड़का मायूस होकर आसमान तकता रहता है जैसे "उसी की गलती में ये सब हो गया हो। कहानी में मानवीय संवेदना का अनकहा दर्द उकेरा गया है जैसे – तारकोल की सख्त और काली सड़क इस तरह ठण्डी थी जैसे एक मुर्दा देह"। कुछ ऐसा जान पड़ता था कि जैसे किसी दैत्य को सांप ने डस लिया हो और वह निर्जीव होकर हाथ पांव पसारे पड़ा हो। कम से कम उसके छोटे–छोटे नंगे तलवों को तो वह ऐसी ही लग रही थी। इस छोटे लड़के का नाम रामू था। उसका नामकरण करने के पीछे एक असहाय और लाचार दर्द छिपा था। ठीक वैसा ही, जिसके कारण हमें भगवान को नाम लेकर पुकारने की आवश्यकता पड़ती है।"[6]

इससे स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय जी ने एक तरफ गरीबी के असहनीय दर्द को प्रस्तुत करने में सफलता पाई है वहीं बाल सुलभ मनोवृत्ति का चित्रण करके बाल मनोविज्ञान की सहजता का वर्णन भी किया है – रामू को स्वयं यह हवा में उड़ने वाले गुब्बारे

बहुत पसंद थे। हालाँकि उसके हाथ में रोज बीस–पच्चीस गुब्बारे रहते थे, किन्तु वह एक ऐसे गुब्बारे के लिए तरसा करता था जो उसका बिल्कुल अपना हो। वह चाहता था कि एक बड़ा सा बैंजनी गुब्बारा उसका बिलकुल अपना हो और वह उसके साथ ज़ी भर खेलकर एक बार उसे अपनी चुटकियों में पकड़कर छोड़ दे।"(7)

एक छोटी सी यात्रा

रघुवीर सहाय जी की कहानी एक छोटी सी यात्रा में कहानीकार अपनी बस यात्रा के दौरान शाम का अखबार बेचने वाले दो लड़कों से अखबार खरीदने के लिए छोटे लड़के का चुनाव करता है क्योंकि उसकी सहानुभूति कमजोर होने के कारण छोटे के प्रति होती है – छोटे लड़के ने छूटकर पंजों के बल खड़े होकर किसी तरह अखबार खिड़की तक पहुँचा दिया। शाबास मुस्कुराकर मैंने ले लिया। उसकी ओर प्यार से मैंने देखा उसकी हिम्मत बढ़ाने के लिए। लड़का खूब बहादुर है। वह स्वीकृति में मुस्कुराया नहीं न उसने गर्व से सीना ताना, घबराकर बोला, बाबूजी जल्दी दे दीजिए, नहीं तो बस चल देगी।"(8)

इससे स्पष्ट होता है कि बस छूटने वाली होने पर बाकी के दो पैसों के बारे में सोचता है कि कोई हर्ज नहीं जो यह पैसे न दे और बस चल दे। अपनी इस उदारता और उपकार के सुख पर वह आत्मविभोर हो उठता है "लड़के को देखा उसकी नाक फूलती जा रही थी और आँखे मींच–मींचकर वह जेब में बार–बार हाथ घुसेड़ता था। मैंने उसकी परेशानी को फिर पसंद किया और सोचा–कितना सुपात्र है वह मेरी इस उदारता के लिए"।(9)

किन्तु मेरे भ्रम को बड़ा लड़का उस समय तोड़ देता है जब वह बचे हुए दो पैसे लौटा देता है। रघुवीर सहाय जी कहते हैं कि – "सहसा निस्तेज होकर मैंने उसके अन्दर हाथ से एक थैला सा अधन्ना ले लिया। मेरे अन्दर कुछ वापस आने लगा। एक क्षण मैंने विरोध किया पर फिर आने दिया। वह शान्तिदायक था मैने लम्बी सांस ली और धन्यवाद दिया कि मैं बच गया।"(10)

इससे स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय जी उस सस्ती और आसान करूणा से बचने पर राहत महसूस करते हैं जो दूसरे के अद्वितीय होने के अधिकार को छीन लेती है। यह करूणा बिल्कुल निरर्थक है, क्योंकि यह जिसके प्रति होती है, उसे वह कोई शक्ति नहीं देता।

गैरबराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को खत्म तो कर ही दिया है, साथ ही अपने को नीचा और हेय मानकर बिना प्रतिवाद के अपनी स्थिति को स्वीकार कर जीने वाला, जो आदमी बनाया है, उसे उनकी कहानियाँ किले में औरत तथा रास्ता इधर से है हमारे सामने ला खड़ा करती है।

किले में औरत

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार एक किलेनुमा आलीशान होटल में अपनी नौकरी के काम के सिलसिले में आकर ठहरता है। होटल के दरबान के अदब से सलाम करने पर रघुवीर सहाय जी कहते हैं कि – उसे यह शक नहीं था कि शायद मैं बहुत अमीर हूँ। उसे विश्वास था कि मैं उससे कुछ अधिक पैसे वाला हूँ और बस इतना भी अधिक होऊ तो काफी है कि उसे कुछ इनाम दे सकूं। गरीबी और गिरावट का एक दिन होता है जब आदमी अपने से जरा से मजबूत आदमी से डरने लगता है। इसी को लोग कर्तव्य और सन्तुलन कहते हैं। वह दिन उसकी जिंदगी में आ चुका था।''[11]

रघुवीर सहाय जी उस दरबार में छिपे भिखमंगे को पहचान लेतें हैं, जिसे व्यवस्था ने आदमियत से गिराकर वरदी से ढक रखा है। लेखक की पैनी दृष्टि उस यथार्थ को देख सकती है जिसने आदमी को इस स्तर पर पहुँचाया है कि वह अपने स्वत्व को बेंचकर जीने पर मजबूर हो और ऐसा करने पर उसे अपना अपमान महसूस होना भी बन्द हो जाए। यही व्यवस्था की सबसे बड़ी मार है। यह एक औरत को इतना नंगा होने पर मजबूर कर देती है कि उसका कोई शहर या गांव ही न बचे। होटल में रोज शाम के समय कैबरा डांस होता है। शहर के सभी वर्गों के लोग यहां महफिल जमाते है। एक औरत डांस करते–करते सभी का मन बहलाती है। और अन्त में भाग जाती है। जैसे – ''अगले दस मिनट में औरत ने एक–एक करके सब कपड़े उतारे। अंतिम कपड़ा एक लँगोट–उतारने के साथ लाल–पीली रोशनियाँ बुझ गई। धुंधले उजास में वह नंगी खड़ी थी। वह कहाँ की रहने वाली है, मैंने पूछा, गोंडा, बस्ती बेगूसराय, बहराइच, आरा, छपरा, राँची ? असंभव था जानना। वह इतनी नंगी थी। एक दुशाला ओढ़कर वह भाग गई। शर्म दिखाने का उसका काम कायदे से तो सही था मगर उसकी उम्र ज्यादा दिखी, शर्म कम। मैंने नतीजा निकाला कि जब भी कोई तेजी से जाता है उसकी सही उम्र छिपाए नहीं छिपती चाहे व साइकिल चलाए चाहे दौड़े।''[12]

रघुवीर सहाय जी की पैनी दृष्टि उस यथार्थ को देख सकती जिसने आदमी को इस स्तर पर पहुँचाया है कि वह अपने स्वत्व को बेंचकर जीने पर मजबूर हो और ऐसा करने पर उसे अपना अपमान महसूस होना भी बन्द हो जाए। यहीं व्यवस्था की सबसे बड़ी मार है। यह एक औरत को इतना नंगा होने पर मजबूर कर देती है कि उसका कोई शहर या गांव ही न बचे। इस कहानी में सबसे अधिक मार्मिक प्रश्न कहानीकार के मन में होटल के कपड़े उतारकर नाचने वाली औरत को देख पैदा होता है।

रास्ता इधर से है।

इस कहानी में रघुवीर सहाय जी ने आदमी को दब्बू और प्रश्नहीन बनाने वाली इस व्यवस्था को और बारीकी से पकड़ा है। व्यवस्था में व्याप्त असमानता को सामने लाने के लिए इन्होंने अपनी आदत के मुताबिक स्थिति भी अनोखी चुनी है। पेशाबघर के इस्तेमाल में भी किस प्रकार ऊँचे और नीचे का भेद काम कर रहा है, इसे बताकर वे एक विचित्र व्यंग्यात्मक स्थिति के जरिए गैरबराबरी पर टिकी इस सम्पूर्ण व्यवस्था की परतें उघाड़ते हैं। सरकारी दफ्तरों में भी ऊँचे ओहदे वालों के लिए अलग पेशाबघर हैं। हर आदमी को उसकी जगह बता देने की व्यवस्था का यह भी एक तरीका है – "रास्ता इधर से है कहानी में इण्टरव्यू के लिए आये चालीस उम्मीदवार हैं, पाँच अफसर हैं। चालीसों व्यक्ति इण्टरव्यू के बाद जाते वक्त भूल से पेशाबघर का ही दरवाजा खोलते हैं, वह नहीं जिससे वे अन्दर आये थे हर बार पाँचों अफसर असली दरवाजे की तरफ ऊँगली उठाकर एक साथ चिल्लाते हैं रास्ता इधर से है। इसी पद के लिए जब अगली बार विज्ञापन में सिर्फ नौकरी करने वालों को ही अर्जी देने को कहा जाता है तो अफसरों को एक भी दरवाजा बताना नही पड़ता। अन्त में चुना जाता है जो साक्षात्कार के बीच एकाएक पूंछता है "सर मैं जरा बाहर पेशाब कर आऊँ सर।"(13)

व्यवस्था को जरूरत उसी आदमी की है, जो व्यवस्था के स्तरों में अपनी हैसियत जानता है। रघुवीर सहाय जी का मूल विद्रोह इस गैरबराबरी के संस्कार बन जाने के प्रति है। इस व्यवस्था ने गैरबराबरी को एक मूल्य की तरह स्थापित कर दिया है, उसके प्रति क्रोध या क्षोभ को मिटा दिया है। यही समाज की सबसे बड़ी विडंबना है। अपेक्षाकृत एक अच्छी कहानी है। बेकारी की समस्या और नौकरी के लिए होने वाले कथित इण्टरव्यू की दारूण

व्यथा का चित्रण है। जैसे "एक–एक करके कई लोग और आए। सभी विश्वविद्यालय में साहित्य, विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास या कानून इनमें से कुछ न कुछ पढ़ चुके थे। नौकरी की शर्त ही यही थी। कुछ शायद अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहनकर आए थे। पर कपड़े नहीं जनाब, मैं बाकी चारो निर्णयकों से कहना चाहता था, जूते देखिए, जूते। उन्हीं से आदमी के असली चरित्र का पता चलता है। एक के जूते बताते थे कि वह बहुत गरीब घर का है हालांकि उन पर पालिश भी। एक के जूते बताते थे कि उसके पास कई जोड़े जूते और भी और कपड़े वह बिल्कुल मामूली पहने था देखिए न जितने खानदानी पैसे वाले होते हैं, अकसर मामूली कपड़े पहनना चाहते हैं .... मगर उनके जूते।"[14]

इससे स्पष्ट होता है कि यह कहानी उस तथ्य की ओर इशारा करती है कि वर्तमान व्यवस्था में इंसानियत को बरकरार रखने वाली स्थितियाँ धीरे–धीरे मरती जा रही हैं, क्योंकि खुशामद और जी हुजूरी के बिना जीना दुश्वर हो गया है, जैसा कि रघुवीर सहाय जी ने अपनी एक कविता में ऐसे लोगों को तलाशने की बात कही है, आदतन, खुशामद नहीं करते और उस निर्धनता को पानी की जरूरत महसूस की है, जो बदले में कुछ नहीं मांगती। रघुवीर सहाय जी की कहानियों को पढ़कर रचना के स्तर पर यथार्थ और यथास्थिति का अन्तर खुलता है। क्या अन्ततः साहित्य का काम जीवन की समझ बनाते हुए जीवन का सौन्दर्य बढ़ाना नहीं है ? यहाँ सौन्दर्य को एक सीमित अर्थ में न लेकर एक व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए, जो जीवन के प्रति एक तरह की आस्था और विश्वास जाग्रत करता है, जिसमें जीवन को बदलने का संकल्प निहित है। इन्द्रधनुष उमस के बाहर सेब आदि कहानियों को पढ़कर इसी आस्था का उदय होता है।

विजेता

प्रस्तुत कहानी में पति–पत्नी नहीं चाहते हैं जल्दी कोई सन्तान उनके बीच आये। दवाएँ दी जाती है, पत्नी स्वभावतः चूंकि वह माँ है और पति की इच्छा को स्वीकार करती हुई दवाएँ लेती हुई भी इस रचना से वंचित होना नहीं चाहती। और अन्ततः दवाओं एवं अन्य प्रयासों के बावजूद रचना अस्तित्व में आ जाती है एक जीता–जागता व्यक्ति जो चूंकि इन सबके बावजूद आया है इसलिए विजेता है – सौर का कमरा इस गंध से भरा था जो सुलगती हुई आजवाइन और कड़वे तेल के दिये से मिलकर बनती है और वह साफ पुराने कपड़ों में

लिपटी हुई लेटी थी – अशोक ने एक पैर रखकर अन्दर झाँका सामने केवल सरसों के तेल का प्रकाश था और एक विशेष प्रकार की स्वच्छता थी, अशोक का दिल बुरी तरह धड़कने लगा क्या उसने मुझे क्षमा कर दिया है ? मुझे क्षमा कर दो उसने कहा और उसका चेहरा खिल उठा, लाल मुट्ठियाँ बन्द किये हुए और उसकी स्त्री का स्तन मुँह में लिये वह अनायास अपना अधिकार भोग रहा था। न उस पर कहीं कोई निशान था, न खरोंच या दाग कुछ नहीं। यह जीता हुआ आदमी है। अशोक ने कहा और हंसी रोकने से उसका चेहरा दीप्त हो उठा।''[15]

प्रस्तुत कहानी में मानवीयता को एक कर देने की अपूर्व क्षमता है। जैसे कहानी के अन्तिम अंश से स्पष्ट होता है लड़के ने अपने बाप की ओर देखा ही नहीं, न कुछ समझा कि यह कौन है और क्या चाहता है। उसे जरूरत भी न थी। आँखें बंद किए वह निस्प्रह भाव से अपना काम करता रहा और कद्दू जैसा पड़ा रहा। उसने एक लड़ाई जीत ली थी और वह वहाँ था अक्षत और संपूर्ण जैसा कि वह दूसरों के बावजूद बना था और कुल इतने से ही उसे फिलहाल मतलब था।''[16]

इससे स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय जी की नितांत अमानवीयता कैसे एक अपरिहार्य सी प्रतीत होने वाली मानवीयता पर हावी हो जाती है और इसके बावजूद एक बेहद, सुकुमार अबोध ऊर्जा इस अमानवीय शिलाखंड को पूर्ण–विपूर्ण कर खिलखिलाता अस्तित्व धारण कर सामने आ जाती है। रघुवीर सहाय जी की रचनात्मकता तथा मानवीयता को एक कर देने की अपूर्ण क्षमता है कला और जीवन। सम्प्रक्त और एकाकार।

(ख) नैतिक मूल्य, काम, प्रेम, विवेक, मानवीय भावना

आज संपूर्ण मानव समुदाय ईश्वरीय आस्था व विश्वास पर आश्रित है। सभी मानव संत्रस्त परिस्थितियों को भोगता हुआ आस्था का दीप जलाए चल रहा है। उसके मन में दर्द है, संशय है, कुंठा है किन्तु विश्वास है कि उतने पर भी वह अपनी विशिष्टता और स्वतंत्रता प्रतिपादित कर सकेगा। मानव निराशा के दौर से गुजरते हुए भी आस्था के प्रति चिन्तित है। दुःख से ही उसका विकास हुआ है। अतः इसे विवेक के साथ भोग लेना ही दृढ़ता का प्रमाण है। मानव विवेक ही अधिक विकसित होकर मानवीय आस्था और जिजीविषा में बदल जाता है। मानव में विश्वास उसकी छिपी शक्तियों के प्रति निष्ठा और उसी से विकसित जिजीविषा जैसे मानव मूल्य सर्वेश्वर जी के लेखन में वृहत रूप में मिलते हैं।

भारतीय दर्शन की एक मूल विशेषता यह रही है कि जब हम संकट में हों तभी प्रभु को पुकारें, उनकी शरण में जाएं, प्रभु से सहायता मांगे। नया लेखक ईश्वर, देवता, धर्म और पूजा आदि में विश्वास नहीं करता है। यह ईश्वरीय शक्ति के सहारे विकास पाने की अपेक्षा अपने ऊपर आश्वस्त रहता है।

रचनाकार यदि रचना करते समय यह सोचे कि वह सृजन कर रहा है तो उसकी रचनाओं में स्वाभाविकता नहीं अपितु कृत्रिमता आ जाती है। रघुवीर सहाय जी ने रचना करते समय कभी ऐसा नहीं सोचा। अतः उनकी रचनाओं की सह अभिव्यक्ति उनके सम्पूर्ण साहित्य की उपलब्धि है। रघुवीर सहाय जी की कहानियां न्याय और समता के आदर्शों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और उनके गैर रूमानी यथार्थ की धारणा को बहुत स्पष्ट करती है उनकी आत्मसजग जनतांत्रिक संवेदना अपने वैयक्तिक आचरण और रचना में उस करूणा या सहानुभूति के प्रति आसंकित है जो दूसरों को नीचा बना देती है। अपनी इसी संवेदना से समाज और व्यवस्था में व्याप्त गैर बराबरी को रघुवीर सहाय जी ने बहुत बारीकी से देखा। रघुवीर सहाय की कई कहानियों को पढ़कर रचना के स्तर पर यथार्थ और यथास्थिति का अन्तर खुलता है। इन्द्र धनुष उमस के बाहर सेब आदि कहानियों को पढ़कर जीवन के प्रति इसी आस्था का उदय होता है। यह आशावाद सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों को भी एक ताकत प्रदान करता है। सर्वेश्वर जी का आस्थावाद आरोपित नहीं है उसमें यह मानव निष्ठा संघर्षों के बाद विकसित हुई है। इसी निष्ठा के कारण वे जिजीविषा से मुक्त हैं ठीक ही है निष्ठा के अभाव में जिजीविषा और जीवनेच्छा के बिना निष्ठा (आस्था) जैसे मूल्यों का विकास भी कहाँ संभव है ?

सर्वेश्वर जी को अपने पर, व्यक्ति पर गहरी आस्था रही है उनकी आस्था जीवन के बीच से फूटी और जीने के लिए विकसित आस्था है। निराशा, अवसाद, विवशता और संघर्षों की जटिलता से घिरकर भी इन्होंने मानवीय शक्ति, उसकी जिजीविषा और उद्दाम जीवनी शक्ति के प्रति दृढ़ रही हैं। निराशा में ही आशा का अस्तित्व रहता है वे संघर्षों के बाद की जीत के प्रति आस्था रखते हैं। वह बाहर की अपेक्षा अपने ही भीतर से आत्मशक्ति का प्रकाश पाना चाहता है। निश्चेष्ट होकर बैठे रहना यह महा दुष्कर्म है निरन्तर अग्रसर रहना चाहिए, आत्मविश्वास व धैर्य का संबल पकड़ों फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

सर्वेश्वर जी एक आस्थावादी लेखक हैं उनमें गहरी निष्ठा और विश्वास है। आज स्थिति कितनी ही विषम और त्रासद क्यों न हो गई हो किन्तु संभावनाओं के द्वार बंद नहीं हुए हैं। हर संघर्ष हर चोट और प्रत्येक बाधा इस बात का संकेत देती है कि स्थिति जो भी है, वह शाश्वत नहीं हैं। विषाद, अवसाद और विसंगतियों के काले धुएँ के पीछे उजाला भी तो है उस उजाले की एक किरण हर संघर्ष में भी आदमी को अपनी कौंध दिखा जाती है, न मालूम कौन सा अंधेरा किसी उजाले की भूमिका हो। मानव विवेक इसी कारण प्रतीक्षित रहता है और हर प्रतीक्षा संभावना की सहेली बन जाती है। यंही कारण है कि न तो आस्था मिट पाती है और न जिजीविषा समाप्त हो पाती है। सर्वेश्वर जी जीवन को समग्रता में देखते हैं मनुष्य को उसके पूरे रंग–रोगन के साथ आपने निहारा है। धार्मिक अन्धविश्वास के खिलाफ जनता में जागरूकता पैदा करने में उनका काफी विश्वास है।

प्रेम का विकृत रूप

सर्वेश्वर जी की कहानियों में निहित प्रेम–चित्रण मनुष्य को पतनशील स्थिति में पहुँचा देता है। उन्होंने प्रेम के क्षेत्र में मानव को कीड़े के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा है – इस संबंध में हरिहर प्रसाद ने कहा – "एक प्रेमी का कीड़ा के रूप में चित्रण और उसके समर्पण का विकृत और हास्यास्पद रूप यह बताता है कि कथाकार मनुष्य के प्रेमी की गरिमा को विकृत करने में अधिक रुचि लेता है।"[17] इसी तरह की कहानी है – "टाइमपीस", "पराजय का क्षण", और "सफलता"।

(ग) सामाजिक परिवेश, समस्यायें, स्वरूप एवं चित्रण

जब रचनाकार अपने परिवेश और जीवन संघर्ष से प्राप्त अनुभवों के विविध रंगों को गहरी भाव संवेदना और बौद्धिक समझ के साथ अपने रचना संसार में स्थापित करता है, तब रचना अपने समय का सही साक्ष्य बन जाती है। साहित्यकार समाज का प्रवक्ता है, लेखक की पुकार समाज की पुकार है। किसी देश के साहित्य को देखकर हम पता लगा सकते हैं कि वह देश सभ्य है या अर्द्धसभ्य। हम साहित्य से ही समाज की अवस्था का अनुमान लगा सकते हैं।

आज का समाज बिखराव के कगार पर है। हर रास्ता संकीर्ण है प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ में लिप्त है। फिर भला समाज की इन बुराईयों से साहित्य कैसे बच सकता है।

"सर्वेश्वर जी का लेखन सामाजिक चेतना का यथार्थ पुंज है।"[18] वह चाहते थे कि सभी व्यक्ति विवेकी आस्थावान हों तथा स्वाभिमान से जियें। विश्व में शांति और परस्पर सहयोग का भाव हो परन्तु आज के विसंगतिपूर्ण तथा भ्रष्ट जीवन में इसका अभाव देखने को मिलता है। मूल्यों का विघटन हो रहा है। इन्होंने इस जटिल स्थिति में भी नये मूल्यों की खोज करने की कोशिश की है।

आज समाज़ की जटिलताओं की तस्वीर सर्वेश्वर जी के साहित्य में अनायास ही अंकित हो गई है। फूहड़ व विकृत समाज को संवारने व उसे चैतन्य करने की जी–तोड़ कोशिश उन्होंने की है। बड़े ही ओजस्वी स्वरों में उन्होंने सामाजिक चेतना का शंखनाद किया है। लेखक अपरिमित विकसित शक्तियों को स्वर, भाषा, वाणी देने से मना करते हैं। वह पाशविक युद्ध, अकारण नरसंहार और सहानुभूति व करूणा के भूखे लोगों पर किये जाने वाले अत्याचारों के खिलाफ भी संघर्ष करने को तैयार है। उनके शब्द साहसिक सैनिकों की तरह अमानवीयता के खिलाफ आग उगलने वाली एक तीव्र शैली में विद्रोह करने पर आमादा हो गए हैं। आज सामाजिक त्रासदी और राजनीति के भीतर फैली हुई मिथ्याचारिता को भी लेखक पहचानता है। वह अच्छी तरह जानता है कि हमारी कमजोरी कहाँ हैं, हमारी पारस्परिक फूट, व्यक्तिगत स्वार्थ, संशय, ईर्ष्या और खुशामदी वृत्तियों में ही हमारी कमजोरी छिपी है। आग तभी पैदा हो सकती है और उसकी लौ तभी तेज हो सकती है जब हम अपनी इन कमजोरियों को जीत लें। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो सत्ता एक दिन अवसर पाकर हमें पूरा निगल जाएगी।

मनुष्य चैतन्य और एक जुट होकर मदान्ध सत्ता के भेड़िए को भगाने के लिए चेतना की मशाल जलाये। कोरी भावुकता, करूणा, कायरता और समूचा प्रेम जिंदगी को कैद कर लेना है और परिस्थितियों की तेज आँधी आज मनुष्य को क्रांति व विद्रोह की प्रेरणा दे रही है। "सर्वेश्वर जी विद्रोह और क्रांति को आवश्यक मानते हैं।"[19]

आज सर्वत्र एक अराजक स्थिति है। लेखक इस स्थिति से क्षुब्ध है वह असमानता, अमानवीयता और स्वार्थपरता को समाप्त कर मानवीय मूल्यों की पताका फहराना चाहता है।

वह चाहता है कि व्यवस्था बदले, व्यवस्था के साँपों, भेड़ियों और कुत्तों को कुचलने के लिए सभी एक जुट हों और उस अवसरवादी व चापलूसी वृत्ति का मुँह कुचल दें जिसने हमसे जीने का अधिकार छीन लिया है। हमारी स्वतंत्रता का अपरहण कर लिया है लेकिन सब कुछ धीरे–धीरे हो रहा है। लेखक को धीरे–धीरे मौन रहकर प्रतीक्षारत रहने वाली स्थिति पसन्द नहीं है। उनकी धारणा है कि धीरे–धीरे कुछ नहीं होता सिर्फ मौत होती है।

आज जिंदगी भूखी है और आदमी भूख मिटाने में असमर्थ है। क्योंकि वह संघर्ष से बचता है, कष्टों से दामन बचाता है। सर्वेश्वर जी उसे ही श्रेष्ठ समझते हैं जो संघर्ष के बीच से रास्ता निकालकर अपना जीवन जीता है। कायर होकर जीना कोई जीना नहीं है उन्होंने गरीबी, भूख, व्यवस्था तंत्र, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों को भली–भांति समझा और सम्पूर्ण समाज के लिये एक नयी राह प्रशस्त की उनके साहित्य में सामाजिक चेतना के भाव निहित हैं। स्वतंत्रता के बाद आज भी समाज का एक बड़ा भाग गरीबी व भूख से पीड़ित है। आज साम्राज्यवादी शक्तियों और उपनिवेशवादी चरित्रों ने अमानवीयता पशुता दम्भ और असंस्कृतिकरण को बढ़ावा दिया है। शासन मनमानी करने का माध्यम बन गया है जिससे भूख, बेकारी, बेरोजगारी व भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है, व्यक्ति की त्रासदी समाज का खोखला रूप और प्रशासन के मिथ्या वायदों से शोषित वर्ग पीड़ित है। आज समाज व देश में मूल्यों का विघटन हो रहा है ऐसी सामाजिक विसंगतियों और विघटित मूल्यों से उत्पन्न संकट की स्थितियों के कारण ही वह चिन्तित है।

देश में अराजकता और लाचारी का जाल इतना बढ़ गया है कि कोई भी साहस और निर्भीकता के साथ कुछ भी नहीं कर सकता। सत्ताधारी पाशविक हो गये हैं परन्तु उनके गीतों का स्वर करुणा और बन्धुत्व का ही है। वे शोषक होकर भी पोषक बने रहने का छद्म करते हैं। ऐसे परिवेश में जीवित व्यक्ति न तो गुस्सा कर सकता है न घृणा, क्योंकि आततायी मजबूत और तेज सलाखों वाले पिंजरों में बैठा है। सामाजिक विसंगतियों की भयावहता और दम घोंट स्थितियों में आदमी को अपना चेहरा स्पष्ट दिखाई नहीं देता। सर्वेश्वर जी वर्तमान के उस क्षण पर खड़े हैं जहाँ वे सारे समाज की तस्वीर को साफ–साफ देखते हैं व विसंगतियों और तनाव को अनुभव करते हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियाँ चूँकि जन कहानियों की श्रेणी में आती हैं, इस कारण वह काफी लोकप्रिय रहीं। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से स्वतंत्रता के पहले और बाद की सामाजिक राजनैतिक व समाज के अन्य क्षेत्रों की समस्याओं को छूने का प्रयास किया है। सक्सेना जी ने अपनी कहानियों के द्वारा समाज तथा राष्ट्र को एक संदेश दिया है।

"प्रयोजन मनुदिृश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते"।

अत्यंत साधारण या मंद बुद्धिवाला व्यक्ति भी किसी कार्य में निष्प्रयोजन प्रवृत्त नहीं होता इसी प्रकार प्रत्येक साहित्यकार का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसकी रचना को प्रभावित करता है। प्राचीन युगीन कथा साहित्य से लेकर वर्तमान तक उद्देश्य का स्वरूप भी परिवर्तित और विकसित होता रहा है। डॉ. गुलाबराय ने कहानी के उद्देश्य पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि प्रत्येक कहानी में कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है। कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन अथवा लंबी रातों को काटकर छोटा करना नहीं है वरन् जीवन संबंधी कुछ तथ्य देना या मानव मन का निकट परिचय कराना है।

सर्वेश्वर जी की कहानियाँ उद्देश्यपूर्ण हैं, उनकी सभी कहानियाँ लक्ष्य प्रधान हैं वे साहित्य में लक्ष्य को सबसे महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। सर्वेश्वर जी की कहानियाँ आज की विकट परिस्थितियों की उपज हैं, इनकी कहानियों में असहय पीड़ा है सभी जगह असंतोष, ईर्ष्या, डाह .... का बोलबाला है। उनकी कहानियाँ आज की दुनिया की भूख, प्यास, पीड़ा, छटपटाहट, विवशता और मृत्यु की मर्मस्पर्शी और प्राणवान अभिव्यक्ति हैं उनकी कहानियाँ हमें अंधेरे से जूझने की प्रेरणा देती हैं।

गांधीवादी इस देश के शरीर में जहरवाद की तरह फैल रहा है

गाँधी के नाम का इस्तेमाल सत्ताधारियों और सत्तालोलुपों द्वारा फिर वे किसी भी राजनैतिक दल के भले ही क्यों न हो, जिस घृणास्पद स्तर पर किया जा रहा है। गाँधी जी और गाँधीवाद के नाम पर नेतागण अपनी रोटी सेंक रहे हैं। उनकी समाधि पर फूल चढ़ाकर सब अपने फूलों की सेज सजा रहे हैं। वास्तव में आज गांधीवाद इस देश के शरीर में जहरवाद की तरह फैल गया है, स्वयं सर्वेश्वर कहते है यह एक धुन है जिसने इस देश की

जनता के संकल्प, मनोबल और अन्याय से लड़ने की ताकत को भीतर–ही–भीतर घुन दिया है। गांधी और गांधीवाद का सहारा लेकर हर सत्ता लोलुप उचक्का जनता को सत्य और अहिंसा की माला आखें बन्द कर जपने के लिए देता जा रहा है और खुद उसके विपरीत मूल्यों को अपनाकर लूटपाट करता आ रहा है।

आज की राजनीति का परिवर्तित रूप

आज राजनीति का अर्थ बदल गया है। आज उसके लिए नये अर्थ की आवश्यकता है जिससे देश का नागरिक आज की राजनीति को समझ सके। जितना पतन हमारे देश में राजनीतिज्ञों का हुआ है। उतना किसी भी अन्य देश में नहीं। अनर्गल बकवास, असत्य, भाषण, स्वार्थ, चाटुकारिता, विचारों की परिवर्तनशीलता इस देश के नेताओं की विशेषता बन गई है। स्वयं सर्वेश्वर जी ने इन नेताओं के संबंध में कहा है – ''इतनी जल्दी तो गिरगिट भी रंग नहीं बदलता जितनी जल्दी देश के नेता रंग बदलते हैं। सारा दृश्य किसी सूने कमरे की खाने की मेज पर चूहों की कलाबाजियों जैसा है किसी का भय नहीं न अपनी आत्मा का, न जनता का। बेफिक्र धमाचौकड़ी मची हुई है।'' आज आवश्यकता इस गंदी राजनीति से देश को बचाने की है, क्योंकि यह गंदी, घटिया, राजनीति नितांत उबाऊ है।

अपराध और प्रशासन

वर्तमान समय में बढ़ती हुई वारदातें चोरी–डकैती, छीना–झपटी, बलात्कार, हत्याओं का बोलबाला है। जन साधारण इसका बुनियादी कारण गरीबी और बेरोजगारी को मानते हैं, लेकिन देखा जाए तो सही अर्थों में पुलिस या प्रशासन ही अपराधी है। अपराध बिना पुलिस या प्रशासन के संरक्षण के नहीं होते हैं। अपराधियों की पीठ पर जब प्रशासन का हाथ होता है तभी अपराध होते हैं।

यदि अपराध दूर करने हैं तो प्रशासन को ऊपर से स्वच्छ करना होगा। पुलिस कर्मचारी की आर्थिक स्थिति और बेहतर करनी होगी और पूरे ढाँचे में बदलाव लाना होगा – तंत्र के ढाँचे में और सामाजिक, राजनैतिक ढाँचे में गरीबी और बेरोजगारी दूर करनी होगी और नागरिकों के जीवन को आशंकाओं और अनिश्चिताओं से मुक्त कर उसे हर तरह की सुविधा और गारंटी देनी होगी।

फाइलों की प्रमुखता

आज पूरा व्यवस्था तंत्र चरमरा उठा है। निरन्तर दुर्घटनाएँ बढ़ रही हैं जुल्मों एवं अत्याचार, जहरीली शराब, की जाँच पड़ताल न कर भारत में केवल जाँच कमेटियाँ बैठायी जाती हैं जो लंबे समय तक जाँच करती रहती हैं। जिनकी रिपोर्टों से सिर्फ प्रशासन की फाइलों में ही वृद्धि हो रही है। आज दोषियों को दंड न देकर फाइलों का पेट भरा जा रहा है "इस देश में प्रशासन की फाइलें इस देश के आदमी की भूख के लिये तो कुछ नहीं कर पाता, फाइलों का पेट भरना खूब जानता है। इसमें वह बड़ा निपुण है। उन्हें एक क्षण भी भूखा नहीं रख सकता। फाइलें बढ़ती जा रही हैं। उनका पेट बढ़ता जा रहा है और सब कुछ उसी में समाता जा रहा है।

सामाजिक शोषण व दीपावली

दीपावली खुशी का त्यौहार है जिसे लोग खुश होकर मनाते हैं, लेकिन व्यवस्था ने आज सामान्य वर्ग को ऐसी कोई खुशी नहीं दी जिससे वह इस त्यौहार को हर्षोल्लास के साथ मना सके। एक वर्ग तो भ्रष्टाचार, शोषण, चोरबाजारी से पैसा इकट्ठा कर लक्ष्मी पूजन कर रहा है वहीं दूसरा वर्ग दिन–रात श्रम करके भी भूखा रहता है। ऐसे में उनके लिये थोड़ी सी रोशनी की क्या उपयोगिता है ? सर्वेश्वर जी ऐसी दीपावली मनाने का विरोध करते हैं। जब मन के भीतर इतना अंधेरा हो तो बाहर थोड़ी रोशनी जलाकर क्या होगा ? आज एक दिन की दीपावली से क्या होगा इस वर्ग के पूरे जीवन में दीपावली होनी चाहिए। दीपावली मनाने की खुशी तो तभी होगी जब यह व्यवस्था बदल जाएगी। जब देश के करोड़ों आदमियों की आँखें में रोशनी होगी, वे बुझे चिरागों सी नहीं दिखेगी। अभी उनमें संकल्प की रोशनी पैदा करनी होगी – सब कुछ बदलने के संकल्प की रोशनी। दीवाली पर यदि जला सकते हो तो यह संकल्प का दीया जलाओ। यही सही रोशनी है – नैतिक रोशनी, अन्यथा दीये मत जलाओ।"

विज्ञापनों का बढ़ता प्रभाव

आज विज्ञापनों का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है। समारोहों की सम्पन्नता बहुत कुछ विज्ञापनों पर निर्भर हो गई है। आज लाखों रुपये इन विज्ञापनों पर खर्च हो रहे हैं, लेकिन भले ही राजनीतिक ताकत पैसे के जोर पर हासिल कर ली जाए। सांस्कृतिक प्रतिष्ठा पैसे

के जोर पर अर्जित नहीं की जा सकती। इस संबंध में सर्वेश्वर जी की राय है कि – "यही यह जमीन है – कला, साहित्य, नृत्य, संगीत, रंगमंच की – जहाँ पैसा अन्ततः मात खाता है, प्रतिभा भी टिकती है .... यह बड़ी निर्मम जमीन है इसे नंगे पैर आदमी पार कर जाता है, हाथी पर बैठा धँस जाता है।

शिक्षा का गिरता स्तर

वर्तमान परिवेश में दिन–प्रतिदिन शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। दसियों विषय का बोझ विद्यार्थी के सिर पर लाद दिया गया है, जिन्हें वह भार की तरह ढोता है। परीक्षक भी कॉपियों के सही मूल्यांकन से कतराते हैं अब विद्यार्थियों का पास–फेल होना तकदीर का खेल बन गया है। इस घटिया शिक्षा व्यवस्था में योग्यता की सच्ची परख कहीं नहीं है। यहाँ परीक्षक और विद्यार्थी व्यवस्था की शर्तों को मानने के लिए बाध्य है। व्यवस्था की शर्तों की चक्की में पिसने के लिए ही विद्यार्थी ढाला जाता है। यह किताबें रटता है, परीक्षा देने की चालाकी सीखता है। परीक्षक भी मेहनत से मुँह चुराता है। यह व्यवस्था कला विद्यार्थी को सामाजिक दृष्टि नहीं देती है। वे सिर्फ रट्टू तोते बनकर नौकरी करना चाहते हैं। उनमें से कोई भी कवि, लेखक, समाजसेवी, क्रान्तिकारी नहीं बनना चाहता। आज आवश्यकता है कि यह शिक्षा पद्धति बदले। स्कूलों को सरकार के नियंत्रण से मुक्त किया जाये। जिससे विद्यार्थी सामाजिक ताकत के रूप में निर्मित हो सके। इस संबंध में सर्वेश्वर जी चाहते हैं कि "ऐसे स्कूल खोले जायें, बिना सरकारी मदद के जहाँ सही शिक्षा दी जाए। दो घंटे से अधिक न पढ़ाया जाये। छात्रों को समाज को बदलने की ताकत के रूप में तैयार किया जाये। यथास्थिति को बनाये रखने के पुर्जे के रूप में न ढाला जाये। सारे देश में सौ ऐसे स्कूल भी खुल जायें तो हवा बदलने लगेगी।

समाज में बढ़ती हुई आत्महत्या

जिन्दगी से घबराकर भागना आत्महत्या को बढ़ावा देता है। आज प्रतिदिन आत्महत्या की खबर पढ़ने को मिलती है। प्रेम में असफलता, बेरोजगारी, शिक्षा की असफलता, छात्र जीवन की माँगों की आपूर्ति का निदान आत्महत्या से होता है। यह आत्महत्या किसी भी जीवित समाज के लिए कलंक है। वास्तव में जिन्दगी से अधिक प्यारी चीज कोई नहीं होती। क्यों कोई इस समाज में जिन्दा रहना नहीं चाहता। इसका जबाव समाज को खोजना

होगा। आत्महत्या किसी भी समाज की सबसे बड़ी दुर्घटना है। उसकी जाँच-पड़ताल होनी चाहिए, क्योंकि कोई भी आत्महत्या व्यक्तिगत कारण से नहीं होती। कहीं न कहीं से पूरा समाज इसका जिम्मेदार होता है। आए दिन होने वाली इन आत्महत्याओं के पीछे एक मूल कारण आर्थिक बुनियाद भी है। अकेलापन भी आत्महत्या को बढ़ावा देता है। इसलिये व्यक्ति को अकेला मत छोड़ो आज यह बहुत जरूरी हो गया है कि आत्महत्या के मूल कारणों की जाँच हो, क्योंकि आत्महत्याओं से युक्त समाज ज्यादा दिन नहीं चल सकता। – "एक आत्महत्या की जिम्मेदारी सब पर होती है, पूरे समाज पर। आदमी जब अकेला पड़ जाता है तब मरता है। कम से कम मरने के बाद तो उसे अकेला मत छोड़ों, जिन रूढ़ियों, दुराग्रहों, जिस घुटन अन्याय के कारण वह मरा है उन सबको बदलो, मिलकर बदलो, तुरन्त बदलो, आत्महत्याओं की नींव पर खड़ा समाज बहुत दिनों तक नहीं चलता।

साहित्यकारों का सीमित दृष्टिकोण

लेखक-साहित्यकार समाज का निर्माण करने वाले हैं। समाज व व्यवस्था की वास्तविक जानकारी उनके सहयोग के अभाव में नहीं प्राप्त की जा सकती। लेकिन आज वे एक विशेष वर्ग तक सीमित रह गए हैं। वे केवल तभी बोलते हैं जब उनमें से किसी पर कोई अन्याय होता है। कितने ही निर्मम हत्याकांड, मौंतें, रेल दुर्घटना पर हमारे ये लेखक चुप्पी साध े रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी लड़ाई केवल लेखकों की लड़ाई होकर रह जाती है, आम आदमी की लड़ाई के साथ नहीं जुड़ पाती। आज आवश्यकता है कि लेखक और बुद्धिजीवी समाज के किसी ऐसे सामान्य जन को प्रतीक बनाकर जिस पर अन्याय हुआ हो लड़ाई छेड़ें और समाज को जागरूक करें तथा सत्ता को सावधान करें। सर्वेश्वर जी का यह संदेश लेखकों के लिये ही है .... आशा की जानी चाहिए कि लेखक और बुद्धिजीवी अपनी बिरादरी पर हुए अन्याय के खिलाफ तो आवाज उठायेंगे ही उन तमाम बेजबानों पर होने वाले अन्याय के खिलाफ भी आवाज उठायेंगे जो व्यवस्था के लोकतंत्रीय आचरण से हर प्रकार की यातना झेल रहे हैं।

भारतीय समाज में नारी

भारतीय समाज में नारी सबसे अधिक अभिशप्त है। नारी को प्रताड़ित करने वाला पुरुष वर्ग अभी भी निःशंक होकर समाज में रहता है, क्योंकि उसे उन ताकतों का समर्थन

प्राप्त है जिनसे वह भयभीत हो सकता है। नारी के साथ होने वाले ये अमानवीय व्यवहार विभिन्न प्रदर्शनों से बंद नहीं हो सकते। औरत के मर जाने के बाद या मारे जाने के बाद प्रदर्शन करने से कोई फायदा नहीं है ? जीते जी औरत का साथ दो ताकि उसे लगे कि समाज उसके साथ है। आज के युग में नारी की नारकीय यातना से मुक्ति के लिये आवश्यक है कि – "उसकी ही जमात की तमाम पढ़ी–लिखी लड़कियों और औरतों को उसके साथ मिलकर उसकी लड़ाई लड़नी होगी। तभी धनलोलुप वहशी भेड़ियों को उनकी माद में ही कैद रखा जा सकेगा।

पुलिस के अत्याचार

शासन व्यवस्था में बढ़ते हुए अनाचार के साथ–साथ आज की पुलिस भी अत्याचारी हो उठी है। वह वर्ण भेद को उकसा रही है। वह हरिजनों से नफरत करती है वह उन लोगों से भी घृणित व्यवहार करती है जो गरीब हरिजनों और आदिवासियों के बीच काम करते हैं, उनका साथ देते हैं। आज पुलिस गाँव के साहूकार, जमींदारों के कहने पर चलती है और गाँव के लोगों का शोषण करती है। वास्तव में इस समस्या का समाधान पुलिस में हरिजनों व आदिवासियों की भर्ती से ही हो सकता है। यदि पुलिस में 60 प्रतिशत लोग हरिजन और आदिवासी हो जायें तो पुलिस के अत्याचार की समस्या काफी सुलझ सकती है।

कमजोरों की एकता

शक्तिशाली हमेशा निर्बल को दबाता है। यह समाज का नियम है, जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत आज पूर्णतः प्रचलित है। इस दुनियाँ में वही जी सकता है जो अपने अधिकारों के प्रति सतर्क है व हर शोषण, अत्याचार का विरोध करने को उत्सुक है। कमजोर–निरीह प्राणी भी एक होकर लड़े तो उनकी लड़ाई सार्थक हो सकती है। ऐसी लड़ाई में लोग मूक दर्शक न बन सकेंगे, बल्कि लड़ने वाले का साथ देने के लिए तत्पर हो उठेंगे। "कमजोरों की एकता का भी तभी कुछ मतलब होता है, जब वे लड़ने की कोशिश करें। लोग लड़ाई का साथ देते हैं। जो खुद नहीं लड़ता, खाली चिल्लाता है – अकेले या तमाम लोगों के साथ मिलकर भी, उसका साथ कोई नहीं देता।

राजनीति व चुनाव

राजनीति का मुख्य मुद्दा चुनाव है। लोकतंत्र में चुनाव से राजनीतिक गतिविधियाँ चरमसीमा पर पहुँच जाती हैं। हर पार्टी लंबे–लंबे घोषणा–पत्रों द्वारा जनता–जनार्दन को भूल–भूलैया में डाल अपना राजनैतिक स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं व कुर्सी प्राप्त होते ही अपने वायदों को भूल जाते हैं। सर्वेश्वर जी चाहते हैं कि अब इस क्षेत्र में परिवर्तन हो और यह परिवर्तन ग्रामीण भाईयों व पिछड़ी जातियों में शुरू हो। वे चुनाव के समय किए गए वायदों को पूरा करवाये। यदि वे अपने वायदे पूरे नहीं करते तो उन्हें अपने निर्वाचन क्षेत्र में न घुसने दिया जाए। उनका घेराव करें और उन्हें वापस बुलाने की माँग उठायें जन अदालतें बनायें और उन पर मुकदमा चलायें, अन्यथा यह चुनाव–चक्र टूटेगा नहीं। अब हर वर्ग को कटिबद्ध होना पड़ेगा – "लोक प्रतिनिधियों से टकराना होगा और उन्हें बताना होगा कि अब वे बिना अपने घोषणा–पत्र के अनुरूप काम किये समाज में वापस नहीं लौट सकते, न स्वीकार किये जा सकते हैं। उन्हें काम के लिए मजबूर करने से ही लोकधर्म की शुरूआत होगी जिधर से होकर क्रांति का रास्ता है।

साहित्यकार और पुरस्कार

लेखक और साहित्यकार आज उपेक्षित जीवन जी रहे हैं। रचनाकारों को गौरवांवित करने के लिए पुरस्कारों की व्यवस्था की गई है, लेकिन इन पुरस्कारों के पीछे सम्मान का भाव नहीं रहता, वे खानापुरी मात्र रह गए हैं। प्रदेश सरकारें अपने बजट में से कुछ पैसा बाँट देती हैं जो लेखक धनाभाव से ग्रस्त रहता है उसे कुछ पैसा मिल जाता है। यह पुरस्कार भी मंत्रियों और नेताओं की सुविधायें देखकर बाँटे जाते हैं, भले ही इसमें पुरस्कृत रचनाकारों को असुविधाओं का सामना करना पड़े। यह रवैया परिवर्तित होना चाहिए। उचित यही है कि – "लेखक को पुरस्कार धन में न देकर उसे सुविधाएं दी जानी चाहिए। घर, बच्चों की निःशुल्क शिक्षा, मुफ्त दवादारू आदि। इससे सचमुच लेखक का कल्याण अभीष्ट हो सकता है।"

(घ) साम्य-वैषम्य

रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में सामाजिक मूल्य तथा परिवेश चित्रण के विभिन्न रूपों में समानता दिखाई पड़ती है। दोनों कथाकारों ने अपने

परिवेश और सामाजिक मूल्यों के विविध रूपों को गहरी संवेदना और बैद्धिक समझ के साथ अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। आलोच्य कथाकारों की कहानियों में सामाजिक जीवन के प्रति एक तरह की आस्था और विश्वास दिखता है। जो मानव जीवन के प्रति सकारात्मक भाव को व्यक्त कर संघर्ष की एक नयी शक्ति प्रदान करता है।

रघुवीर सहाय की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के प्रति जहाँ एक तरह की सलाह की बात कही गई है। वहीं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में कोरी भावुकता, करूणा, कायरता को दूर कर मनुष्य को क्रांति व विद्रोह की प्रेरणा के लिये आग्रह की बात दुहराई गई है। सामाजिक परिवर्तन एवं अच्छे जीवन मूल्यों के लिये सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अपनी कहानियों में विद्रोह और क्रांति को आवश्यक मानते हैं।

❑❑❑

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 53
2. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 55
3. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 31
4. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 31
5. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 31
6. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 33–34
7. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 34–35
8. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 70
9. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 70
10. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 70
11. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 121
12. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 123–124
13. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 106
14. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 105
15. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 80,81,82
16. रघुवीर सहाय रचनावली –2 पृ. 82
17. सर्वेश्वर का रचना संसार : प्रदीप सौरभ (निष्ठा और सामर्थ्य के द्वन्द्व की कहानियाँ) :
18. समकालीन कविता का मूल्यांकन – डॉ. गुरुचरण, पृ. 56 हरिहर प्रसाद, पृ. 43
19. गर्म हवाएँ – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 85

❑❑❑

उपसंहार

उपसंहार

साहित्यकार युग दृष्टा–युग सृष्टा इसी अर्थ में होता है कि वह युग के परिवर्तन को सर्वप्रथम एवं सबसे सूक्ष्म रूप से देखता परखता है। उसके कन्धों पर दोहरा दायित्व होता है। एक तो उसे सामाजिक जनचेतना को बिम्बित कर मानवीय भावनाओं को परिष्कृत और संस्कारित करना होता है तो दूसरी ओर उस युग और समाज में निर्मित मूल्यों के संत्रास को उद्‌घाटित करना होता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि किसी भी रचनाकार के निर्माण के पीछे उसके परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति के निर्माण में जितना योगदान बाह्य परिवेश का होता है उतना ही आन्तरिक परिवेश का भी।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के आधार मैं यह कह सकती हूँ कि कहानी अन्य विधाओं की तरह जीवन की एक नयी समझ पैदा करती है। लिखना, बोलना दोनों तरीकों से वह यही करती है और जब नहीं कर पाती तो कहानी नहीं होती है, मगर जब कर पाती है तो उस पर यह बन्धन भी नहीं रहता कि वह कहानी ही रहे। हाँ यह बन्धन रहता है कि वह जीवन की नयी समझ का शास्त्र न बन जाये। शास्त्र नई समझ पैदा करते नहीं है पैदा हुई नई समझ को बताते हैं। यह काम तो कहानी के बिना भी हो सकता है। इसलिये कहानी वही होती है जो सिर्फ नई समझ पैदा करे और पैदा किये बगैर उसे बताने न बैठ जाये : और यह समझ पैदा करके खत्म हो जाये : नहीं तो वह नई समझ भी खत्म हो जायेगी। पाठक या श्रोता मनुष्य के जिस रिश्ते को जानते हैं उसके बदलने और बदलकर नया रूप ले लेने की प्रक्रिया ही कहानी है। लेखक के मन में यही परिभाषा होनी चाहिये और पाठक के भी। दोनों की इस प्रक्रिया में साझेदारी जरूरी है नहीं तो दोनों में यह कहकर बच निकलेगा कि मैंने अपना काम कर दिया बाकी वह जाने।

कला के अनेक प्रकारों में साहित्य का और साहित्य के अनेक प्रकारों में कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में कहानी ही एक ऐसी विधा है, जिसका उदय मानवीय अभिव्यंजना के क्षेत्र में सर्वप्रथम हुआ। कहानी ही वह मूल है जिसका वृक्ष रूप साहित्य है और साहित्य की अन्य विधाएं उसकी शाखा हैं किन्तु जिस प्रकार वृक्ष जड़ का अंग नहीं माना जाता बल्कि जड़ ही वृक्ष का अवयव मानी जाती है,

उसी प्रकार कहानी भी साहित्य का अवयव मानी जाती है। हिन्दी कहानी के मौलिक स्वरूप का संकेत 1900 केआसपास माना जाता है। हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी "इन्दुमती" पं. किशोरीलाल गोस्वामी की थी।

हिन्दी का प्रारम्भिक कथा साहित्य मूलतः भारतीय एवं पश्चिमी संस्कृतियों के संघर्ष में से उत्पन्न हुआ जो कि उस युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संघर्ष था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इन्दुमती को ही हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना है। यह एक भाव प्रधान कहानी है, जिसमें मनुष्य के कैशौर्यपूर्ण रागात्मक सम्बन्धों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रेमचन्द्र पूर्व कहानी युग में मुख्यतः दो पत्रिकाओं के माध्यम से अधिकांश कहानियाँ प्रकाश में आईं। ये पत्रिकाएँ थी पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' तथा जयशंकर प्रसाद द्वारा सम्पादित इन्दु। इन दोनों पत्रिकाओं के माध्यम से अनूदित तथा मौलिक कहानियों के रूप में ऐसी अनेक कहानियाँ प्रकाश में आयी, जिनमें युगीन परिवेश तथा परिस्थितियों का मूर्त और अमूर्त्त स्वरूप देखने को मिलता है। इस युग की संवेदनात्मकपूर्णता हमें "उसने कहा था" (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी) नामक कहानी द्वारा प्राप्त होती है जिसकी रचना संभवतया उस युग की ही नहीं वरन् हिन्दी कहानी इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इसके पूर्व की नई कहानियां उस युग को समझने के लिए सहायता प्रदान करती हैं जिसमें प्रमुख हैं जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की "रक्षाबन्धन" ज्वालाप्रसाद शर्मा की "मिलन" 1915 ई. भगवानदास की चुड़ैल 1902 ई. इत्यादि। प्रेमचन्द पूर्व युग की ये आदर्शोन्मुख प्रवृत्तियां अपने कुछ रचनात्मक, पूर्वाग्रहों के साथ प्रस्तुत हुईं जिन्हें प्रेमचंद युगीन लेखकों ने स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया। प्रसादयुग की कहानियाँ भी प्रेमचन्द युग से मिलती जुलती थीं प्रसाद और प्रेमचन्द के साहित्य का अन्तर शिल्पगत है। प्रसाद अर्न्तमुखी कथाकार थे और प्रेमचन्द्र बहिर्मुखी। प्रेमचन्द और प्रसाद के समकालीन लेखकों के रूप में दो कहानीकारों का नाम पर्याप्त है कौशिक और सुदर्शन की कहानियाँ में प्रेमचन्द की बर्हिमुखी तथा प्रसाद की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का समन्वित रूप दिखाई पड़ता है। कौशिक मूलतः सुधारक लेखक थे तथा उन्होंने अपनी कहानियों में तत्कालीन सामाजिक तथा पारस्परिक समस्याओं के सुधारवादी निष्कर्ष ही प्रदान किये हैं।

प्रेमचन्द युग इस दृष्टि से पुराने तथा नये मूल्यों के संघर्ष का युग था। हालांकि अधिकांश लेखकों ने इस संघर्ष को परम्परागत मान्यताओं द्वारा ही सुलझाने का प्रयास किया, किन्तु अपने रचनात्मक विकास के साथ ही उन्हें यह लगने लगा था कि नई समस्याओं को सुलझाने के लिए आदर्शों का परम्परागत स्वरूप पर्याप्त नहीं है।

संक्षेप में, प्राचीन काल की कहानियों में मानव की बाह्य प्रकृति का चित्रण हुआ करता था। केवल आकस्मिक घटनाओं और संयोगों से कहानी की सृष्टि हुआ करती थी, जिसमें मनोरंजन के लिये और कहीं–कहीं कथा को आगे बढ़ाने के लिये अभौतिक और अतिभौतिक सत्ताओं का उपयोग होता था। इन सत्ताओं में प्रतीक की भावना न थी और यदि कहीं थी तो केवल बाह्य शक्ति की प्रतीक होती थी, अंतः शक्ति की नहीं। परन्तु आधुनिक काल की कहानियों में मानव की अंतः प्रकृति का चित्रण होने लग गया, जिनमें अभौतिक और अप्राकृत सत्ताओं का उपयोग नहीं होता। जब कभी इन सत्ताओं का उपयोग होता भी है, जैसे कि प्रेमचन्द्र और सुदर्शन की कुछ कहानियों में मिलता है, तब ये सत्ताएँ किसी अंतःशक्ति की प्रतीक होती हैं, बाह्य शक्ति की नहीं। इस अंतःप्रकृति के चित्रण ने हमें मानव–चरित्र और भावना नाम की अद्भुत वस्तु दी। मानव अब तक देव, दानव, राक्षस आदि अतिभौतिक और अतिप्राकृत सत्ताओं तथा नियति के हाथों का एक कठपुतला मात्र था, वे उसे जैसे नचाते वह नाचता था, उसे विचार–स्वातन्त्र्य न था, उसकी भावना कोई महत्व नहीं रखती थी, परन्तु अब मानव को विचार–स्वातन्त्र्य मिल गया है; वह जो भी काम करता है अच्छी तरह सोच–विचार कर करता है, उसके कामों का प्रभाव उसके चरित्र पर भी पड़ता है। आधुनिक काल में मानव–चरित्र और मानव–मस्तिष्क की प्रधानता स्वीकार कर ली गई और उन्हीं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने कहानी को मनोरंजकता प्रदान की। प्राचीन कहानियों की अपेक्षा आधुनिक कहानी की आत्मा अधिक सजीव, गम्भीर और सूक्ष्म है।

प्राचीन कहानियों में अधिकांश राजा, राजकुमार और राजकुमारियों का ही चित्रण हुआ करता था। सच बात तो यह है कि प्राचीन काल में साधारण जनता का कोई विशेष महत्व ही न था। राजा का वाक्य ही राज्य–विधान हुआ करता था। राजा, रानी, राजकुमार, मन्त्री, सामन्त इत्यादि कुछ थोड़े–से ही लोग जीवन का सुख पाते थे; शेष मनुष्य पैदा होते थे, खाते–पीते थे और मर जाते थे। इसलिये प्राचीन कहानियों में राजा, रानी और राजकुमार आदि का ही चरित्र होता था। परन्तु आधुनिक काल में सार्वजनिक

समानाधिकार की भावना बढ़ चली। विधान और शिक्षा की दृष्टि से सभी मनुष्यों को समान अधिकार मिला। स्त्री–पुरुष, शूद्र–ब्राह्मण किसी में कुछ भेद न रहा। स्वच्छन्दता की भावना के जोर पकड़ने से सामान्य मानवता के यथार्थ चित्रण की ओर लेखकों की अभिरुचि बढ़ने लगी। अस्तु, आधुनिक कहानी में, राजा, रानी और राजकुमार के स्थान पर जुम्मन शेख, अलगू साहू, घीसू चमार, मुन्नू मेहतर, महादेव सोनार, सेठ छंगामल, लहना सिंह, जमादार, वकील, बैरिस्टर, डॉक्टर, प्रोफेसर, कवि, क्लर्क, दीवान, मिनिस्टर आदि सभी लोगों के जीवन काचत्र उपस्थित किया जाने लगा। फिर प्राचीन कहानियों में अधिकांश प्रेम का ही चित्रण हुआ करता था, परन्तु अब प्रेम के अतिरिक्त अन्य भावों और मनोभावों का भी चित्रण होने लगा है। सारांश यह है कि आधुनिक काल में कहानियों के विषय और उत्पादन का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो गया है।

प्राचीन काल में कहानियों का प्रारम्भ बिना किसी भूमिका के ही हुआ करता था। 'एक राजा था और उसके दो रानियाँ थीं' कह कर ही कहानी का आरम्भ कर दिया जाता था। जनता को इससे अधिक परिचय की आवश्यकता भी न थी। राजा शब्द निकलते ही सरल जनता के अन्तर्नयनों के सामने एक सुन्दर, सुडौल, विलासी नवयुवक का चित्र उपस्थित हो जाता था, जिसके वैभव और ऐश्वर्य का कोई अन्त ही नहीं और वह उत्सुक होकर पूछ बैठती थी 'तो उस राजा का क्या हुआ ?' परन्तु आधुनिक काल में राजा शब्द निकलते ही संशयवादी और बुद्धिवादी जनता अविश्वास की भावना से सिर हिला कर प्रश्न कर बैठती है कि वह राजा किस देश का अधिपति था ? वह किस युग में राज्य करता था ? किस वंश का भूषण था ? उसका नाम क्या था ? और उसके शासन–काल की मुख्य ऐतिहासिक घटनाएँ क्या–क्या थीं ? इत्यादि। कहानीकार भी अब पहले से चतुर हो गये हैं। वे भी खास कर एक पांडित्यपूर्ण कहानी सुना देते हैं कि उस राजा का नाम आदित्यसेन था, वह विदर्भ देश का राजा था और राजा नल की बीसवीं पीढ़ी में पैदा हुआ था। ईसा से 802 वर्ष पूर्व उसने आठ अश्वमेघ यज्ञ किये थे और उसके बहुत से सिक्के और शिला–लेख अमुक नगर में मिले हैं। इस पांडित्यपूर्ण उत्तर से जनता को फिर से अविश्वास करने का साहस ही नहीं होता। जनता के सन्देहों का समुचित उत्तर तो गल्पों की काल्पनिक कथाओं में नहीं दिया जा सकता, फिर भी उसे भुलावा तो दिया ही जा सकता है, और आधुनिक कहानी–लेखकों ने वही किया भी। अपनी कहानी की काल्पनिक कथा को सत्य घटना का रूप देने के लिये आधुनिक कहानी–लेखक एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है कि उसकी गम्भीरता, स्वाभाविकता

और यथार्थवादिता से प्रभावित होकर पाठकों को पूरी कहानी को सत्य मानना ही पड़ता है। कम से कम कहानी पढ़ते समय तो वह कहानी की लिखी सभी बातों को सत्य समझता है।

कहानी में वातावरण की सृष्टि का वही प्रभाव पड़ता है, जो नाटकों में रंगमंचीय कौशल (Stagecraft) का पड़ता है। मध्ययुग में यदि निर्जन निकुंज में सन्ध्या की गोधूलि में राधा–कृष्ण का मिलन दिखाना होता था, तो रासलीलाओं में सूत्रधार रंगमंच पर आकर, इतना कह जाया करता था कि अब राधा और कृष्ण का यमुना–तट पर, निर्जन निकुंज में, सन्ध्या–समय मिलन होगा और दर्शकों को उसी सूखे रंगमंच पर अपनी कल्पना शक्ति से यमुना–तट, निर्जन निकुंज और गोधूलि इत्यादि का चित्र उपस्थित कर लेना पड़ता है। परन्तु आधुनिक नाटकों में इसी दृश्य का अभिनय करने के लिये पहले रंगमंच पर, एक पर्दा डालकर यमुना–तट और निर्जन निकुंज का चित्र उपस्थित कर दिया जाता है, प्रकाश को धुंधला करके सन्ध्या समय का भान किया जाता है और फिर मोर–मुकुट, गुंजामाल, पीताम्बर की कछनी धारण किये, सुरीली बाँसुरी में अमृत की धारा बहाते हुये श्रीकृष्ण और इसी प्रकार यथार्थ जान पड़ने वाली वेशभूषा में सज्जित राधिका का मिलन कराया जाता है। जनता इस दृश्य को देखकर कुछ समय के लिये उन्हें वास्तविक श्रीकृष्ण और राधिका मान लेती है और उस मिलन को आज से कई हजार वर्ष पहले की एक सत्य घटना का प्रतिबिम्ब मानकर उस पर विश्वास करती है। इसी प्रकार यथार्थ वातावरण की सृष्टि करके कहानी–लेखक एक ऐसा चित्र उपस्थित कर देता है कि कहानी पढ़ते समय पाठक–गण उसे कोरी कपोल–कल्पना नहीं समझ सकते, वरन् उसे सत्य घटना का यथार्थ चित्र मानते हैं। उदाहरण के लिये, गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' में नायक लहना सिंह और नायिका के प्रथम मिलन के लिये लेखक ने एक ऐसा यथार्थ वातावरण उपस्थित कर दिया है कि उसे पढ़ने के बाद पाठकों को उनके मिलन की यथार्थता में सन्देह नहीं रह जाता। एक टूटी–फूटी चटाई पर दो स्त्रियाँ झुकी हुई बैठी हैं। उसके सामने एक नीले मखमल का लहँगा है और वे दोनों उस पर सलमे–सितारे का काम बना रही हैं। एक की उमर पचास साल के लगभग है और दूसरी की पचीस के लगभग। उनकी रुक–रुक कर चलने वाली उंगलियाँ काम करने से मुँह मोड़ रही हैं और मौन भाषा में यह कह रही है कि वे इतनी थकी हुई हैं कि उनसे अधिक काम लेना उन पर अत्याचार करना है। काम करते–करते सहसा वृद्धा ने सुई

छोड़ दी। कुछ सेकिण्डों तक आँखों पर हाथ रक्खे रहने के पश्चात् वह बोली – ''बेटी सुशीला, अब रहने दे। ....'' इत्यादि।

इतना पढ़ने पर कौन कह सकता है कि लेखक सत्य घटना का चित्र नहीं खींच रहा है। स्थान, काल और पात्र का विचार सम्भाव्य सभी बातों के यथार्थ चित्रण से आधुनिक लेखक वातावरण की सृष्टि करता है और यह सृष्टि लेखक की कल्पना पर एक रहस्यमय अवगुंठन डाल कर उसे सत्य का स्वरूप प्रदान करती है।

जिन कहानियों में लेखक का कोई असम्भव घटना अथवा प्रसंग दिखाना पड़ता है, वहाँ भी लेखक इस प्रकार का वातावरण उपस्थित करता है और असम्भव घटना को इस कौशल से प्रस्तुत करता है कि पाठक उस असम्भव को सम्भाव्य मान लेता है। उदाहरण के लिये गोविन्दवल्लभ पंत की कहानी 'प्रियदर्शी' लीजिये। इसमें लेखक ने कुछ असम्भव बातों का उल्लेख किया है, जैसे, अशोक के चार सिपाही जब भिक्षु की हत्या करने के लिये तलवार चलाते हैं, तो भिक्षु का सिर कटने के स्थान पर उन्हीं के सिर कट कर भूमि पर लोटने लगते हैं। इसी प्रकार सेनापति द्वारा भिक्षु के दाहिने हाथ पर तलवार चलाने पर स्वयं उसका दाहिना हाथ कट कर गिर पड़ता है और अन्त में जब अशोक स्वयं भिक्षु पर तलवार चलाता है, तब भिक्षु का सिर कटने के स्थान में उस पर फूल बरसते हैं। इस असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओं को लेखक ने एक ऐसे वातावरण में प्रस्तुत किया है कि असम्भव होते हुये भी वे उस स्थान पर सम्भाव्य जान पड़ती हैं। वातावरण का ऐसा ही महत्व है। यह वातावरण आधुनिक कहानी की एक मौलिक और नवीन सृष्टि है। जिस प्रकार रात के अंधेरे में रस्सी में साँप की प्रतीति होती है, उसी प्रकार यथार्थ वातावरण के कारण एक कल्पिक कथा में सत्य घटना की प्रतीति होती है। प्राचीन कहानी में इस प्रकार की कोई माया न थी।

आत्मा और वातावरण के अतिरिक्त, आधुनिक कहानी के रूप और शैली भी प्राचीन कहानियों से नितान्त भिन्न हैं। प्राचीन काल में कहानियों की प्रायः मौखिक सृष्टि हुआ करती थी। कभी–कभी वे लिखी भी जाती थीं अवश्य, परन्तु सभी कहानियों का जनता में प्रचार मौखिक प्रथा से ही हुआ करता था। परन्तु आधुनिक काल में मुद्रण–यन्त्र के प्रचार से पुस्तकें बहुत सस्ती हो गई हैं, जिसे साधारण जनता भी आसानी से प्राप्त कर सकती है। फिर आजकल के नागरिक जीवन में सामूहिक विनोदों और उत्सवों का स्थान एकान्त विनोदों ने ले लिया है। इस कारण अब पहले की भाँति वृद्ध लोगों को

उत्सुक श्रोताओं को कहानी नहीं सुनानी पड़ती, वरन् उत्सुक पाठक अब एकान्त में बैठकर मुद्रित ग्रन्थों से कहानियों का आनन्द उठाते हैं। मासिक पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार से कहानियों की मौखिक प्रथा का एकदमलोप ही हो गया। इस कारण आधुनिक कहानी के रूप और शैली में एक अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया है, क्योंकि कहानी के सुनने और पढ़ने में एक पर्याप्त अन्तर होता है।

आधुनिक कहानी के रूप और शैली पर पाश्चात्य कहानियों के रूप और शैली का भी बहुत प्रभाव पड़ा है। पाश्चात्य देशों में आधुनिक कहानी का प्रारम्भ 1850 से पहले हो गया था और उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रेंच कहानियों ने अत्यधिक उन्नति कर ली थी। भारतीय कहानी–लेखकों ने पाश्चात्य महान् लेखकों की कहानियों के साहित्यिक रूप और शैली का अनुसरण किया। फिर कला की भावना के जोर पकड़ने पर कहानियों के रूप और शैली का और भी परिष्कार और परिमार्जन हुआ और इस प्रकार आधुनिक कहानी की रूप और शैली इतनी अधिक परिवर्तित हो गई कि इसे प्राचीन कहानियों की 'बिरादरी' में बैठाया नहीं जा सकता।

परिवेश और युग जीवन से आँखे चुराकर लिखना, वर्तमान समय में यों तो किसी भी रचनाकार के लिए सम्भव नहीं है, रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने परिवेश एवं जीवन के पल–पल परिवर्तित रूप–स्वरूप और रंग–ढंग को अपने भीतर भोगा है तथा उसकी हर मुद्रा से अपना निकट सम्बन्ध स्थापित किया है। आलोच्य कहानीकारों की रचनाओं में जीवन के जो साक्षात्कृत संदर्भ हैं, वे न केवल लेखक की उपस्थिति के गवाह हैं, वरन् जीवन की जटिल और प्रमुख समस्याओं से भी जुड़े हैं जीवन का शायद ही कोई ऐसा संदर्भ हो जो रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की रचनाओं में न आया हो। यह लेखक छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी स्थिति को रचना–क्षण तक ले आये हैं। इतना ही क्यों अपने समय के सार्थवाह होने के कारण यह अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों तक भी पहुँच गये हैं।

रघुवीर सहाय जी तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना पर शोध करते समय एवं उनकी कहानियों को पढ़कर रचना के स्तर पर यथार्थ और यथास्थिति का अन्तर खुलता है। क्या अन्ततः साहित्य का काम जीवन की समझ बनाते हुए जीवन का सौन्दर्य बढ़ाना नहीं है। यहां सौन्दर्य को एक सीमित अर्थ में न लेकर एक व्यापक अर्थ में लिया जाना

चाहिए, जो जीवन के प्रति एक तरह की आस्था और विश्वास जाग्रत करता है, एवं जिसमें जीवन को बदलने का संकल्प निहित है।

रघुवीर सहाय जी की कहानियों को पढ़कर पाठक में जीवन के प्रति इसी आस्था का उदय होता है। रघुवीर सहाय जी की कहानियों में जीवन के प्रति आशावाद उनकी कहानियों को एक ताकत देता है। यह गौर करने की बात है कि आशावाद किसी तरह के रोमांटिसिज्म में तब्दील नहीं होता। वरन् अपनी जड़ें यथार्थ में ही बनाये रखता है। रचनाकार जब यथार्थ को बहुत अतिरंजित करके पाठक के सामने रखता है तो क्या उसका उद्देश्य पाठक में कौतूहल या करूणा जगाना नहीं होता ? किन्तु यह करूणा या कौतूहल क्या यथार्थ के सही रूप को विकृत कर ऐसा पाठक वर्ग नहीं बनाता जो किसी सहज मानवीय घटनाप्रेमचन्द युग इस दृष्टि से पुराने तथा नये मूल्यों के संघर्ष का युग था। हालांकि अधिकांश लेखकों ने इस संघर्ष को परम्परागत मान्यताओं द्वारा ही सुलझाने का प्रयास किया, किन्तु अपने रचनात्मक विकास के साथ ही उन्हें यह लगने लगा था कि नई समस्याओं को सुलझाने के लिए आदर्शों का परम्परागत स्वरूप पर्याप्त नहीं है। में आनन्द नहीं ले पाता सिर्फ चौंकाना चाहता है या करूणाद्र होना चाहता है। कहानी की कला में लेखक कहता है – "मैं जानता हूं कि ऐसे कोई कहानी नहीं कही जाती कि यह हुआ, फिर वह हुआ और अन्त में यह हुआ इति।"

रघुवीर सहाय जी की कविता और कहानी की मूल संवेदनाएं संक्रमित नहीं होती बल्कि गद्य के अन्य विधात्मक रूप भी कविता की संवदेना का प्रतिरूप दिखते हैं। अपने एक लेख "लेखक के चारों ओर से" रघुवीर सहाय जी मध्यवर्गीय आर्थिक संस्कार और उसकी नैतिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं – "एक ओर यह वर्ग आर्थिक दुरवस्थाओं का शिकार है तो दूसरी ओर बहाने और धोखे में यह मध्य वर्ग अपना मुँह बार–बार पोछकर साफ करता है। तीसरी ओर शिष्टाचार की सरहद में पहुंचकर अपने हालचाल की हकीकत को दर किनार करके नमस्ते करता है और मुस्कराता है।" मैंने कई बार लोगों को हंसते देखा है और यह पाया कि हंसकर ये लोग बहुत कुछ छिपाना चाह रहे हैं, लेकिन उनकी हंसी बहुत कुछ कह देती है।

रघुवीर सहाय जी की कहानियां न्याय और समता के आदर्शों के प्रति उनकी प्रतिबद्वता और उनके गैर रूमानी यथार्थ की धारणा को बहुत स्पष्ट करती हैं। उनकी आत्मसजग जनतांत्रिक संवेदना अपने वैयक्तिक आचरण और रचना में उस करूणा की

सहानुभूति के प्रति आंशकित हैं जो दूसरे को नीचा बना देती है। अपनी इसी संवेदना से समाज और व्यवस्था में व्याप्त गैर बराबरी को रघुवीर सहाय जी बहुत बारीकी से देख पाते हैं। आपकी कहानियों की मुख्य रपट मूल्य और संवेदना, दया, करूणा का चित्रण करना है। आपकी कहानियां उनको समग्रता से समझने का ठोस आधार देती हैं – जैसे – "अकृतज्ञ की तरह मैंने पूछना शुरू किया। मैं इसे कम्बल क्यों देना चाह रहा हूँ ? क्या मुझे इस पर दया आ रही है, क्योंकि इसके पास नहीं है और मेरे पास है ? सावधान मैंने अपने को अपनी पिछली कहानियों में याद दिलाई, एक मानव को दूसरे पर दया करने का क्या अधिकार ह? प्यार मैं कर सकता हूँ पर क्या मैं सचमुच प्यार कर रहा हूँ दया बिल्कुल नहीं ? क्या मैं विश्वास से कह सकता हूँ ?"

यह कहानी एक मध्यवर्गीय व्यक्ति के आत्मसंघर्ष को व्यक्त करती है जो रेलगाड़ी में यात्रा करते हुए अपने सामने बैठी हुई ठण्ड से ठिठुरती एक गरीब स्त्री के प्रति करूणा के प्रदर्शन की ऊहापोहात्मक स्थिति से गुजरता है। उसकी करूणा कहती है कि वह उसको कंबल उढ़ा दे। वह अपनी इस भावना या इच्छा की सूक्ष्मता से व्याख्या करता है तो पाता है कि उसे उढ़ा दूं अपना कंबल में अहंकार और श्रेष्ठता का अहसास है और यही अहसास उसकी आत्महत्या के समान है। कल्पना में वह उस स्त्री को कंबल उठाने के कार्य से जुड़े तमाम पहलुओं का विचार करता है कंबल उढा भी देता है। मगर सच्चाई यह है कि वह ऐसा नहीं कर पाता क्योंकि उसके इस कार्य से मनुष्य–मनुष्य के बीच की समानता का बोध खंडित होता है। इसलिए कहानी के अंत में सहानुभूति जन्य श्रेष्ठता के बोध को कहानीकार मिटा देता है। इससे स्पष्ट है कि रघुवीर सहाय जी की रचनाओं को समझने के लिए उनकी पूर्वोक्त मान्यता को सदैव केन्द्र में रखना होगा। मनुष्य–मनुष्य के बीच समानता के मानवीयरिश्ते को एक मूल्य के स्तर पर अपनी हर रचना में बार–बार जीये और उसी के लिए संघर्ष करना लेखक का संवेदनात्मक उद्देश्य था।

रघुवीर सहाय जी की सभी कहानियों का उद्देश्य लगभग एक ही है और वह है मानवीय सम्बन्ध, मानव पर करूणा, दया आदि मेरे और नंगी औरत के बीच, उमस के बाहर किले में औरत एक जीता जागता व्यक्ति, इन्द्रधनुष, सेब, गुब्बारे, मुक्ति का एक क्षण, विजेता, कुत्ते की प्रतिक्षा, सीमा के पार का आदमी और रास्ता इधर से है आदि कहानियां आदि से लेकर अन्त तक करूणा और दया से अंतर्निहित है।

आधुनिक कहानीकारों एवं नयी कहानी में रघुवीर सहाय जी का नाम भी उल्लेखनीय है। जिस प्रकार गुलेरीजी अपनी तीन कहानियां लिखकर हिन्दी साहित्य में अमर हो गए उसी प्रकार रघुवीर सहाय जी तीन कहानी संग्रह देकर हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल हो गये।

आपकी कहानियां वर्तमान जगत के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं ज्यादातर कहानियां एकालाप मनोवैज्ञानिक शैली में लिखी गई हैं कुछ सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्य विषयों पर भी लिखी गई हैं। आपने प्रयोगात्मक भाषा, शिल्प विधान को जन्म देकर भावनाओं को बेहतर तरीके से प्रस्तुत किया, आपके पात्र, यथार्थजगत से सम्बन्धित हैं। आपकी कहानियां सत्य घटनाओं पर आधारित हैं स्थितियों का यथा तथ्य चित्रण प्रस्तुत करने में आपने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

यहां वे अपने युग के अनेक कहानीकारों से आगे हैं। उनके पात्र केवल आदर्शवादी ही नहीं यथार्थवादी भी हैं। उनमें जीवन के सत्य को प्रकट करने की शक्ति है। 'सेब' 'मेरे' और 'नंगी औरत' के बीच और 'कहानी की कला' जैसी कहानियों में इससे बड़ा रचनात्मक हस्तक्षेप और क्या हो सकता था ? प्रेमचन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार जैन, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, रामदरश मिश्र, काशीनाथ सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवानी, राजेन्द्र अवस्थी, मनहर चौहान, मालती जोशी, रमेश बतरा, रमेश बक्षी, उषा प्रियवंदा, मणि मधुकर आदि के समान ही रघुवीर सहाय जी की समस्त कहानियां अपनी सोद्देश्यता की पूर्ति करती हुई समाप्त होती हैं। रघुवीर सहाय जी स्वयं अपनी कहानियों में बोलते प्रतीत होते हैं। अतः रघुवीर सहाय जी का समकालीन कथा धारा में महत्वपूर्ण योगदान है।

इसमें कोई राय नहीं है कि रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के कथा–साहित्य में कहानी का नया रूझान अपनी परम्परागत परपाटियों से ऊपर उठकर एक नया दृष्टिकोण पैदा करता है। यहाँ मैं स्पष्ट करना चाहूँगी कि आलोच्य कथाकारों की कहानियों के क्षेत्र में जितने भी आग्रह प्रकट हुये हैं। उनमें से कोई भी ऐसी नहीं हैं जो पारिभाषिक आधार पर ही काव्यत्व को निषिद्ध कर दें। रूचि वैचित्र के कारण कुछ कहानियों में उनके क्षेत्र में (काव्यत्व) अनाधिकार प्रवेश घोषित किया है। वास्तव में नई प्रवृत्तियों में ऐसी कहानियों का अपना अलग स्थान है। कहानी अगर यथार्थ की दुनिया को विस्तार देती है और उसका आविष्कार करती है जैसा कि

एक फ्रांसीसी आलोचक ने कहा है कि कवि की दृष्टि ही निश्चय योग दे सकती है। निरीह तर्कसंगत या विषय निरपेक्षता को पदच्युत करती हुई एक अभ्यान्तर यथार्थता जीवन की सबसे गहरी पर्त में छिपे सच्चे अर्थ को खोजती है। कहानी की खोज का यह आधुनिक निरूपण आलोच्य कथाकारों की कथावस्तु के प्रति कवि दृष्टि की ही मांग नहीं करता ? आज के वाद संकुल वातावरण में कवित्त में कहानी के वकीलों का स्वर भले ही न सुनाई पड़ता हो, वैसे कहानी के अच्छे उदाहरण रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानियों में अवश्य देखने को मिलते हैं।

रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के कथा सात्यि में उचित शब्द चयन सारगर्भित, सरल और सुगठित भाषा लाक्षणिक और व्यंगात्मक शैली तथा नवीन सूक्तियां तथा विधाओं के अनुकूल पात्रानुकूल भाषा शैली यही उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता एवं उनके कथा–साहित्य की उपलब्धि है।

कोई भी लेखक समय और समाज से कटकर लेखन को प्राणवान नहीं बना सकता। उसे समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करना ही पड़ता है। उसी की रचना आतंक व घृणामय हिंसा के बीच नयी संस्कृति और इंसानी सरोकार को गहरे अर्थ देती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हिन्दी कथा जगत के लिए एक महत्वपूर्ण वरदान साबित हुये हैं। आपने सम सामयिक यथार्थ से गहरा रिश्ता जोड़ते हुये समाज की राजनैतिक व नैतिक स्थिति पर प्रहार किया है। बेकसूर निहत्था, दहशत से भरा व्यक्ति सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की रचनाओं में सही अर्थ पा सका है। वे मनुष्य के भीतरी बाहरी दोनों शत्रुओं को खोजते हैं। सर्वेश्वर जी अपनी धमनियों और रगों के भीतर जैसा महसूस करते हैं वैसा शब्दों में भले ही न ढाल पायें, लेकिन उनमें मानवीय संवेदना और मानवीयता विद्यमान है। इनके सम्बन्ध में डॉ. हरि शर्मा का दृष्टिकोण है कि सर्वेश्वर जी की रचना न तो नारा है न आन्दोलन, वह सामाजिक साझेदारी है। एक दायित्वपूर्ण कर्म है, जिन्दगी के हर पहलू पर निगाह रखने वाले लेखक की सचेतन दृष्टि है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानी यात्रा का आंकलन करने से कहानी की निरन्तर गतिशीलता का अहसास होता है। सक्सेना जी की कहानियाँ बदलती हुई मनःस्थिति को स्थापित करने में काफी सक्षम हैं। यह बदलाव जहाँ एक ओर निरन्तर विकास का प्रतीक है वहीं दूसरी ओर रूपान्तरण का भी। पर विशेषता यह है कि सर्वेश्वर जी ने अपनी कहानियों में इस विकास और रूपान्तरण को एक साथ लेकर चलने का

प्रयास किया है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उनकी कहानियों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका कथ्य और उनकी अभिव्यक्ति सदैव एक जैसी मारक रही है। यद्यपि उसमें समय की गति के साथ परिवर्तन भी होता रहा, जो उनकी रचनात्मक जीवन्तता का सबूत ही नहीं वरन् एक लेखक की समय के साथ निर्मम ईमानदारी का भी प्रमाण है। उनकी रचनायें अनुभव के दायरे मेंक्रमशः आती हुयी जिंदगी का वह शब्दमय आलेख हैं जो लेखक को बदलते हुये जीवन सन्दर्भों के साथ गहराई से जोड़ता है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी नयी कहानियों के लोकप्रिय लेखक हैं। जो लेखक समय और समाज के साथ ईमानदारी से पेश आता है वह लेखक अपनी रचना में कभी भी गलत बात नहीं कह सकता। समय की गति को देखते हुये जो जीवन के प्रतिक्षण की सुख दुःखात्मक अनुभूतियों से साक्षात्कार करता है वही अपने रचनात्मक जगत में यथार्थता का समावेश और समाज के प्रति सही वकालत कर सकता है। सर्वेश्वर जी एक ऐसे ही लेखक थे जिन्होंने एक विषपायी की तरह सामाजिक विषमताओं की मर्मान्तक कड़वाहट को स्वयं पिया। उन्होंने लेखन के माध्यम से जो निर्मम और यथार्थ बात की वही उनकी जीवन्तता और मानवीय प्रेरणा का आधार बिन्दु है। कोई भी लेखक समय और समाज से कटकर अपनी रचना को प्राणवान नहीं बना सकता। उसे समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना ही पड़ेगा। वैयक्तिक पीड़ाओं के माध्यम से पाठक की मनःस्थितियों का क्रूर शोषण आखिर कब तक किया जा सकता है। पर यह लेखक की अपनी ही कला है कि वह निज की पीड़ा को समाज में तिरोहित कर उसे इस रूप में प्रस्तुत करे कि वह मानव मात्र की पीड़ा बन जाये। यही सब कुछ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपनी कहानियों में किया है।

सर्वेश्वर दयाल जी हिन्दी संसार में एक कहानीकार व नाटककार के रूप में भी आये हैं। बड़ी प्रयोगात्मक कहानी व उपन्यास लिखना आपकी विशेष प्रवृत्ति है। सर्वेश्वर की कच्ची सड़क और अन्धेरे पर अन्धेरा कहानी संग्रह उनके अपने अनुभव संसार और उनके माध्यम से हिन्दी के अनुभव संसार का अभिन्न अंग है। साधारण पाठक के लिये सर्वेश्वर जी की कहानियों को किसी आलोचक की वकालत की अपेक्षा नहीं हैं। सर्वेश्वर जी की कहानियों की सघनता उसे खुद ही आकर्षित करेगी। लेकिन आज के रुचि–विवाद से भरे हुये युग में यह कहने की जरूरत है कि अनेक जटिलताओं के

बावजूद आदमी की मूलभूत भावनाओं के बारे में सर्वेश्वर जी की गहरी आस्था आधुनिक संवेदना का महत्वपूर्ण अंग है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी द्वारा प्रशस्त मार्ग हिन्दी के लिए एक नया आयाम देता है। उन्होंने समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता और उन्हें झेलने और सहने के लिये व्यक्ति को तैयार किया। जिन्दगी के विरोधाभासों, विसंगतियों, विडम्बनाओं, विद्रूपताओं को ईमानदारी से उन्होंने कहानी में अभिव्यक्त किया है। सर्वेश्वर ने कहानियों के रूप और शिल्प को तराशा है तथा उसे नई दिशा दी है। सामाजिक यथार्थ को तथा नये सौंदर्य बोध को अपनी कहानियों में स्थान दिया है।

साहित्य सृजन, अनुभूतियों की बहुआयामी साधना है। इस साधना में वही साधक सफल हो सकता है, जो कर्म के प्रति समर्पित और मनुष्य के प्रति उदार हो सके। सम्पूर्ण साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानव है। उससे हटकर किसी भी रचना की अहमियत को स्वीकारनाहमारे बलबूते की बात नहीं। तब फिर जब तक हम मानव की मनोदशाओं, उसकी वृत्तियों, उसकी संवेदनाओं, उसकी पीड़ा और व्यथा–कथा से साक्षात्कार नहीं करेंगे, तब तक साहित्य प्रभावशाली नहीं हो सकेगा। रघुवीर सहाय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी का आम आदमी के प्रति यही जीवन्त रिश्ता उनके कथा संसार में मुखरित हुआ है। जो उन्हें कालजयी बनाता है। मानवीय मनोवृत्तियों की जितनी परख आपको दोनो को थी, उतनी किसी भी श्रेष्ठ रचनाकार के लिये परम आवश्यक है। मानवीय चिन्तन का यह विराट पक्ष हिन्दी कथा साहित्य में सदैव स्मरणीय रहेगा।
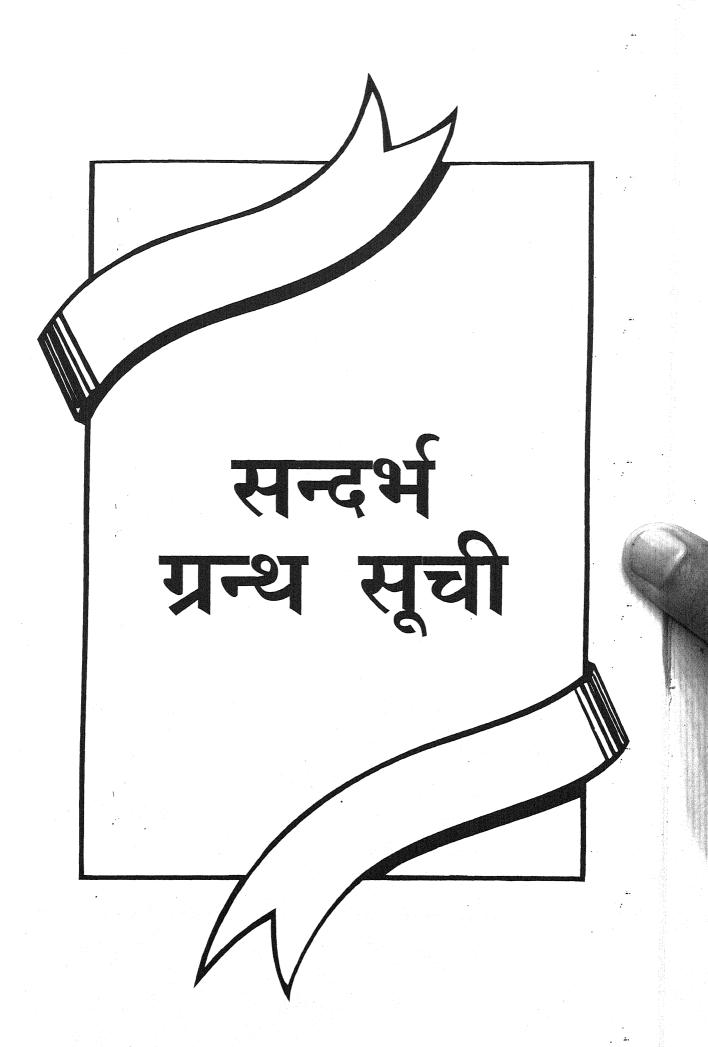
सन्दर्भ
ग्रन्थ सूची

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ✦ अज्ञेय (सम्पादक) : सीढ़ियों पर धूप में, प्रथम संस्करण : 1960, प्रकाशक – राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
- ✦ रघुवीर सहाय : रास्ता इधर से है, प्रथम संस्करण : 1972
- ✦ रघुवीर सहाय : जो आदमी हम बना रहे हैं, प्रथम संस्करण : 1982, प्रकाशक – राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
- ✦ अज्ञेय (सम्पादक) : दूसरा सप्तक, प्रथम संस्करण : 1951, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी (उ. प्र.)
- ✦ अज्ञेय (सम्पादक) : सीढ़ियों पर धूप में, प्रथम संस्करण : 1960, प्रकाशक–राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
- ✦ रघुवीर सहाय : आत्महत्या के विरूद्ध, प्रथम संस्करण : 1967, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
- ✦ रघुवीर सहाय : हँसो–हँसो जल्दी हँसो, प्रथम संस्करण : 1975, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
- ✦ रघुवीर सहाय : लोग भूल गये हैं, प्रथम संस्करण : 1982, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
- ✦ रघुवीर सहाय : कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, प्रथम संस्करण : 1981, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
- ✦ सुरेश शर्मा (सम्पादक) : रघुवीर सहाय रचनावली खण्ड – 1 से 6, प्रथम संस्करण : 2000, प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
- ✦ आलोच्य कहानियां – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रन्थावली में संकलित कहानियां रघुवीर सहाय ग्रन्थावली में सम्पादित कहानियां
- ✦ अंधेरों पर अंधेरा (कहानी संग्रह) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
- ✦ अब गरीबी हटाओ – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

- सोया हुआ जल – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
    1. बरसात अब भी आती है – " "
    2. पुलिया वाला आदमी – " "
    3. सीमाएँ – " "
    4. डूबता हुआ चाँद – " "
    5. सोने के पूर्व – " "
    6. मौत की छाया – " "
    7. मौत की आँखें – " "
    8. क्षितिज के पार – " "
    9. भगत जी – " "
    10. रूप और ईश्वर – " "
    11. जिन्दगी और मौत – " "
    12. छिलके के भीतर – " "
    13. मा. श्यामलाल गुप्ता – " "
    14. स्नेह और स्वाभिमान – " "
    15. पत्थर के फूल – " "
    16. कच्ची सड़क – " "
- अन्धेरे पर अन्धेरा (कहानी संग्रह) – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
    1. लड़ाई – " "
    2. धूप – " "
    3. तीन लड़कियाँ एक मेंढ़क – " "
    4. प्रेमी – " "
    5. टाईमपीस – " "
    6. मरी मछली का स्पर्श – " "
    7. सफलता – " "
    8. तोता – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
    9. सूटकेस – " "

10.	सो जाओ दोस्त	–	''	''
11.	छाता	–	''	''
12.	पराजय का क्षण	–	''	''
13.	एक बेवकूफ चिड़िया	–	''	''
14.	पुलोवर	–	''	''
15.	लपटें	–	''	''
16.	अन्धेरे पर अन्धेरा	–	''	''

✦ सर्वेश्वर का रचना संसार – प्रदीप सौरभ

आलोचनात्मक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

✦ अनीता–राकेश : चन्द संतरे, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1974
अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या – डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, 1968–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

✦ अधूरे साक्षात्कार – नेमिचंद जैन, प्रथम संस्करण, 1966–अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

✦ आत्मनेपद – अज्ञेय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी

✦ आधुनिकता और आधुनिकीकरण – डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1969

✦ आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ – डॉ. नरेन्द्र मोहन, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली–1973

✦ आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य – डॉ. इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–1978

✦ आधुनिकता और हिन्दी साहित्य – डॉ. इन्द्र नाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण

✦ आधुनिकता और हिन्दी आलोचना – डॉ. इन्द्र नाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

✦ आधुनिकता के पहलू – विपिन कुमार, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1972

✦ आंचलिकता से आधुनिकता बोध – डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, ग्रन्थम् रामबाग कानपुर, प्रथम संस्करण 1972

- आस्वाद के धरातल – धनंजय वर्मा, विद्यामंदिर प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली, संस्करण 1969
- क्योंकि समय एक शब्द है – डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, लोकभारती प्रेस 15ए, महात्मा गान्धी मार्ग इलाहाबाद, संस्करण 1975
- चिंतन के क्षण – विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1966
- दिल्ली शब्दकार 1977, सुभाष पंत, कमलेश्वर तीन दशकों की बीच एक वैज्ञानिक यात्रा–लेखक, मधुकर सिंह, संपादक कमलेश्वर
- नयी पीढ़ी की उपलब्धियाँ, आलोचना – डॉ. धनंजय, विद्यामंदिर प्रकाशन दिल्ली, 1969
- नयी समीक्षा–नये सन्दर्भ – डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्रथम संस्करण 1974
- नारीवादी विमर्श – राकेश कुमार, आधार प्रकाशन पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2001
- प्रश्नचिन्हों के जंगल में परिवार आधुनिक परिवेश और नवलेखन – डॉ. शिवप्रसाद सिंह
- समकालीन साहित्य एक नयी दृष्टि – डॉ. इन्द्र नाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
- सारिका – संपादक कमलेश्वर–टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन, बम्बई अंक (1) मई 1968 (2) अगस्त 1968 (3) नवम्बर 1968 (4) फरवरी 1973 (5) जुलाई 1975
- साहित्य का नया शास्त्र – डॉ. गिरिजा राय, शालिनी प्रकाशन, नया अलोपी बाग इलाहाबाद, संस्करण 2000
- हिन्दू परिवारों के परिवर्तित प्रतिमान – डॉ. सुषमा चतुर्वेदी, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2001
- आधुनिकता और हिन्दी कहानी – जगनसिंह, प्रासंगिक प्रकाशन (लेखकों द्वारा संचालित) के. डी. 19 सी अशोक बिहार–1 दिल्ली 110052 पहला संस्करण 1980
- आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1966
- आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काम मूलक संवेदना – डॉ. श्रीराम महाजन, चिंतन प्रकाशन 234/ए विश्व बैंक कालोनी, गुजैनी, कानपुर 1986

- आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना – डॉ. लक्ष्मण दत्त, गौतम, प्रथम संस्करण 1972, कोणार्क प्रकाशन दिल्ली
- आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति – डॉ. प्रेमनारायण सिन्हा, अनुपम प्रकाशन, पटना 4, प्रथम संस्करण 1980
- कहानीकार मोहन राकेश – डॉ. सुषमा अग्रवाल, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर, 1979
- कहानीकार ज्ञानरंजन – सं. सत्यप्रकाश मिश्र, नयी कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद 1978
- कहानी की संवेदनशीलता सिद्धान्त और प्रयोग – भगवानदास वर्मा, संस्करण–1972 ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर–12
- कहानी : नयी कहानी – डॉ. नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद – द्वितीय संस्करण जनवरी, 1973
- कहानी स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज नई दिल्ली 110002, तृतीय संस्करण, 1993
- काम सम्बन्धों का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी – डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना, साहित्य भारती के 71 कृष्णनगर, नई दिल्ली 110051, प्रथम संस्करण, 1975
- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण, 1973–राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली
- नयी कहानी की भूमिका – कमलेश्वर, शब्दकार प्रकाशन 2203, गली डकौतन तर्कमान गेट दिल्ली, 1978
- नई कहानी की मूल संवेदना – डॉ. सुरेश सिन्हा, भारतीय ग्रन्थ निकेतन 113, लाजपत राय मार्केट दिल्ली 6 – प्रथम संस्करण 1966
- नयी कहानी दशा और दिशा, सम्भावना – सुरेन्द्र, नई कहानी की उपलब्धियां बारह कहानियां, धनंजय वर्मा – संस्करण 1970, अभिव्यक्ति प्रकाशन यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
- नई कहानी नये प्रश्न – डॉ. सन्त बख्श सिंह, साहित्यालोक 86/412 देवनगर कानपुर, 208002, प्रथम संस्करण, जुलाई, 1991
- नई कहानी प्रकृति और पाठ – सं.–श्री सुरेश, परिवेश प्रकाशन, बी 177 मंगल मार्ग, बापू मार्ग जयपुर, प्रथम संस्करण, 1968

- नयी कहानी में आधुनिकता बोध–डॉ. साधना शाह, पुस्तक संस्थान, 109/50ए नेहरू नगर, कानपुर–12, प्रथम संस्करण, 1986
- नयी कहानी–सन्दर्भ और प्रकृति–डॉ. देवीशंकर अवस्थी, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 1966
- मोहन राकेश की कहानियां में आधुनिकता–एम. एस. मुजावर, अलका प्रकाशन 128/106–जी ब्लाक किदवई नगर, कानपुर 11
- समकालीन कहानी की पहचान–डॉ. नरेन्द्र मोहन, प्रवीण प्रकाशन, मेहरौली, नयी दिल्ली, संस्करण, 1978
- समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ – डॉ. पुष्पपाल सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरिया गंज, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, 1986
- समकालीन महिला कहानीकारों की कहानी में प्रेम का स्वरूप – सरिता सूद, सूर्य प्रकाशन नई सड़क, दिल्ली 6, 1978
- स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन – भैरूलाल गर्ग, चित्रलेखा प्रकाशन, 147 सोहबतिया बाग, इलाहाबाद– 211006 प्र. सं. 1979
- हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थ बोध के विविध रूप – डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय, समीक्षा प्रकाशन पिकौराबक्श (निकट हाइडिल कालोनी, गाँधी नगर, बस्ती) प्रथम संस्करण 1996
- हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ – डॉ. ज्ञान अस्थाना, जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार, मथुरा 281002–प्रथम संस्करण, 1981
- हिन्दी कहानी : अपनी जबानी –डॉ. इन्द्र नाथ मदान, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली 6, प्रथम संस्करण, 1968
- हिन्दी कहानी : अलगाव का दर्शन – डॉ. गार्डन चार्ल्स एंडर मल, (अनुवादक) अर्चना वर्मा, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. 2/36 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली, 110002–प्रथम संस्करण 1982
- हिन्दी कहानी – उपेन्द्र नाथ अश्क, प्रथम संस्करण
- हिन्दी कहानी एक नयी दृष्टि – डॉ. इन्द्र नाथ मदान, प्रथम संस्करण
- हिन्दी कहानी का मूल्यांकन – कान्ता (अरोड़ा) मेंहदी रत्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन 2/38 अंसारी रोड दरियागंज, नयी दिल्ली– 110002 प्रथम संस्करण 1984
- हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान – डॉ. रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण, 1977

- हिन्दी कहानी का विकास – मधुरेश, नई कहानी 170, आलोपीबाग, इलाहाबाद–211006
- हिन्दी कहानी का सफर – डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर (रजि.) सुभाष रोड अलीगढ़, प्रथम संस्करण–1982
- हिन्दी कहानी दो दशक – डॉ. सुरेश धींगड़ा, अभिनव प्रकाशन 21ए–दरियागंज नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण, 1978
- हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा – डॉ. रामदरश मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2/35 अन्सारी रोड दरियागंज, दिल्ली 6, प्रथम संस्करण–1970
- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य – डॉ. रमेश चन्द्र, लवानिया, सं. महेन्द्र शर्मा अमित प्रकाशन–66 सुभाष द्वार, गाजियाबाद प्र. सं. 1963
- हिन्दी कहानियों में द्वन्द्व – डॉ. सुमन मेहरोत्रा, आर्य बुक डिपो 30, नई वाला करौल बाग नई दिल्ली 110005–प्रथम संस्करण– 1975
- हिन्दी कहानी पहचान और परख – डॉ. इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, कृष्ण नगर दिल्ली, 100051, प्रथम 1973
- हिन्दी कहानी : समीक्षा और सन्दर्भ – डॉ. विवेकीराय, राजीव प्रकाशन–186–ए/1, आलोपीबाग कालोनी, इलाहाबाद–प्रथम संस्करण 1985
- हिन्दी की नयी कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – मिथिलेश रोहतगी, शलभ बुक हाउस 101 खत्री चौक, मेरठ 25002, प्रथम संस्करण, 1979
- हिन्दी : चर्चित कहानियाँ : पुनर्मूल्यांकन – डॉ. कुसुम वार्ष्णेय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड के. पी. कक्कड़ रोड इलाहाबाद 211003, प्रथम संस्करण 1983
- हिन्दी : चर्चित कहानियाँ : पुनर्मूल्यांकन – डॉ. कुसुम वार्ष्णेय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड के. पी. कक्कड़ रोड इलाहाबाद 211003 प्रथम संस्करण 1983
- हिन्दी साहित्य का इतिहास – आ. रामचन्द्र शुक्ल
- हिन्दी साहित्य का इतिहास – सम्पा. डॉ. नगेन्द्र
- हिन्दी का गद्य साहित्य – डॉ. रामचन्द्र तिवारी
- हिन्दी–कहानी – डॉ. सुरेश सिन्हा
- अस्तित्वावाद और नई कहानी – डॉ. लाल चन्द्र
- नयी कहानी कथ्य और शिल्प – संतवख्श सिंह
- हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया – डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव

- हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन – डॉ. वी. डी. शर्मा
- नयी कहानी – डॉ. नामवर सिंह
- हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास – डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल
- प्रेमचन्दोत्तर कहानी – डॉ. राधेश्याम गुप्त
- समकालीन कहानी – डॉ. पुष्पलाल सिंह
- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य – डॉ. रमेश चन्द्र लावनिया
- नयी कहानी में विविध प्रयोग – डॉ. शशिभूषण प्रसाद पाण्डेय
- हिन्दी कहानी में व्यक्तित्व विश्लेषण – डॉ. वी. एम. वर्मा
- कहानी की संवेदनशीलता – डॉ. वी. एम. वर्मा
- यथार्थवाद और हिन्दी कहानी – डॉ. नूरजहाँ
- नयी कहानी सीमा एवं संभावना – सम्पा. डॉ. सुरेन्द्र
- सर्वेश्वर का रचना संसार – प्रदीप सौरव
- हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवि – डॉ. सत्येन्द्र कुमार सिंह
- नई कहानी प्रश्न और उपलब्धियां – प्रवीण नायक
- जनवादी हिन्दी कहानी का विकास एक परिप्रेक्ष्य – प्रवीण नायक
- समकालीन हिन्दी कविता और मूल्य संघर्ष की दिशा – डॉ. सविता जैन
- स्वतंत्रता के बाद की कहानी – श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री
- हिन्दी कहानी एक अंतरंग परिचय – उपेन्द्रनाथ अश्क
- समकालीन हिन्दी साहित्य – वेद प्रकाश शर्मा
- कहानी दिशा, दशा और संभावना : हिन्दी कहानी के दशक की यात्रा – डॉ. रामबरन, डॉ. नरेन्द्र
- स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी वस्तु विकास एवं शिल्प विधान – डॉ. एम. एल. मेहता

- हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवि – डॉ. सत्येन्द्र कुमार सिंह
- तीसरा सप्तक – अज्ञेय
- नये साहित्य का तर्कशास्त्र – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
- समकालीन हिन्दी कविता – " "
- कविता से साक्षात्कार – मलयज
- समकालीन कविता का मूल्यांकन – डॉ. गुरुचरण
- हिन्दी कविता की समकालीन चेतना – डॉ. सुखवीर सिंह
- साहित्य का परिवेश – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
- आधुनिक कथा साहित्य – गंगा प्रसाद पाण्डेय
- समकालीन हिन्दी साहित्य – प्रवीण नायक
- नई कहानी प्रश्न और उपलब्धियाँ – " "
- जनवादी हिन्दी कहानी का विकास एक परिप्रेक्ष्य – आनन्द प्रकाश
- नई कहानियाँ – परमानन्द श्रीवास्तव
- नई कहानी : प्रतिनिधि हस्ताक्षर – डॉ. वैध प्रकाश अमिताभ
- समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा – डॉ. सविता जैन
- स्वतंत्रता के बाद की कहानी – श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री
- नयी कहानी दशा–दिशा संभावना – श्रीमती विजय चौहान
- आधुनिक साहित्य – नन्द दुलारे बाजपेयी
- हिन्दी कहानी एक अंतरंग परिचय – उपेन्द्र नाथ अश्क
- कहानी के तत्व – भगवती चरण वर्मा
- मानव मूल्य और साहित्य – धर्मवीर भारती
- समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि – सं. धनन्जय
- सृष्टि की दृष्टि – घनश्याम दास शलभ
- समकालीन हिन्दी साहित्य – वेद प्रकाश शर्मा
- कहानी दिशा, दशा और संभावना : हिन्दी कहानी के दशक की यात्रा – डॉ. रामवरण, डॉ. नरेन्द्र

- समकालीन कहानी का परिचय — नरेन्द्र मोहन
- कांव्य के रूप — बाबू गुलाब राय
- साहित्य का साथी — डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
- आधुनिक साहित्य — नन्ददुलारे बाजपेयी
- समकालीन कविता का मूल्यांकन — डॉ. गुरूचरण
- हिन्दी कविता में व्यंग्य — डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी
- हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवि — डॉ. एस. के. सिंह
- नयी कविता — डॉ. कान्ति कुमार
- स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी वस्तु विकास एवं शिल्प विधान — डॉ. एम. एल. मेहता
- निष्ठा एवं द्वन्द्व की कहानियाँ — हरिहर प्रसाद
- हिन्दी कहानी एक नयी दृष्टि — इन्द्रनाथ मदान
- हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया — डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव
- हिन्दी रचना और प्रयोग भाग–1 — प्रो. गणेशदत्त त्रिपाठी
- भाषा विज्ञान — डॉ. भोलानाथ तिवारी
- साहित्यिक निबंध — डॉ. राजनाथ शर्मा
- हिन्दी प्रयोग — रामचन्द्र वर्मा
- आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना — डॉ. वासुदेव नंदन प्रसाद
- बदलते परिप्रेक्ष्य — नेमीचन्द जैन
- आधुनिक हिन्दी का जीवनपरक साहित्य — श्रीमती खन्ना
- साहित्य कोश भाग–1 — लक्ष्मीकांत वर्मा

अंग्रेजी पुस्तकें

- ए हैन्ड बुक ऑफ सोसियोलॉजी – ऑगबर्न और निमकॉफ
  इनसाइक्लोपीडिया ऑफ बिट्रानिका
- फैमिली – वर्जेस ऑफ लॉक
- कम्प्रेटिव लिटरेचर – ए. लेबिन
- दि फैमिली इट्स फंक्सन एण्ड डेस्टिनी – रूथ एन अन्शेन
- दि फैमिली – एम. एफ. निमकॉफ
- दि फैमिली – सी. सी. हैरिस
- दि बेन्जिंग पैटर्न ऑफ फैमिली इन इण्डिया – देव नंदन थामस
- दि हिन्दू फैमिली इन इट्स अरबन सेटिंग – एलिन डी रॉस
- दि होराइजन ऑफ मैरिज – डॉ. राधाकमल मुखर्जी
- मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया – के. एम. कपाड़िया
- रूरल सोसियोलॉजी इन इण्डिया – डॉ. ए. आर. देसाई
- लिटरेचर एण्ड रियेलिटी – हावर्ड फास्ट
- समआस्पेक्ट ऑफ फैमिली इन महुआ – डॉ. ए. आर. देसाई
- सोसियोलॉजी ऑफ दि फैमिली – एल्मर एम. सी.
- सोसाइटी – मैकाइवर एण्ड पेज
- सोसाइटी इट्स ऑरगनाइजेशन एण्ड ऑपरेशन– एण्डरसन पार्कर
- ह्यूमन सोसाइटी – किंग्सले डेविस

संस्कृत पुस्तकें

- संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए. वी. कीथ, अनुवादक–मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 1967
- ऋग्वेद – भारत मुद्रणालय : स्वाध्याय मण्डल औन्ध राजधानी, शालिवाहन शक : 1849
- पुराणोत्पत्ति प्रसंग – मधुसूदन ओझा, जयपुर संस्करण, सं. 2009

- श्रीमद् भगवद् गीता – स्वामी अखंडानन्द सरस्वती – सत्साहित्य प्रकाशन (मुम्बई)
- दुर्गासप्तशती – निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई

पत्र-पत्रिकायें

- नई दुनिया – दैनिक समाचार पत्र, इन्दौर
- दैनिक भास्कर, भोपाल
- साप्ताहिक हिन्दुस्तान
- धर्मयुग (हिन्दी पत्रिका)
- दिनमान (पत्रिका)
- प्रतियोगिता दर्पण (पत्रिका)
- प्रतीक (पत्रिका)
- कृतिका (अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका)
- स्पंदन
- आलोचना
- इन्दु
- कथाक्रम
- कोशोत्सव स्मारक संघ
- कल्पना
- धर्मयुग
- नवभारत टाइम्स
- माध्यम
- मधुमती
- विश्वभारती पत्रिका
- सम्मेलन पत्रिका
- समीक्षा लोक
- सारिका
- साप्ताहिक हिन्दुस्तान
- सुधा
- हंस
- ज्ञानोदय

***